स्वाध्याय स्वमन्थन स्वावलम्बन

उ० प्र० राजर्षि टण्डन मुक्त विश्वविद्यालय

(उत्तर प्रदेश सरकार द्वारा निर्गत अधिनियम संख्या 10, 1999 द्वारा स्थापित)

इन्दिरा गाँधी राष्ट्रीय मुक्त विश्वविद्यालय

उत्तर प्रदेश राजर्षि टण्डन मुक्त विश्वविद्यालय

CWED-03
स्त्री-पुरुष समानता के लिए संवैधानिक और वैधानिक आधार

प्रथम खण्ड : स्त्री-पुरुष समानता : पाठ और संदर्भ

द्वितीय खण्ड : भारत में स्त्री-पुरुष समानता के लिए संवैधानिक आधार

तृतीय खण्ड : भारत के स्त्री-पुरुष समानता के लिए बनाए गए कानून और कानूनी सुधार

चतुर्थ खण्ड : महिला आंदोलन और कानूनी परिवर्तन

शान्तिपुरम् (सेक्टर-एफ), फाफामऊ, इलाहाबाद - 211013

उत्तर प्रदेश
राजर्षि टण्डन मुक्त विश्वविद्यालय

CWED-03

स्त्री-पुरुष समानता के लिए संवैधानिक और वैधानिक आधार

खंड

1

स्त्री-पुरुष समानता : पाठ और संदर्भ

आइए हम शुरू करें

पाठ्यक्रम परिचय: स्त्री-पुरुष समानता के लिए संवैधानिक और वैधानिक आधार

खंड प्रस्तावन: स्त्री-पुरुष समानता: पाठ और संदर्भ

इकाई 1

महिलाओं के अधिकार मानव अधिकार है : अर्थ और आयाम 9

इकाई 2

स्त्री-पुरुष समानता : विश्वव्यापी बहस 24

इकाई 3

स्त्री-पुरुष समानता के संघर्ष के रूप 35

संदर्भ 45

आइए हम शुरू करें

महिला शक्तिकरण और विकास में आधार पाठ्यक्रम इस कार्यक्रम का अनिवार्य पाठ्यक्रम है। इसमें चार खंड हैं। प्रत्येक खंड में अलग-अलग विषयों पर विचार किया गया है जिनमें 3 से लेकर 5 इकाइयां हैं। हर इकाई में प्रमुख विषय पर तार्किक ढंग से विचार किया गया है। प्रत्येक खंड की शुरुआत खंड प्रस्तावना के साथ की गई है और अन्त में उपयोगी पुस्तकों की सूची दी गई है।

खंड 1 में कार्यक्रम का परिचय भी दिया गया है। इस कार्यक्रम के उद्देश्य और विषय को जानने के लिए कार्यक्रम परिचय को ध्यान से पढ़िए। साथ ही साथ खंड के विषय और उद्देश्य को समझने के लिए खंड प्रस्तावना अवश्य पढ़िए।

आपके सामने इस पाठ्यक्रम का पहला खंड है जिसमें चार इकाइयां हैं। इन इकाइयों को पढ़ने से पहले आपके लिए यह जानना लाभदायक होगा कि इस पाठ्य सामग्री को किस प्रकार पढ़ना चाहिए। यहां हम एक इकाई की रूपरेखा प्रस्तुत कर रहे हैं और इकाई को विभिन्न भागों और उपभागों में बांटने की व्यवस्था से आपको परिचित करा रहे हैं। इसके बाद हम आपको बताएंगे कि इकाई को आप कैसे पढ़ें और इस पाठ्य सामग्री में दिए हुए कार्यों को किस प्रकार करें।

इकाई की रूपरेखा

इकाइयों की रूपरेखा का व्यवस्थित रूप इस प्रकार प्रस्तुत किया गया है :

ग.0 उद्देश्य

ग.1 प्रस्तावना

ग.2 भाग (भाग की विषय-वस्तु)

ग.2.1 उपभाग ग.2 का 1 — क्या आप जानते हैं

ग.2.1 उपभाग ग.2 का 1

.....

..... — ज़रा सोचिए

.....

ग.3 भाग (भाग की विषय-वस्तु)

ग.3.1 उपभाग ग.3 का 1

ग.3.2 उपभाग ग.3 का 2

.....

.....

.....

यहां ग चिन्ह इकाई की संख्या का द्योतक है।

प्रत्येक इकाई के अंतिम चार भागों के शीर्षक इस प्रकार दिए गए हैं :

सारांश

शब्दावली

कुछ उपयोगी पुस्तकें

इकाई के भागों का क्रमांकन

इकाई के भागों की संख्या अलग-अलग हो सकती है और भागों का क्रमांकन इकाई के भागों की संख्या के अनुरूप किया गया है। अंतिम चार भागों का क्रमांकन पहले आए भागों के क्रम के अनुसार किया गया है। जैसा कि इस योजना में पहले ही सुझाया गया है, हमने इकाइयों को भागों में विभाजित किया है। इससे पढ़ने में आसानी होती है और विषय जल्दी समझ में आ जाता है। प्रत्येक भाग का शीर्षक मोटी छपाई में है ताकि स्पष्ट रूप से दिखाई दे और उपभाग अपेक्षाकृत कम मोटी छपाई में है। उपभागों में महत्वपूर्ण स्थल भी मोटी छपाई में है ताकि उन उपभागों को आप आसानी से देख सकें, जिन पर हमने आपका ध्यान आकर्षित किया है।

इनका क्रमांकन (i), (ii), (iii) आदि किया गया है। एकरूपता के लिए हमने सम्पूर्ण पाठ्यक्रम की प्रत्येक इकाई में एक समान योजना अपनाई है। आइए, अब हम इकाई के प्रत्येक भाग की चर्चा करें।

उद्देश्य

हमने प्रत्येक की शुरुआत 'उद्देश्य' भाग से की है। इसमें संक्षेप में, यह स्पष्ट किया जाता है कि इस इकाई का अध्ययन करने के बाद हमारी आपसे क्या अपेक्षा है।

प्रस्तावना

'प्रस्तावना' भाग में हमने निम्नलिखित बातों को विशेष रूप से स्पष्ट किया है: क) खंड की पिछली इकाइयों से इकाई का संबंध, ख) इकाई की विषय-वस्तु, और ग) प्रस्तावना और सारांश के बीच सभी भागों में विषय-वस्तु को किस क्रम में प्रस्तुत किया गया है।

सारांश

सारांश शीर्षक के अंतर्गत प्रत्येक इकाई को संक्षेप में दोहराया जाता है। यह पूरी इकाई का सारांश होता है।

क्या आप जानते हैं ?

चूंकि यह पाठ्यक्रम मुख्यत: सैद्धांतिक विचारों और अन्य संबंधित अवधारणाओं से सम्बद्ध है अत: कभी-कभी कुछ विचारों की एक अलग खाने (box) में व्याख्या करनी पड़ती है। यह प्रासंगिक जानकारी आपको पाठ्यक्रम की विषय-वस्तु को पूरी तरह समझने के लिए जरूरी है। इन खानों में (i) अवधारणाओं संबंधी व्याख्यात्मक टिप्पणी, (ii) विशेष विचारकों के जीवन परिचय संबंधी विवरण, (iiii) विचारकों के प्रमुख कार्यों के बारे में जानकारी, तथा (iv) सामाजिक-राजनैतिक घटनाओं की ऐतिहासिक पृष्ठभूमि आदि समाविष्ट हैं।

चित्र

प्रत्येक खंड के ग्राफ, तालिका, चित्र, आरेख, चार्ट आदि के रूप में कुछ चित्र दिए जाते हैं। इन चित्रों का मुख्य प्रयोजन अध्ययन सामग्री को अधिक बोधगम्य और रोचक बनाना है।

ज़रा सोचिए

इकाई के मुख्य भाग या लम्बे उपभाग के अंत में 'ज़रा सोचिए' शीर्षक के अधीन प्रश्न दिए गए हैं, जिनके उत्तरों की जांच आपको स्वयं करनी है।

ज़रा सोचिए के उत्तर लिखने में निम्नलिखित बातों को ध्यान में रखा जाना चाहिए :

क) प्रत्येक प्रश्न का उत्तर अलग कागज पर लिखें।

ख) संबंधित इकाई के अंत में दिए गए उत्तरों से अपने उत्तरों की जांच कर लें।

आपको प्रत्येक इकाई सावधानी से पढ़नी चाहिए और हाशिए में महत्वपूर्ण मुद्दे नोट कर लेने चाहिए। इससे आपको अध्ययन में सहायता तो मिलेगी ही साथ ही इससे सत्रीय कार्य के प्रश्नों के उत्तर देने में आपको सरलता होगी।

अपने अनुभव से सीखिए

जरा सोचिए के अलावा आपके लिए अपने अनुभव से सीखिए के रूप में कुछ अभ्यास करने के लिए काम दिए गए हैं।

आप पाठ्य सामग्री ध्यानपूर्वक पढ़ें और इन प्रश्नों का उत्तर देते समय पाठ्य सामग्री में दी गई जानकारी का उपयोग करें। ये अभ्यास इस उद्देश्य से दिए गए हैं ताकि आपमें एकसी योग्यता पैदा हो सके जिससे आप जीवन के रोजमर्रा के अनुभवों से अपनी पढ़ाई को जोड़ सकें। आप अलग कागज पर इस अभ्यास को पूरा कीजिए और फिर बाद में अध्ययन केंद्र के अन्य विद्यार्थियों के साथ अपने उत्तरों से संबंधित चर्चा कीजिए। सत्रांत परीक्षा में आपको 'अपने अनुभव से सीखिए' भाग से संबंधित प्रश्न भी दिए जा सकते हैं। इसलिए प्रत्येक इकाई के अपने अनुभव से सीखिए अभ्यासों को जरूर पूरा कीजिए।

शब्दावली

प्रत्येक इकाई के अन्त में शब्दावली दी गई है, इसमें विशेष शब्दों के सामान्य अर्थ तथा तकनीकी अर्थ दिए गए हैं और कठिन शब्दों की परिभाषा दी गई है।

कुछ उपयोगी पुस्तकें

कुछ उपयोगी पुस्तकें शीर्षक के अधीन हमने कुछ पुस्तकों का उल्लेख किया है। यदि ये पुस्तकें आपके अध्ययन केंद्र में या अपने निवास स्थान के नजदीक किसी पुस्तकालय में उपलब्ध हों तो आप उन्हें पढ़ लें। इन पुस्तकों को पढ़ना अनिवार्य नहीं है। इनसे निस्संदेह आपको प्रत्येक इकाई में दी गई विषय-वस्तु को समझने में और अपने ज्ञान का स्तर बढ़ाने में सहायता मिलेगी।

संदर्भ

कुछ उपयोगी पुस्तकों के अलावा हमने प्रत्येक खंड के अंत में संदर्भ ग्रंथ सूची दी है। यह सूची उन पुस्तकों, लेखों, रिपोर्टों की है जिनकी मदद से पाठ्य सामग्री तैयार की गई है। इस सूची को देने का मुख्य उद्देश्य है कि आपको मालूम हो कि हर विषय में उपलब्ध सामग्री कितने तरह की है। साथ में यदि आपको पाठ्य सामग्री में किसी बिंदु पर विस्तृत जानकारी की इच्छा हो तो आप इन स्रोतों के माध्यम से ऐसा कर सकते हैं। इनका पता लगाने में आपकी मदद करने के लिए हमने प्रत्येक पुस्तक/लेख के लेखकों का नाम, प्रकाशन का वर्ष, पुस्तक/लेख का शीर्षक, प्रकाशक का नाम, प्रकाशन के स्थान का पूरा विवरण दिया गया है। इन संदर्भ सूची के अलावा हिंदी माध्यम की पाठ्य सामग्री के साथ हमने हिंदी में मिलने वाली पुस्तकों की सूची भी हर खंड के अन्त में दी है। प्रयास रहेगा कि आपके अध्ययन केंद्र में ये पुस्तकें आपको उपलब्ध हों।

दृश्य-श्रव्य सामग्री

मुद्रित सामग्री के अनुपूरक के रूप में कुछ इकाइयों को दृश्य-श्रव्य सामग्री के लिए चुना गया है। इनसे आपको इकाई और अच्छी तरह से समझने में सहायता मिलेगी। आपको सलाह दी जाती है कि आप अपने अध्ययन केंद्र के समन्वयकर्ता से सम्पर्क बनाए रखें ताकि आप दृश्य-श्रव्य साधनों का लाभ उठा सकें।

सत्रीय कार्य

आपको पूरे पाठ्यक्रम के लिए दो सत्रीय कार्य मिलेंगे। ये सत्रीय कार्य शिक्षक द्वारा जांचे जाएंगे। इन्हें पूरा करके मूल्यांकन के लिए आप अपने अध्ययन केंद्र को भेजें। यह बात अच्छी तरह देख लें कि

सभी सत्रीय कार्य पूरे किए जाएं क्योंकि इन सत्रीय कार्यों में प्राप्त अंक आपकी डिग्री के लिए अंतिम मूल्यांकन में जोड़े जाते हैं। सत्रीय कार्य करते समय निम्नलिखित बातें ध्यान में अवश्य रखें :

- अपना क्रमांक साफ-साफ लिखें, और
- उत्तर अपने हाथ से लिखें और

  साफ-साफ और सुन्दर लिखें ताकि आपके उत्तर आसानी से पढ़े जा सकें।
- अपने उत्तर लिखते समय कागज के दोनों ओर हाशिए छोड़िए ताकि परीक्षक आपके उत्तर पर टिप्पणी कर सके।

सत्रीय कार्य का उत्तर लिखने से पहले:

- खंड की सभी इकाइयां और (यदि उपलब्ध हो तो) अतिरिक्त पाठ्य सामग्री पढ़ें।
- सत्रीय कार्य के उत्तर निर्धारित अंतिम तारीख तक अध्ययन केंद्र में पहुंच जाना चाहिए।

सत्रांत परीक्षा एफ.ई.डब्ल्यू. 01-4 खंड में दी गई मुद्रित सामग्री का अध्ययन और इस पाठ्यक्रम में इकाइयों तथा खंडों से संबंधित दृश्य-श्रव्य कार्यक्रम सत्रांत परीक्षा देने में आपके लिए सहायक होंगे। इस परीक्षा में प्रश्न पत्र के तीन भाग होंगे।

अंतिम भाग, भाग 'ग' में ऐसे प्रश्न हैं जिनका केवल एक ही उत्तर संभव है तथा जिसका चुनाव आपको दी गई संभावनाओं में से करना है। सत्रांत परीक्षा के लिए आपको इन तीन मुख्य श्रेणियों के प्रश्नों को विशेष रूप से तैयार करना चाहिए।.

पाठ्य सामग्री की तैयारी

इस पाठ्यक्रम का पाठ्य विवरण एक विशेषज्ञ समिति (इस खंड के पृष्ठ 2 पर देखिए) द्वारा तैयार किया गया है। इसके अलावा इस पाठ्य की तैयारी में पाठ लेखक, संपादक, पाठ्यक्रम/पाठ संयोजकों ने भी महत्वपूर्ण भूमिका अदा की है। विशेषज्ञ समिति ने खंडों और इकाइयों के विषयों और उप विषयों का निर्धारण किया है। पाठ लेखकों ने इन पाठों को लिखा है। पाठ्यक्रम के संपादक और खंड संपादकों ने सावधानीपूर्वक इन पाठों की जांच की है और उसे विद्यार्थी के अनुकूल बनाने की कोशिश की है। खंड संयोजकों ने इस पाठ्य सामग्री को स्वध्याय पूर्ण और मुक्त विश्वविद्यालय के अनुरूप बनाने में सार्थक योगदान दिया है। आपको मालूम होना चाहिए कि खंड संयोजक इग्नू में कार्यरत स्थाई शिक्षक/शिक्षिका हैं। खंड संयोजकों ने ही मुद्रण के लिए अन्तिम प्रतिलिपि तैयार की है और चित्र आदि की व्यवस्था की है। खंड संयोजक ने ही हिन्दी में भी अनुवाद कार्य कराया है। इसके अलावा हिन्दी और अंग्रेजी दोनों ही भाषाओं में दृश्य और श्रव्य पाठ सामग्री खंड संयोजकों ने ही तैयार की है।

कार्यक्रम संयोजक सारे पाठ्यक्रमों के बीच समन्वय स्थापित करता है। वह इसका ध्यान रखता है कि किसी प्रकार के दुहराव या परस्पर विरोधी बातें पाठ्यक्रम में न आएं । इस प्रकार गहन जांच पड़ताल के बाद इग्नू के शिक्षक/शिक्षिका स्वाध्याय पाठ तैयार करते हैं। इग्नू के शिक्षक/शिक्षिका को खुशी होगी यदि आप अपने सुझाव और टिप्पणी हमें भेजें ताकि आगे हम इस पाठ्यक्रम में अपेक्षित सुधार ला सकें।

हिन्दी भाषा में तैयार की गई पाठ्यक्रम सामग्री अंग्रेजी माध्यम की सामग्री का शब्दश: अनुवाद न होकर हिन्दी में रूपांतर है।

यही बात 'सत्रीय कार्य' के लिए भी लागू होती है।

खंड 1 प्रस्तावना : स्त्री-पुरुष समानता: पाठ और संदर्भ

डब्ल्यू ई डी-02 स्त्री-पुरुष समानता के लिए संवैधानिक और वैधानिक आधार पाठ्यक्रम का पहला खंड है। इस खंड में राष्ट्रीय और अन्तरराष्ट्रीय स्तर पर स्त्री-पुरुष समानता के मुद्दे को भरने के लिए मौजूदा सामाजिक-राजनैतिक संदर्भों पर विचार विमर्श किया जाएगा। इसके अलावा इस खंड में विभिन्न संवैधानिक प्रावधानों और कानूनों तथा अन्तरराष्ट्रीय प्रस्तावों और समझौतों के पाठों पर भी संक्षेप में विचार किया जाएगा। इस खंड में 3 इकाइयां हैं जो एक दूसरे से जुड़ी हुई हैं।

इकाई 1 में विभिन्न सामाजिक-राजनैतिक आयामों और महिलाओं के अधिकार मानव अधिकार हैं: अर्थ और आयाम जैसी अवधारणा के संदर्भ पर विचार किया गया है। इस अवधारणा के अर्थ और उत्पत्ति पर भी विचार किया गया है। इस इकाई में विभिन्न समझौतों, प्रस्तावों और संधियों की भी चर्चा की गई है जिनमें संयुक्त राष्ट्र के नेतृत्व में महिलाओं के अधिकारों को मानवाधिकारों के रूप में ढालने का प्रयास किया गया है। इसके अलावा महिलाओं के अधिकारों को मानवाधिकारों के रूप में ढालने के लिए भारतीय संविधान में किए परिवर्तनों का भी जिक्र किया गया है।

इकाई 2 में स्त्री-पुरुष समानता के संबंध में हुए अन्तरराष्ट्रीय वाद-विवादों का जिक्र किया है। इस मुद्दे को ठीक से समझने के लिए संयुक्त राष्ट्र और दक्षेस (सार्क) द्वारा उठाए गए कदमों का विश्लेषण किया गया है। इस इकाई में महिलाओं के राजनैतिक अधिकार, महिलाओं के शारीरिक अपमान, आर्थिक विकास में महिलाओं की भूमिका, अन्तरराष्ट्रीय स्तर पर अर्थव्यवस्था में हो रहे परिवर्तन का महिलाओं पर पड़नेवाले प्रभावों, महिलाओं के खिलाफ हो रही हिंसा आदि पर विचार विमर्श किया गया है।

इकाई 3 में स्त्री-पुरुष समानता के संघर्ष के रूपों पर विचार किया गया है। इसमें संक्षेप में स्त्री-पुरुष समानता संबंधी विचार के उत्पत्ति और विकास पर भी विचार किया गया है। इसमें भारत में स्त्री-पुरुष समानता के लिए किए गए संघर्षों का भी जिक्र किया गया है। समकालीन भारत में स्त्री-पुरुष समानता के लिए किए गए विभिन्न संघर्षों पर भी प्रकाश डाला गया है।

पाठ्यक्रम परिचय : स्त्री-पुरुष समानता के लिए संवैधानिक और वैधानिक आधार

इस कार्यक्रम के पिछले दो पाठ्यक्रमों में हम आपको समाज में स्त्री-पुरुष संबंधी दृष्टिकोणों के निर्माण के विभिन्न आयामों के बारे में बता चुके हैं कि स्त्री-पुरुष संबंधी दृष्टिकोणों के निर्माण में किस प्रकार विभिन्न संस्थाएं और विचारधाराएं काम करती हैं। पिछले पाठ्यक्रम में हमने आपको खासतौर पर यह बताया था कि भारतीय समाज में किस प्रकार सार्वजनिक और निजी जीवन में महिलाओं को हाशिए पर ढकेल दिया गया है। उनका आर्थिक रूप से शोषण किया जाता है, सामाजिक रूप से उन्हें अलग-थलग कर दिया जाता है, सांस्कृतिक रूप से उन्हें दबाया जाता है और राजनैतिक रूप से ये समाज का शक्तिहीन समूह है।

भारतीय संविधान के निर्माता भारतीय महिलाओं की इन वास्तविकताओं से परिचित थे। वे उस समय संयुक्त राष्ट्र के स्तर पर लिए गए विभिन्न प्रस्तावनाओं और प्रस्तावों से भी परिचित थे। उन्होंने यह भी महसूस किया कि जबतक संविधान में महिलाओं के लिए विशेष प्रावधान नहीं रखा जाएगा तबतक मौजूदा सामाजिक-सांस्कृतिक व्यवस्था में केवल सभी भारतवासियों को समानता और न्याय प्रदान कर महिलाओं को समाज में समानता नहीं दिलाई जा सकती है। इस कारण भारत के संविधान में महिलाओं के लिए कुछ विशेष प्रावधान रखे गए। इस आधार पर पाठ्यक्रम के खंड 3 में हमने भारत में भारतीय कानून में महिलाओं पर बातचीत की है। इस पाठ्यक्रम में हम उन संवैधानिक प्रावधानों और कानूनों पर विस्तार से विचार करेंगे जिसे भारतीय समाज में महिलाओं को शक्तिशाली बनाने के लिए एक उपकरण के रूप में उपयोग किया जा सकता है। इस पाठ्यक्रम में चार खंड हैं।

खंड 1 का शीर्षक है स्त्री-पुरुष समानता: पाठ और संदर्भ; इस खंड में अन्तरराष्ट्रीय स्तर पर संयुक्त राष्ट्र द्वारा किए गए विभिन्न प्रयासों की चर्चा की गई है जिसमें महिलाओं के अधिकारों को मानवाधिकार का दर्जा देने का प्रयास किया गया है।

इसमें भारत में महिलाओं के अधिकारों को मानवाधिकार का दर्जा देने के लिए किए गए संघर्षों और संवैधानिक प्रयासों की चर्चा की गई है। इस खंड में मानवाधिकार के रूप में महिलाओं के अधिकार को स्थापित करने के अर्थ, आयाम और प्रक्रियाओं का जिक्र करने के साथ-साथ इसके लिए किए जा रहे संघर्षों पर भी प्रकाश डाला गया है।

खंड 2 में भारत में स्त्री-पुरुष समानता के लिए संवैधानिक आधार पर विचार किया गया है। हमने भारत में स्त्री-पुरुष समानता के विभिन्न संवैधानिक प्रावधानों का जिक्र किया है। इसके अलावा स्त्री-पुरुष समानता के संबंध में भारतीय संविधान में किए गए संशोधनों की भी चर्चा की गई है। इस खंड में संसद में महिला आरक्षण बिल और राष्ट्रीय महिला आयोग की कार्य पद्धति का भी उल्लेख किया गया है।

खंड 3 में भारत में स्त्री-पुरुष समानता के लिए बनाए गए कानूनों और कानूनी सुधारों पर विचार किया गया है। इस खंड में कानूनी सुधारों, धर्म निरपेक्ष बनाम व्यक्तिगत कानूनों के मुद्दों, महिलाओं के खिलाफ हिंसा से जुड़े कानूनों, श्रम कानूनों और महिलाओं की सामाजिक सुरक्षा से जुड़े कानूनों की विस्तार से चर्चा की गई है।

इस पाठ्यक्रम के अन्तिम खंड में महिला आंदोलन और कानूनी परिवर्तन पर विचार-विमर्श किया गया है। मौजूदा कानूनी प्रावधानों के खिलाफ महिलाओं के प्रभावी आंदोलन के परिणामस्वरूप हाल के वर्षों में भारत में कई कानूनों में संशोधन किया गया है। इस खंड में बलात्कार, दहेज और कुछ कानूनों तथा परिवार अदालतों और परम्परागत अधिकारों की चर्चा की गई है।

भारतीय समाज में महिलाओं से संबंधित सभी कानूनों की चर्चा करना यहां संभव नहीं था। हालांकि इस पाठ्यक्रम में हुए विचार-विमर्श से आपको इन कानूनों के विभिन्न प्रावधानों पर पुनर्विचार करने में मदद मिलेगी। आप इस बात पर भी विचार कर सकेंगे कि भारतीय समाज में इन कानूनों और संवैधानिक प्रावधानों का स्त्री-पुरुष समानता के लिए किस प्रकार उपयोग किया जा सकता है। आप इन सामाजिक व्यवस्थाओं पर भी विचार कर सकेंगे जिसके तहत ये कानून बनाए जाते हैं।

इकाई 1 महिलाओं के अधिकार मानव अधिकार हैं : अर्थ और आयाम

रूपरेखा

1.0 उद्देश्य

1.1 प्रस्तावना

1.2 मानव अधिकार : अर्थ और उत्पत्ति

1.2.1 मानव अधिकारों का अर्थ

1.2.2 मानव अधिकार : उत्पत्ति और विकास

1.2.3 महिलाओं के अधिकार मानव अधिकार हैं

1.3 संयुक्त राष्ट्र में महिलाओं और मानव अधिकार के मुद्दे

1.3.1 संयुक्त राष्ट्र समझौता

1.3.2 महिलाओं के अधिकारों का मानव अधिकारों के रूप में विकास

1.3.3 विश्व मानव अधिकार और महिलाओं के विरूद्ध हिंसा पर विश्व सम्मेलन

1.3.4 चौथा महिला और मानव अधिकार विश्व सम्मेलन

1.4 महिलाएँ और भारत में मानव अधिकार

1.4.1 संवैधानिक उपाय

1.4.2 मानव अधिकार मुद्दे और महिला आंदोलन

1.4.3 भारत में मानव अधिकारों के रूप में महिलाओं के अधिकार

1.5 सारांश

1.6 शब्दावली

1.7 कुछ उपयोगी पुस्तकें

1.0 उद्देश्य

इस इकाई में हमने मानव अधिकारों और महिला-विकास की दृष्टि से स्त्री-पुरुष समानता (gender equality) के महत्वपूर्ण पहलुओं पर विचार विमर्श किया है। इस इकाई को पढ़ लेने के बाद आप 'मानव अधिकारों' की संकल्पना और 'महिलाओं के अधिकार मानव अधिकार हैं, का अर्थ जान सकेंगे :

- संयुक्त राष्ट्र द्वारा मानव अधिकारों के क्षेत्र में और महिलाओं से संबंधित किए गए उपायों का वर्णन कर सकेंगे;
- महिलाओं के मुद्दों का मानवीय अधिकार मुद्दों के रूप में विकसित होने की प्रक्रिया पर विचार विमर्श कर सकेंगे;
- भारत के विशेष संदर्भ में यह बता सकेंगे कि महिलाओं के अधिकारों का उल्लंघन मानव अधिकारों का उल्लंघन कैसे है।

1.1 प्रस्तावना

इस इकाई में आपको एक महत्वपूर्ण संकल्पना मानव अधिकार और महिलाओं के अधिकार मानव अधिकार कैसे हैं से परिचित कराया गया है। भाग 1.2 में मानव अधिकार के अर्थ, संकल्पना की उत्पत्ति और विकास तथा महिलाओं के अधिकार मानव अधिकार हैं की व्याख्या की गई है। भाग 1.3 में मानव अधिकारों के मुद्दों को स्त्री-पुरुष भेदभाव (gender) के परिप्रेक्ष्य में देखा गया है। संयुक्त राष्ट्र द्वारा इस संबंध में की गई क्रियाओं के लिए यह एक पृष्ठभूमि प्रदान करता है। यह इकाई इस ओर ध्यान एकाग्र करती है कि 1975 अंतर्राष्ट्रीय महिला वर्ष, से महिलाओं के अधिकारों को मानव अधिकार मानने का विचार किस प्रकार उत्पन्न हुआ और बीजिंग में हुए चौथे महिला विश्व सम्मेलन तक और उसके बाद भी कई वर्षों तक विकास होता रहा। यह विश्व मानव अधिकार सम्मेलन के विशेष संदर्भ और महिलाओं के विरूद्ध हिंसा के मुद्दे पर भी आयोजित किया गया है। इस इकाई का अंतिम भाग भारत में मानव अधिकार के मुद्दे, विभिन्न संगठनों द्वारा इस दिशा में किये गये प्रयास और महिलाओं के अधिकारों के उल्लंघन, वास्तव में यह मानव अधिकारों का उल्लंघन कैसे है, का परीक्षण करता है।

1.2 मानव अधिकार : अर्थ और उत्पत्ति

महिलाओं के अधिकार मानव अधिकार कैसे हैं यह समझने के लिए हम इस भाग में 'मानव अधिकारों' के अर्थ का परीक्षण करेंगे।

1.2.1 मानव अधिकारों का अर्थ

1945 में राष्ट्र संघ की स्थापना के साथ मानव अधिकार का मुद्दा प्रमुख रूप से उभरा। तब से, यह अनेक समझौतों से विकसित और विस्तृत हुआ है। यद्यपि मानव अधिकार की सार्वभौमिक रूप से अनुमोदित कोई भी परिभाषा नहीं है, संयुक्त राष्ट्र मानव अधिकारों को उन अधिकारों के रूप में परिभाषित करता है जो हमारी प्रकृति का हिस्सा है और जिनके बिना हम मनुष्य की तरह नहीं रह सकते। ये वे अधिकार हैं जो लोगों को अपने आंतरिक गुणों जैसे बुद्धिमत्ता और गुण (चातुर्य) को पूर्ण रूप से विकसित और उनका उपयोग करने योग्य और गहनतर जरूरतों जैसी आध्यात्मिकता को संतुष्ट करने योग्य बनाते हैं। मानव अधिकार जीवन के एक स्तर के लिए नींव है जिसमें हर व्यक्ति की अंतर्वर्ती प्रतिष्ठा और महत्ता को देय सम्मान और संरक्षण प्राप्त होगा।

मानव अधिकारों की संकल्पना वे अधिकार हैं जो मानव प्रतिष्ठा की संकल्पना से घनिष्ठता से जुड़े हुए हैं। संयुक्त राष्ट्र के पूर्व महासचिव बुतरस-बुतरस घाली, के अनुसार सम्पूर्ण मानव प्रतिष्ठा का अर्थ केवल अत्याचार से मुक्ति ही नहीं, बल्कि भुखमरी से भी मुक्ति है। इसका अर्थ मतदान की आज़ादी है, यह स्वास्थ्य का अधिकार है। इसका तात्पर्य बिना किसी भेदभाव के समस्त अधिकारों का आनंद लेने का अधिकार है। और सच्चे विकास को प्रजातंत्र के एक ठोस आधार और प्रचलित भागीदारी की आवश्यकता है (मानव अधिकार दिवस का संदेश 10 दिसंबर 1992)। इस प्रकार मानव अधिकार मुद्दा मानव जीवन के प्रत्येक पहलु को छूता है और इसका आदर संसार में शांति, न्याय और स्वतंत्रता की नींव है जैसा कि 1948 में मानव अधिकारों की सर्वव्यापी घोषणा द्वारा घोषित किया गया है। जून 1993 में वियेना में आयोजित विश्व मानव अधिकार सम्मेलन में स्वीकृत कार्य योजना में भी यह घोषित किया गया था कि, प्रजातंत्र, विकास और मानव अधिकारों तथा मौलिक स्वतंत्रता के प्रति आदर परस्पर निर्भरशील और पारस्परिक पुष्टता प्रदान करने वाले हैं। वर्षों के अंतराल में (i) मानव अधिकारों की प्राथमिकता निश्चित करने, और (ii) मानव अधिकारों के उल्लंघन, जहां भी वे हों, का सामना करने के लिए मानव अधिकार व्यवस्था और तरीके की एक सम्पूर्ण श्रृंखला विकसित हुई है।

1.2.2 मानव अधिकार : उत्पत्ति और विकास

हालांकि आधिकारिक तौर पर संयुक्त राष्ट्र ने 1948 मानव अधिकार की घोषणा की थी जिसे हासिल करने के लिए सदियों से संघर्ष चल रहा था। दासता, नस्ल संबंधी भेदभाव, उपनिवेशवाद के विरुद्ध और मानव द्वारा शिष्ट तथा सभ्य अस्तित्व को बनाये रखने के लिए अधिकारों के लिए जारी संघर्ष के रूप में यह मौजूद रहा है। मानव अधिकार बीसवीं सदी में दिया गया नाम है जो पारंपरिक तौर पर वास्तविक अधिकार या मौलिक अधिकार या सरल तरीके से केवल मनुष्य के अधिकारों के नाम से जाना जाता रहा है। सूक्ष्मत: संघर्ष के दौरान देखी गई क्रूरता और इन अधिकारों के बहुतायत उल्लंघन के जवाब स्वरूप, मानव अधिकारों की आधुनिक संकल्पना द्वितीय विश्व युद्ध (1945) के अंत में प्रकट हुई।

क्या आप जानते हैं?

अंतर्राष्ट्रीय मानव अधिकार विधेयक में निम्नलिखित अधिकार शामिल होते हैं :

		दस्तावेज और लेख
1.	जीवन	डी 3, सी 6
2.	व्यक्ति की स्वतंत्रता और सुरक्षा	डी 3, सी 9
3.	दासता से बचाव	डी 4, सी 8
4.	दमन, क्रूरता और अमानवीय दंड से बचाव	डी 5, सी 7
5.	कानून के समक्ष व्यक्ति की महत्ता	डी 6, सी 16
6.	कानून का समान संरक्षण	डी 7, सी 14; सी 26
7.	अधिकारों के उल्लंघन के लिए कानूनी उपायों की सुलभता	डी 7, सी 14, सी 26
8.	मनमानी गिरफ्तारी या बंधक रखे जाने से बचाव	डी 9, सी 9
9.	स्वतंत्र और निष्पक्ष न्यायाधिकरण के समक्ष सुनवाई	डी 10, सी 14
10.	निर्दोषता का आधार	डी 11, सी 15
11.	पूर्ववर्ती कानूनों से बचाव	डी 11, सी 15
12.	निजता, परिवार और घर का संरक्षण	डी 12, सी 17
13.	आने जाने और कहीं भी रहने की स्वतंत्रता	डी 13, सी 12
14.	उत्पीड़न से बचाव	डी 14
15.	राष्ट्रीयता	डी 15
16.	विवाह और परिवार बसाने का अधिकार	डी 16, ई 10, सी 23
17.	सम्पत्ति रखने की स्वतंत्रता	डी 17
18.	विचार चेतना और धर्म की स्वतंत्रता	डी 18, सी 18
19.	सभा और संघ की स्वतंत्रता	डी 20, सी 21, सी 22
20.	राजनैतिक भागीदारी	डी 21, सी 25
21.	सामाजिक सुरक्षा	डी 22, ई 9
22.	काम करने का उचित परिवेश	डी 23, ई 6, ई 7
23.	मुक्त मजदूर संघ	डी 23, ई 8, सी 22
24.	आराम और मनोरंजन	डी 24, ई 7
25.	रोटी, कपड़ा और मकान	डी 25, ई 11

26.	स्वास्थ्य और समाज सेवा	डी 25, ई 12
27.	बच्चों के लिए विशेष सुरक्षा	डी 25, ई 10 सी 24
28.	शिक्षा	डी 26, ई 13, ई 14
29.	सांस्कृतिक जीवन में भागीदारी	डी 27, ई 15
30.	आत्म-निर्धारण	ई 1, सी 1
31.	बंदी बनाए जाने पर मानवीय व्यवहार	सी 10
32.	कर्जदाता द्वारा बंदी बनाए जाने से बचाव	सी 11
33.	विदेशियों के मनमाने ढंग से निष्कासित करने से संरक्षण	सी 13
34.	नस्लीय या धार्मिक घृणा से बचाव	सी 20
35.	अल्प संख्यक संस्कृति का संरक्षण	सी 27

नोट :

डी : सार्वभौम मानव अधिकार उद्घोषणा
सी : अंतर्राष्ट्रीय नागरिक और राजनैतिक अधिकार समझौता
ई : अंतर्राष्ट्रीय आर्थिक सामाजिक और सांस्कृतिक अधिकार समझौता
स्रोत : जैक डॉनलिव वेस्ट न्यू प्रेस कृत 'इंटरनेशनल ह्यूमन राइट्स'

26 जून 1945 को सैन फ्रानसिसको में हस्ताक्षरित संयुक्त राष्ट्र का चार्टर, प्रथम अंतर्राष्ट्रीय संधि है जिसके लक्ष्य मानव अधिकारों के सार्वभौमिक सम्मान पर आधारित है। चार्टर ने संगठनों और निकायों के सदस्यों को काफी विस्तृत जिम्मेदारियां प्रदान कीं। इस प्रकार, संयुक्त राष्ट्र के समस्त, प्रमुख निकायों को मानव अधिकारों के क्षेत्र में प्रत्यक्ष या अप्रत्यक्ष भूमिका दी गई है। प्रधान अंगों के साथ ही मानव अधिकारों में विशिष्टता प्राप्त अतिरिक्त निकायों की श्रृंखला भी निर्मित की गई थी।

मानव अधिकार आयोग 1946 में स्थापित होने वाला प्रथम विशिष्टता प्राप्त निकाय था। मानव अधिकार आयोग का प्रथम सबसे महत्वपूर्ण कार्य मानव अधिकारों की सर्वव्यापी घोषणा पत्र का मसौदा तैयार करना और इसका अंगीकरण करना तथा 10 दिसम्बर 1948 को संयुक्त राष्ट्र द्वारा इसकी घोषणा थी। इस घोषणा पत्र में कुल मिलाकर तीस अनुच्छेद हैं, अनुच्छेद 7 में लिखा है कि सब मनुष्य स्वतंत्र पैदा हुए हैं और प्रतिष्ठा तथा अधिकार में समान हैं। मानवाधिकार उद्घोषणा में 1966 में दो मसौदे बनाए गए, एक मानव अधिकार उद्घोषणा के अनुच्छेद दो में समानता और बराबरी के सिद्धांतों का उल्लेख है। इसमें भिन्नता है कि संयुक्त राष्ट्र को प्रजाति, लिंग, भाषा या धर्म के आधार पर भेदभाव किए बिना मानव अधिकारों और स्वतंत्रता को बढ़ावा देना चाहिए। अनुच्छेद तीन में परस्पर संबद्ध मौलिक अधिकारों जैसे, जीवन का अधिकार, स्वतंत्रता का अधिकार और सुरक्षा का अधिकार वर्णित है। यह अनुच्छेद इस उद्घोषणा का प्रथम स्तंभ है। इसके बाद 4 से लेकर 21 अनुच्छेद में नागरिक और राजनैतिक अधिकारों की चर्चा की गई है। अनुच्छेद 21 का विस्तार 23 से लेकर 27 तक के अनुच्छेदों में हुआ है। इसमें कहा गया है कि समाज के प्रत्येक सदस्य के पास सामाजिक, आर्थिक और सांस्कृतिक अधिकार होता है। अन्त में अनुच्छेद 28 से लेकर 30 तक समुदाय के प्रति प्रत्येक व्यक्ति के कर्तव्य का उल्लेख हुआ है (संयुक्त राष्ट्र और मानवाधिकार, 1994-1995 : 153-155)। सब मनुष्य स्वतंत्र पैदा हुए हैं तथा प्रतिष्ठा और अधिकार में समान हैं- राजनैतिक अधिकारों पर, और दूसरा आर्थिक, सामाजिक और सांस्कृतिक अधिकारों पर। इस घोषणा पत्र के अनेक प्रावधानों को कानूनी तौर से बाध्य बनाते हुए, और अंतर्राष्ट्रीय निगरानी के लिए द्वार खोलते हुए, ये संविदाएं 1976 में लागू की गई। बहुत बड़ी संख्या में अंतर्राष्ट्रीय मानव अधिकार

पकरणों ने घोषणा को लागू करने की प्रतिज्ञा ली। 1993 में हुए विश्व मानव अधिकार सम्मेलन अपनाये गये वियना घोषणा पत्र में यही किया गया।

.2.3 महिलाओं के अधिकार मानव अधिकार हैं

हिलाओं के अधिकार मानव अधिकार हैं' का अर्थ है कि महिलाओं के मानव अधिकार सर्वव्यापी नव अधिकारों के अभिन्न अंतरंग और अविभाज्य अंग हैं। इसका मतलब है कि इनको मानव धिकार के मुद्दों से पृथक, विभाजित या अलग नहीं किया जा सकता। महिलाओं के मानव अधिकार भिन्न और अविभाज्य हैं क्योंकि महिलाएँ, महिलाएँ होने के नाते, और मानव होने के नाते, यानि भेदभाव विशिष्ट रूप में और सामान तौर से, संसार की विभिन्न जनसंख्या का अंग होने के नाते, र क्षेत्र के मानव अधिकारों के सभी मुद्दों से प्रभावित होती हैं। इसलिए, महिलाओं द्वारा मौलिक तंत्रता का पूर्ण और समान आनंद उठाना ही सरकारों और संयुक्त राष्ट्र की प्राथमिकता है और हिलाओं की उन्नति के लिए वह अति आवश्यक है।

महिला मानवाधिकारों के लिए एकबद्ध

सौजन्य : सी.एस.आर, नई दिल्ली

ह विचार कि महिलाओं के अधिकार मानव अधिकार हैं महिलाओं की उन गंभीर समस्याओं के प्रति नता की बढ़ती हुई जागरूकता से प्रचलित हो गया जो कि पहले प्रकाश में नहीं आई थीं। उसके द के वर्षों में महिला संबंधी विषयों का मानव अधिकारों के विभिन्न पहलुओं से सफलतापूर्वक ठबंधन हुआ, चाहे वह स्वास्थ्य का प्रश्न हों चाहे शिक्षा या विकास और पर्यावरण का। संयुक्त राष्ट्र र अन्य निकायों की सभी गोष्ठियों और सम्मेलनों में भेदभाव के मुद्दे को एक मुख्य धारा में जोड़ या गया है। 1993 में वियना में हुए विश्व मानव अधिकार सम्मेलन ने उन मानव अधिकारों की

स्पष्टत: पुनर्पुष्टि की है। 1994 में काहिरा में हुए अंतर्राष्ट्रीय जनसंख्या और विकास सम्मेलन ने महिलाओं के संतानोत्पत्ति अधिकारों और विकास के अधिकार की पुनर्पुष्टि की गई।

इस प्रकार पूरे विश्व में चल रहे महिला आंदोलन एक समझ का आभास करता है कि विभिन्न स्थितियों के बारे में महिलाओं को आगे आकर बहस करनी चाहिए। महिलाएँ स्त्री-पुरुष भेदभाव विषयक मुद्दों 'जैसे महिलाओं के विरूद्ध हिंसा' पर भी ध्यान केंद्रित करती हैं और यह मांग करती हैं कि उन्हें मानव अधिकार का मुद्दे समझा जाये। महिलाओं पर घर में किए जाने वाले अत्याचार विभिन्न मानव अधिकार निकायों द्वारा नहीं उठाये गये हैं और उन्हें मानव अधिकार उल्लंघन के रूप में भी स्वीकार नहीं किया गया है। यह विचार कि 'महिलाओं के अधिकार मानव अधिकार हैं', पूरे विश्व में महिला संगठनों के इस तरह महिला विशिष्ट मुद्दों, जोकि अभी तक तुच्छ समझे जाते थे, को मानव अधिकारों के विषयों से जोड़ने के प्रयासों में प्रतिबिंबित होता है (ह्यूमन राइट्स ट्रिब्यून, जून 1993 : 29-32)।

जरा सोचिए 1

इस वाक्य खंड महिलाओं के अधिकार मानव अधिकार हैं' से आप क्या समझते हैं?

इस इकाई का पूर्व भाग ध्यान से पढ़ें और उत्तर जानने की चेष्टा करें।

1.3 संयुक्त राष्ट्र में महिलाओं और मानव अधिकार के मुद्दे

इकाई के इस भाग में आपको महिलाओं के संबंध में संयुक्त राष्ट्र की गतिविधियों की पृष्ठभूमि की जानकारी प्राप्त होगी। इसमें बताया गया है कि महिलाओं के अधिकारों को मानव अधिकार मानने की दिशा में काफी प्रगति हुई है। इस विषय पर वियना सम्मेलन में विचार-विमर्श हुआ। इस मुद्दे पर बहस जारी है।

1.3.1 संयुक्त राष्ट्र समझौता

26 जून 1945 को हस्ताक्षरित संयुक्त राष्ट्र घोषणा के उद्देश्य प्रकटत: मानव अधिकार के लिए शाश्वत सम्मान और नस्ल, लिंग, भाषा या धर्म पर आधारित भेदभाव रहित आधारभूत स्वतंत्रता पर आधारित हैं।

1946 में स्थापित मानव अधिकार आयोग में भी हरेक व्यक्ति को इस घोषणा पत्र में प्रकाशित 'समस्त अधिकारों और स्वतंत्राओं का, बिना किसी प्रकार के अलगाव जैसे नस्ल, रंग, लिंग या सामाजिक उत्पत्ति, जायदाद, जन्म या अन्य प्रस्थिति, अधिकृत करते हुए, एक धारा भी शामिल की गयी है। महिलाओं के राजनैतिक, आर्थिक और सामाजिक अधिकारों को बढ़ावा देने और विश्वव्यापक नीतियों का निर्माण और महिलाओं की उन्नति के लिए संस्तुति देने के लिए 1946 में महिला हैसिया आयोग स्थापित किया गया था। इसके अतिरिक्त, शारीरिक व्यापार और वेश्यावृति को दबाने के लिए 1949 में संयुक्त राष्ट्र द्वारा एक नीति अपनायी गयी थी। 1952 में आम सभा ने महिलाओं के राजनैतिक अधिकारों पर एक समझौता हुआ जिसमें कानून के तहत समान राजनैतिक अधिकारों का प्रथम विश्वव्यापी अनुमोदन किया गया।

1966 में जो दो संविदाएं अपनाई गई थीं, 'आर्थिक, सामाजिक और सांस्कृतिक अधिकारों पर अंतर्राष्ट्रीय संविदा' और 'नागरिक और राजनैतिक अधिकारों पर संविदा', उन्होंने ये आश्वासन दिया था कि इन दोनों संविदाओं में वर्णित अधिकारों को 'नस्ल, रंग, लिंग, भाषा, धर्म, राजनैतिक या अन्य विचार, राष्ट्रीय या सामाजिक उत्पत्ति, जायदाद, जन्म या अन्य प्रस्थिति' के आधार पर किसी भी

कार के विभेद के बिना लागू किया जायेगा। ये संविदाएं समस्त आर्थिक, सामाजिक और सांस्कृतिक धिकारों का आनंद उठाने के लिए पुरुष और महिलाओं को समान अधिकार देना भी सुनिश्चित रते हैं। (संयुक्त राष्ट्र और मानव अधिकार, 1945-1998 : 230 और 235)।

967 में अंगीकृत "महिलाओं के खिलाफ सभी प्रकार के भेदभावों के उन्मूलन की उद्घोषणा" हिलाओं की हैसियत के विषय में आरंभिक और दूरगामी उपलब्धि थी। इसने ज़िंदगी और कानून में महिलाओं के लिए समानता को पहचानने का आह्वान किया और समानता की संकल्पना को ागरिक और राजनैतिक क्षेत्रों के परे इस प्रकार के अधिकारों के लिए विस्तृत किया जैसे, शिक्षा तक हुंच, रोज़गार के अवसर और स्वास्थ्य देखभाल। घोषणा पत्र के सिद्धांत तत्पश्चात् एक अनिवार्य अंतर्राष्ट्रीय समझौते, 1979 में आम सभा द्वारा अपनाये गये जिन्हें "महिलाओं के खिलाफ सभी प्रकार के भेदभाव के उन्मूलन उद्घोषणा" के नाम से जाना गया। एक प्रस्तावना और 30 धाराओं वाला, यह समझौता परिभाषित करता है कि महिलाओं के विरूद्ध विभेद किस से निर्मित होता है और इस प्रकार के विभेद को मिटाने के लिए राष्ट्रीय गतिविधि के लिए एक कार्यसूची तैयार करता है।

इसके अनुसार "महिलाओं के विरुद्ध भेदभाव" मानव अधिकार और राजनैतिक, आर्थिक, सामाजिक, सांस्कृतिक तथा नागरिक या अन्य किसी क्षेत्र में मौलिक स्वतंत्रताओं का उल्लंघन है। (अनुच्छेद 1) यह अनुच्छेद पुरुषों और महिलाओं की समानता के सिद्धांत पर आधारित है।

समझौते को मान्यता देते हुए, विश्व के स्वाधीन देशों ने महिलाओं के विरुद्ध हर रूप में होने वाले भेदभाव को समाप्त करने का भरोसा दिलाया है। समझौता महिलाओं को राजनैतिक और सार्वजनिक जीवन और साथ ही शिक्षा और रोज़गार में समान पहुंच तथा अवसर सुनिश्चित करा कर पुरुष और महिलाओं में समानता स्थापित करने के लिए आधार प्रदान करता है। समझौता महिलाओं के संतानोत्पत्ति अधिकार, उनकी स्वयं की और उनके बच्चों के लिए राष्ट्रीयता प्राप्त करने, बदलने या रखने के अधिकार को स्वीकृति देता है। स्वतंत्र राष्ट्र महिलाओं में देह-व्यापार और महिलाओं के उत्पीड़न के समस्त स्वरूपों के विरुद्ध उचित कदम उठाने पर सहमत हैं। वे विधान सहित सभी उचित उपायों पर सहमत हैं जिससे महिलाएँ अपने समस्त मानव अधिकार और अस्थायी उपायों तथा, मौलिक स्वतंत्रताओं का आनंद उठा सकें।

वे देश जिन्होंने समझौते को दृढ़ रूप से स्वीकारा या माना है कानूनी तौर पर इसके विधानों को लागू करने के लिए प्रतिबद्ध है। वे अपनी संधि के बंधनों के अनुरूप कार्य करने के किए गये उपायों पर राष्ट्रीय रिपोर्ट, हर चार वर्षों में कम से कम एक बार, प्रस्तुत करने के लिए भी वचनबद्ध हैं। उसी के अनुरूप 1971 में भारत में महिलाओं की हैसियत पर समिति (Committee on the Status of women in India) गठित की गई थी।

यह समझौता, जो 3 सितंबर 1981 को प्रभाव में लाया गया, 31 मई 1996 में, भारत सहित 152 संयुक्त राष्ट्र राज्यों द्वारा दृढ़ीकृत किया गया है। महिलाओं के खिलाफ होने वाले सभी प्रकार के भेदभाव के उन्मूलन का समझौता संयुक्त राष्ट्र, सार्वजनिक सूचना विभाग, जून 1996 रु. 1.14)।

महिलाओं के मानव अधिकार की दिशा में दूसरा युग प्रवर्तक चरण 1993 में संयुक्त राष्ट्र द्वारा अपनाया गया महिलाओं के विरूद्ध हिंसा की समाप्ति पर घोषणा पत्र है। इसकी विस्तृत चर्चा उपभाग 1.2.3 में है।

1.3.2 महिलाओं के अधिकारों का मानव अधिकारों के रूप में विकास

सत्तर के दशक के शुरू के वर्षों में महिलाओं के मुद्दे को प्राथमिकता दी गई। यह एक परिवर्तन था। 1972 में, आम सभा ने महिलाओं के मुद्दों पर ध्यान केंद्रित करने के लिए 1975 को अंतर्राष्ट्रीय महिला वर्ष निर्धारित किया। तत्पश्चात् 1974 में, संयुक्त राष्ट्र ने अंतर्राष्ट्रीय महिला वर्ष के संदर्भ में 1975 में आयोजित होने वाले विश्व महिला सम्मेलन का आह्वान किया। अंतर्राष्ट्रीय महिला वर्ष

ट्रिब्यून ने प्रथम विश्व कार्य योजना बनाई और महिला समानता, विकास तथा शांति के लिए प्रथम दशक (1976-1985) की घोषणा की।

इन दस वर्षों के अंतराल में, महिलाओं की हैसियत विषयक अंतर्राष्ट्रीय समुदाय की प्राथमिकताओं में एक महत्वपूर्ण परिवर्तन हुआ। अभी तक पूरे विश्व में सामाजिक स्तर पर छोटे स्तर पर काम हो रहा था। अब इसे वृहत् कानूनी रूप दिया गया था। 1979 में संयुक्त राष्ट्र द्वारा अपनाये गये महिला के खिलाफ भेदभाव अन्मूलन समझौते ने अपनी विचारधारा में यह परिवर्तन दर्शाया। यह समझौता विश्वव्यापी मानव अधिकार दस्तावेजों में सबसे आधुनिक है और व्यक्तियों और समूहों के प्रति अपनी सरकारों द्वारा व्यवहार करने के अंतर्राष्ट्रीय नियमों को परिभाषित करता है। इस पर जोर दिया गया था कि महिलाओं के अधिकार मानव अधिकार हैं और जो लोग समझौतों को लागू करने के लिए कार्य करते हैं, वे अंतर्राष्ट्रीय महिला अधिकार समुदाय का अंग हैं। समझौते के विशाल रूप में प्रचलित होने के साथ, विकासशील देशों में महिला समूह समझौते के सिद्धांतों की पुष्टि के साथ कानून और नीति परिवर्तनों के लिए दवाब डाला जा रहा है।

नैरोबी में 1985 में तृतीय विश्व महिला सम्मेलन में महिलाओं की प्रगति के लिए प्रगतिमूलक रणनीतियां तैयार की गईं। यह महिलाओं की प्रगति, उनकी हैसियत में वृद्धि और उन्हें मुख्य धारा में शामिल करने का एक आधार बना। मैक्सिको शहर में 1975 में प्रथम संयुक्त राष्ट्र सम्मेलन में व्यक्त किये गये सिद्धांतों पर आश्रित, प्रगतिमूलक रणनीतियों ने बाधाओं को पहचाना और निर्णय लेने के सभी स्तरों पर महिलाओं की भागीदारी पर दृढ़ता से जोर देते हुए उन पर विजय प्राप्त करने के लिए विशेष कदम की संस्तुति की (Women and the UN, 1945-1995, INSTRAW UN International Research and Training Institute for the Advancement of Women) and UNIFEM (United Nations Development Fund for Women)।

उसके बाद के कई वर्षों में अनेक गंभीर आर्थिक और सामाजिक समस्याओं के प्रति बढ़ती हुई सार्वजनिक जागरूकता देखी गई। जो पहले शीतयुद्ध के राजनीतिक तनाव से ढक गई थी। उन्नीस सौ नब्बे के वर्षों में सम्मेलनों की एक श्रृंखला में, संयुक्त राष्ट्र पर्यावरण और विकास सम्मेलन के आरंभ से, एक नई स्त्री-पुरुष भेदभाव चेतना (gender consciousness) जाग्रत होना शुरू हुई। यह देखा गया कि न केवल महिलाएँ सामाजिक उत्थान का शिकार बनी हैं बल्कि वे परिवर्तन की मूल वाहक हैं।

कार्यकर्त्ताओं और विद्वानों की अंतर्राष्ट्रीय महिला अधिकार निगरानी नामक एक विश्वव्यापी संस्था ने 1989 में वियना (आस्ट्रिया) में एक गोष्ठी आयोजित की जिसमें 1993 में वियना में होने वाले विश्व मानव अधिकार सम्मेलन के मानव अधिकार कार्यावली की तैयारी में महिलाओं के मुद्दों को केंद्रीय बनाने की उनकी कूटनीति पर विचार विमर्श करने के लिए चालीस से अधिक देशों की लगभग हजार से भी अधिक महिलाओं ने भाग लिया।

महिला आंदोलन ने शीघ्र ही यह सवाल उछालते हुए 1991 में एक याचिका बनाई कि विश्व सम्मेलन को अपनी कार्यावली में दो तरीके से महिलाओं को शामिल करना चाहिए : एक, अन्य सभी विषयों के संबंध में और दूसरा, महिलाओं के विशिष्ट मुद्दों जैसे हिंसा के संबंध में। महिलाओं के विरुद्ध हिंसा में वृद्धि और उनकी अदृश्यता से यह स्पष्ट होता है कि समस्त मानव अधिकार यंत्र रचनाएं वृहत् मानव अधिकार उल्लंघन को संबोधित करने में असफल हो रही थीं। गणनाएं इशारा करती हैं कि लगभग 60-100 मिलियन महिलाएँ विश्व में, मुख्यत: एशिया में और एक बड़ी संख्या में भारत में, अपहरण कर ली गई हैं और उनका पता नहीं चल सका है। मानव अधिकार समुदाय ने इस प्रकार की अदृश्यता को अभी तक संबोधित नहीं किया है जोकि अधिकतर भेदभाव विभेद, विशेषत: गरीबी और सामाजिक आर्थिक अधिकारों तथा विकास के अधिकार के अभाव के संदर्भ में, से उत्पन्न होती है (Women's Rights as Human Rights : An International Lobbying Success Story in Human Rights Tribune, June, 1993 : 29-32)।

विश्व भर में महिला संगठनों द्वारा किये गये ये प्रयास जून 1993 में वियना में आयोजित संयुक्त राष्ट्र विश्व मानव अधिकार सम्मेलन में अपने उत्कर्ष पर पहुंचे। यहां पर महिलाओं के मानव अधिकारों के उल्लंघन पर एक अंतर्राष्ट्रीय न्यायाधिकरण आयोजित किया गया और ये अधिकार संयुक्त राष्ट्र मानव अधिकार कार्यावली और गतिविधियों के समस्त पहलुओं में विशेषत: जोड़े गये। (इसकी चर्चा अगले भाग में की गई है।) अंतर्राष्ट्रीय जनसंख्या और विकास सम्मेलन (काहिरा, 1994) ने इस प्रक्रियां को एक और कदम आगे बढ़ाया। पहली बार स्त्री-पुरुष समानता भेदभाव और शिक्षा, स्वास्थ्य तथा पोषण के जरिए महिलाओं की शक्ति सम्पन्नता को पारंपरिक जनसंख्या मुद्दों जैसे परिवार नियोजन, जोकि जीवनदायक विकास की प्राप्ति के लिए अत्यन्तावश्यक है, से जोड़ा गया था।

इस प्रकार महिलाओं के मुद्दे विश्व के अत्यंत महत्वपूर्ण आर्थिक और सामाजिक विषयों से, कम से कम सिद्धांत रूप में, जुड़ गये और उनको लागू करने के प्रयास जारी हैं। चौथे विश्व महिला सम्मेलन ने, जिसकी चर्चा भाग 1.3.4 में है, महिलाओं के मानव अधिकार के मुद्दे की अपनी चिंता के गंभीर क्षेत्रों में से एक के रूप में सम्मिलित किया है।

1.3.3 विश्व मानव अधिकार और महिलाओं के विरुद्ध हिंसा पर विश्व सम्मेलन

25 जून, 1993 को, 171 राज्यों के प्रतिनिधियों ने सर्वसम्मति से मानवाधिकार पर विश्व सम्मेलन के लिए कार्य योजना और वियेना उद्घोषणा को अपनाया। इसने पहचाना कि, महिलाओं और बच्ची के मानव अधिकार सार्वभौमिक मानव अधिकारों का एक अभिन्न, आंतरिक और अविभाज्य अंग है। राष्ट्रीय, क्षेत्रीय और अंतर्राष्ट्रीय स्तरों पर राजनैतिक, नागरिक, आर्थिक और सामाजिक तथा सांस्कृतिक जीवन में महिलाओं की पूर्ण और समान भागेदारी और स्त्री-पुरुष के आधार पर हर प्रकार के भेदभाव का उन्मूलन, अंतर्राष्ट्रीय समुदाय के प्राथमिक उद्देश्य हैं। यह आगे कहता है कि भेदभाव परक हिंसा, हर प्रकार का यौन दुर्व्यवहार और उत्पीड़न, सांस्कृतिक पक्षपातों और अंतर्राष्ट्रीय देह-व्यापार का उन्मूलन होना चाहिए। यह जोर देता है कि, महिलाओं के मानव अधिकार संयुक्त राष्ट्र मानव अधिकार गतिविधियों का, अभिन्न हिस्सा होना चाहिए। मानवाधिकारों पर हुए विश्व सम्मेलन में सरकारों, संस्थाओं, अन्तर-सरकारी और गैर सरकारी संगठनों से महिलाओं और बच्चियों के मानवाधिकारों की संरक्षण और संवर्धन के प्रयासों को तेज करने का आह्वान किया गया। (World Conference on Human Rights, The Vienna Declaration and Programme of Action, June 1993, UN Deptt. of Public Information, New York, April 1995 : 53-57)।

विश्व मानव अधिकार सम्मेलन ने एक नई व्यवस्था बनाई, महिलाओं के विरूद्ध हिंसा पर रपट तैयार करने के लिए एक विशेष रपटकर्ता की नियुक्ति की गई और महिलाओं के अधिकारों की उन्नति और रक्षा के लिए, महत्वपूर्ण कदम उठाया। इस पर शीघ्रता से अमल किया गया। अपने अगले सत्र में संयुक्त राष्ट्र मानव अधिकार आयोग ने महिलाओं के विरूद्ध हिंसा, एक ऐसा मुद्दा जो केवल महिलाओं के समुदाय तक ही सीमित था, पर विशेष रपटकर्ता नियुक्त किया गया। संयुक्त राष्ट्र द्वारा उसी वर्ष (1993) महिलाओं के विरुद्ध हिंसा के उन्मूलन पर घोषणा पत्र भी अपनाया गया था।

महिलाओं के विरुद्ध हिंसा के उन्मूलन पर घोषणापत्र के अनुसार, हिंसा का अर्थ भेदभाव परक हिंसा के किसी उस कार्य से है जिसका परिणाम, महिलाओं को शारीरिक, लैंगिक या मनोवैज्ञानिक नुकसान या कष्ट हो, इस प्रकार के किसी कार्य की धमकी, क्रूरता (चाहे सार्वजनिक जीवन में हो या निजी जीवन में) (अनुच्छेद 1)। घोषणा पत्र में छ: अनुच्छेद शामिल हैं और इन्हें महिलाओं के विरूद्ध होने वाले हर प्रकार के विभेद के उन्मूलन की प्रक्रिया को मजबूत बनाने और पूर्ण करने के लिए बनाया गया है। अब तक यह स्वीकार कर लिया गया है कि महिलाओं के विरूद्ध हिंसा एक दोषपूर्ण मानव अधिकार समस्या है न कि कोई निजी विषय जैसा कि अधिकतर सरकारें अभी तक समझती थीं (Declaration on the Elimination of Violence against Women, UN Deptt. of Public Information, New York)।

1.3.4 चौथा महिला और मानव अधिकार विश्व सम्मेलन

सितंबर 95 में बीजिंग में हुआ चौथा महिला विश्व सम्मेलन महिलाओं के मानव अधिकारों की रक्षा और उन्नति करने को सार्वभौमिक मानव अधिकारों का एक अभिन्न हिस्सा बनाने के मुद्दे की तरफ एक महत्वपूर्ण कदम था। सम्मेलन ने बीजिंग घोषणा और कार्य योजना अपनायी जोकि एक परिवर्तन लाने के लिए ठोस कार्य का एक आह्वान था। मानव अधिकार कार्य योजना द्वारा पहचाने गये दस जटिल क्षेत्रों में से एक था। इसने महिलाओं के अधिकारों की सुरक्षा के लिए सरकार द्वारा किए जाने वाले प्रयासों का उल्लेख किया। इसमें इस पद पर बल दिया गया कि सरकार की सभी नीतियों और कार्यक्रमों में स्त्री-पुरूष परिप्रेक्ष्य का ध्यान रखा जाना चाहिए। (Platform for Action and the Beijing Declaration, UN Deptt. of Public Information, 1995 : 121-133)। महिलाओं के विरूद्ध की जाने वाली सब तरह की हिंसा को स्पष्टत: मानव अधिकारों का उल्लंघन माना गया जो मानव की महत्ता और उसकी मर्यादा से मेल नहीं खाती है। सरकारों से निजी और सार्वजनिक जीवन में महिलाओं के प्रति हर तरीके की राज्य या निजी हिंसा के उन्मूलन और उसके विरूद्ध लड़ाई करने के लिए कदम उठाने की प्रार्थना की गई थी। यहां सरकारों ने घोषित किया कि महिलाओं के विरूद्ध हिंसा में मानव अधिकारों की हिंसा निहित है और यह समानता, विकास और शांति के उद्देश्य की प्राप्ति में एक अवरोध है (Human Rights; Women and Violence, UN Deptt. of Public Information, New York, Feb 1996; 1)।

सम्मेलन में हिलेरी क्लिंटन (अमेरिकी राष्ट्रपति बिल क्लिंटन की पत्नी) द्वारा दिया गया संदेश खुद ब खुद स्थिति स्पष्ट कर देता है। 'यहां बीजिंग में हमारे लिए कहने का और संसार के लिए सुनने का यह समय है, कि महिलाओं के अधिकारों की मानव अधिकारों से अलग चर्चा करना अब और स्वीकार्य नहीं है। यदि कोई एक संदेश है जो सम्मेलन में गूंजता है, तो वह यह है कि महिलाओं के अधिकार मानव अधिकार हैं और मानव अधिकार महिलाओं के अधिकार हैं' (US Information Service, Wireless file, Sept. 6, 1995)।

जरा सोचिए 2

महिलाओं के साथ समान व्यवहार के विषय में मानव अधिकार आयोग (1946) का क्या कहना है? CEDAW का अर्थ क्या है?

महिलाओं के मानव अधिकारों के लिए चौथे संयुक्त राष्ट्र विश्व महिला सम्मेलन बीजिंग 1995 का क्या महत्व है?

1.4 महिलाएँ और भारत में मानव अधिकार

इस भाग में भारत में मानवाधिकार (खासकर महिलाओं के संदर्भ में) पर विचार किया गया है। भारत के संविधान में भी इसका प्रावधान है। इसमें महिलाओं के अधिकारों, विशेषत: महिलाओं के विरूद्ध हिंसा के मुद्दे पर विचार करते हुए महिला आंदोलनों और संस्थागत व्यवस्था की भूमिका पर विचार-विमर्श किया गया है।

1.4.1 संवैधानिक उपाय

भारत में राष्ट्रीय स्तर पर मानव अधिकारों को लागू करने के लिए 1950 में संवैधानिक उपाय किए गए हैं। संविधान का लक्ष्य है– नागरिकों के लिए सामाजिक, आर्थिक और राजनैतिक न्याय, विश्वास और अभिव्यक्ति की स्वतंत्रता, हैसियत तथा सभी अवसरों की समानता सुरक्षित करना और बंधुता को बढ़ावा देना जोकि व्यक्ति की प्रतिष्ठा और राष्ट्र की एकता आश्वस्त करती है। मानव अधिकार घोषणा पत्र से संबंधित अनेक समझौते और संविदाएं संविधान में वर्णित मौलिक अधिकारों में मुखरित

होते हैं, जोकि न्यायालय, और राज्यनीति जो कि राज्य के लिए कार्य के मार्गदर्शक सिद्धांत वर्णित करती है, के संचालक सिद्धांत में निहित हैं।

भारत में महिलाओं को हर क्षेत्र में पुरुषों के साथ बराबरी दी गई है। राज्य केवल धर्म, नस्ल, जाति, लिंग, जन्म स्थान या इनमें से किसी एक के आधार पर किसी भी नागरिक (अनुच्छेद 15 '2') के साथ भेदभाव नहीं कर सकता। किंतु, इस अनुच्छेद का कोई भी (प्रावधान) राज्य को महिलाओं और बच्चों के लिए विशिष्ट प्रावधान बनाने से नहीं रोक सकता (15 '3')। राज्य के अधीन किसी कार्यालय में नियुक्ति या रोज़गार संबंधित असमानता या विभेद का आधार स्त्री-पुरुष भेद नहीं हो सकता। राज्य महिलाओं के कल्याण (अनुच्छेद 39) के लिए नीति सिद्धांत और मातृत्व सहायता और कार्य की मानवीय दशाओं के कर्त्तव्य निर्धारित करने के लिए एक प्रावधान बनाता है। भारत में, इस प्रकार, मानव अधिकारों का तात्पर्य है, भारत के संविधान, द्वारा व्यक्ति के जीवन, स्वतंत्रता, समानता और प्रतिष्ठा से संबंधित अधिकार। उदाहरण स्वरूप, मत देने और चुने जाने का अधिकार (अनुच्छेद 325 और 326) मानवाधिकार अनुच्छेद 21); कार्य का अधिकार (अनुच्छेद 14, मानवाधिकार अनुच्छेद 23 '1' ,) और बच्चों के लिए निःशुल्क और अनिवार्य शिक्षा का अधिकार (अनुच्छेद 45) 1979 में भारत अन्तरराष्ट्रीय आर्थिक, सामाजिक और सांस्कृतिक अधिकारों पर हुए समझौते में शामिल हो गया। 1979 में भारत आर्थिक, सामाजिक और सांस्कृतिक अधिकारों पर अंतर्राष्ट्रीय संविदा और साथ ही सिविल और राजनैतिक अधिकारों पर संविदा का सदस्य बन गया है। भारत 1993 में महिलाओं के विरूद्ध सब प्रकार के विभेद उन्मूलन पर समझौते और साथ ही साथ बच्चों के अधिकारों पर समझौते का सदस्य बन गया। भारत की तरफ से ये प्राथमिक प्रयास मानव अधिकार और साथ ही साथ महिलाओं के प्रति वचनबद्धता दर्शाती है। 1993 में मानव अधिकार सुरक्षा अधिकार अधिनियम बनाकर राष्ट्रीय मानवाधिकार आयोग की नींव डाली गई जिसकी स्थापना अक्टूबर 1993 में की गई। (NHRC, New Delhi, Booklet, 1995)

1.4.2 मानव अधिकार मुद्दे और महिला आंदोलन

सभी प्रकार के कार्यक्रमों और नीतियों में स्त्री-पुरुष भेदभाव को दूर करने के लिए महिला आंदोलन सक्रिय हैं। इन आंदोलनों के अलावा इस क्षेत्र में और भी कई आंदोलन चल रहे हैं जिनसे महिला आंदोलनों को बल मिलता है।

यद्यपि महिलाओं ने पिछली शताब्दी के अंत तक अपने को संगठित करना आरंभ कर दिया था, वे स्वतंत्रता संग्राम के समय सक्रिय हुईं जिसका काफी श्रेय महात्मा गांधी को जाता है। उन्हीं की वजह से बड़ी संख्या में महिलाएँ अपनी गृहस्थी की परम्परागत चारदीवारी से बाहर निकली। महिला आंदोलन का नवीन दौर 1974 में भारत में महिलाओं की हैसियत पर समिति की रिपोर्ट जमा करने के साथ 1970 में आरंभ हुआ। अनेक महिला समूह, गैर-सरकारी संगठन, राजनैतिक दलों के महिला दल, महिला प्रकोष्ठ और विश्वविद्यालयों में महिला केंद्र खुल गये। उन्होंने बलात्कार और दहेज संबंधी, अनेक मुद्द उठाये और उन पर चर्चा की और उन मुद्दों से संबंधित कानूनों के संशोधन के लिए सभाएं की। उदाहरण के लिए, दिल्ली में हुआ दहेज विरोधी प्रचार एक महत्वपूर्ण घटना थी, जिसके अनुभव से महिलाओं को सलाह और क़ानूनी सहायता की मंत्रणा की ज़रूरत सामने आई। इसके फलस्वरूप देश के कोने-कोने में कानूनी सहायता और मंत्रणा केंद्र बनाये गये और भारत में महिलाओं को संविधान और कानून द्वारा उनको प्रदत्त अधिकारों को लागू करने को अधिक संगठित होकर कदम उठाने के लिए मार्ग प्रशस्त किया।

तब तक बड़े पैमाने पर यह अहसास कर लिया गया था कि इस तरह के समस्त मुद्दे मानव अधिकार के मुद्दे हैं और उनका उल्लंघन मानव अधिकारों का उल्लंघन है। अच्छी और पर्याप्त शिक्षा और स्वास्थ्य सुविधाएं तथा सुरक्षित वातावरण के साथ-साथ घर या कार्यस्थल पर, महिलाओं के विरूद्ध हिंसा और आर्थिक तथा राजनैतिक संस्थानों में स्त्री-पुरुष भेदभाव भी मानव अधिकारों का उल्लंघन है। पर्यावरण को बचाने के लिए सत्तर के दशक में चिपको आंदोलन और अस्सी तथा नब्बे के दशक

स्त्री-पुरुष भेद के खिलाफ महिलाओं का एक जुट संघर्ष

सौजन्य : सी.एस.आर., नई दिल्ली

के आरंभ में अच्छे स्वास्थ्य के लिए शराब विरोधी आंदोलन जिससे शराब के लाइसेंस जारी होने बंद हो गये थे– ऐसे कुछ ही उदाहरण हैं जोकि मानव अधिकारों के लिए लड़ने के लिए महिलाओं के स्वयं के प्रयास दर्शाते हैं।

पिछले कुछ वर्षों में आंदोलन और मुद्दों में विभिन्नता, विस्तार और फैलाव आया। महिला आंदोलन सरकार के तरीके और पद्धति को प्रभावित करने में सफल रहा जोकि कल्याणकारी से विकास और अधिकार प्राप्ति गामी हो गया है। 31 जुलाई 1992 को राष्ट्रीय महिला आयोग की स्थापना की गई है। तदन्तर, अनेक महिला राज्य आयोग या तो बन गये हैं या बनने की प्रक्रिया में हैं। 73वीं या 74वीं संवैधानिक संशोधन अधिनियमों के पारित होने से महिलाओं के लिए पंचायतों और शहरी स्थानीय निकायों में एक-तिहाई जगहें आरक्षित करता है। ये अधिनियम 24 अप्रैल 1993 को लागू हुए। आज, अनेक राज्य सफलतापूर्वक चुनाव आयोजित कर चुके हैं और इन स्थानीय निकायों में सब स्तरों पर 33 प्रतिशत या अधिक महिलाएँ हैं। भारत का 1993 में महिलाओं के मानव अधिकार संधि को दृढ़ बनाने के लिए विश्व राष्ट्रों से जुड़ना भी कोई कम गहत्वपूर्ण घटना नहीं है।

बीजिंग सम्मेलन (1995) में महिलाओं का मुद्दा सर्वप्रमुख था। भारत सरकार ने भी इस दिशा में अपनी प्रतिबद्धता व्यक्त की। इसके अनुसार "इतिहास गवाह है यद्यपि महिलाओं के मनुष्य के रूप में अधिकार के लिए संघर्ष लम्बा और कठिन है, यह वह संघर्ष है जिस पर दांव लगाना चाहिए और जीतना चाहिए।" (Fourth World Conference on Women, Beijing 1995, Country Report, Govt. of India, 128 and 130)।

1.4.3 भारत में मानव अधिकार के रूप में महिलाओं के अधिकार

महिलाओं के अधिकार मानव अधिकार हैं और महिलाओं के अधिकारों का उल्लंघन मानव अधिकारों का उल्लंघन है। यह एक नारा और विश्वास है जो विश्व में (उसमें भारत कोई अपवाद नहीं है) महिलाओं की एकता दर्शाता है। यह विचार दो बातों पर ध्यान केंन्द्रित करता है, एक, कि समस्त मुद्दों–गरीबी से विकास तक और स्वास्थ्य और शिक्षा से शक्ति प्राप्ति तक तथा शांति पर चर्चा में, महिलाओं का उल्लेख आवश्यक है। इस प्रकार की समस्त चर्चाओं में एक स्त्री-पुरुष परिप्रेक्ष्य होना चाहिए चूंकि वे महिला और पुरुष दोनों को प्रभावित करती हैं दूसरा, कि कुछ विशेष भेदभाव मुद्दे हैं जैसे महिलाओं के विरूद्ध हिंसा जिसपर विशेष ध्यान देने की आवश्यकता है। भारत में, महिलाएँ वंचित हैं और पुरुष प्रधान समाज के प्राचीन परम्परागत नियमों और साथ ही विकास की प्रकिया के प्रसंग में उत्पन्न ताकतों से दुःख झेलती हैं। यद्यपि, अनेक पहलुओं जैसे स्वास्थ्य, शिक्षा और रोज़गार में महिलाओं की स्थिति सुधरी है, फिर भी पुरुषों की तुलना में वे बहुत पीछे हैं। विकास और शक्ति प्राप्ति के कुछ सूचकों से यह पता चलता है।

स्त्री-पुरुष अनुपात (हर हजार पुरुषों पर 927 स्त्रियां हैं, 1993) जोकि पिछलों दशकों में लगातार घट रही है और गंभीर चिंता का विषय है। जन्म के समय आयु संभावना पिछले कुछ वर्षों में बढ़ गई है जो अब (1993) महिलाओं के लिए 60.7 वर्ष और पुरुषों के लिए 60.6 वर्ष है। एक हजार जीवित जन्मों पर 81 नवजात मृत्यु-दर और हर एक लाख जीवित जन्मों पर (1993) 570 मातृत्व मृत्यु-दर अब भी अधिक है जो बाल देखभाल और महिलाओं की संतानोत्पत्ति संबंधी स्वास्थ्य समस्याओं जोकि अच्छी चिकित्सा-सुविधाओं के अभाव में बढ़ गई हैं, की उपेक्षा दर्शाता है। यह पाया गया था कि 15-49 की आयु वाली 88 प्रतिशत गर्भवती महिलाएँ रक्तहीनता से पीड़ित थीं। अभी भी महिलाओं और पुरुषों की साक्षरता दर में बहुत बड़ा अंतर है जोकि क्रमश: 39.29 और 64.3 प्रतिशत है। यद्यपि विद्यालय में नामांकन अनुपात बढ़ रहा है, बीच में पढ़ाई छोड़ने विशेषत: लड़कियों का, अभी भी गंभीर समस्या बनी हुई है। प्राथमिक चरण पर प्रवेश लेने वाली केवल लगभग 32 प्रतिशत लड़कियां विद्यालय की शिक्षा के अंत तक पहुंच पाती हैं। पुरुषों के 51.61 प्रतिशत के विपरीत महिलाओं की केवल कार्य में भागीदारी 22.27 प्रतिशत में निरंतर उन्नति है जबकि उनमें से अधिकतम जोकि 85.9 प्रतिशत है अभी तक असंगठित क्षेत्र में हैं। (Fourth World Conference on Women, Country Report, Government of India, 1995 : 10-22)। अनेक निर्णय लेने वाले निकायों में महिलाओं का प्रतिनिधित्व अभी भी बहुत ही कम है। लोकसभा में यह कभी 8 प्रतिशत से अधिक नहीं गया और यह विभिन्न विधानसभाओं में 3 से 6 प्रतिशत के बीच में पाया जाता है। केवल लगभग 2.5 प्रतिशत महिलाएँ शासक या प्रबंधक हैं और 20.5 प्रतिशत व्यावसायिक या तकनीकी कार्यकर्त्ता हैं (UN Human Development Report, 1996)।

न केवल महिलाओं में मूलभूत सुविधाओं और निर्णय लेने वाली शक्तियों के मानव अधिकार सीमित हैं, महिलाएँ अधिकतर अपने विरूद्ध हिंसा से कष्ट उठाती हैं। प्रशासन की तरफ से, दहेज कानूनों में संशोधन और कड़े कदम उठाने के बावजूद पिछले, कुछ वर्षों में दहेज-मृत्यु और घरेलू हिंसा के अन्य स्वरूपों में वृद्धि हुई है। यौन उत्पीड़न घर, समाज और कार्य स्थान पर कम नहीं हुआ है। हिंसा और इसकी निरंतरता अधिक जाति संघर्षों, वर्ग, नृजाति, जातिवाद, कट्टरवाद और आतंकवाद से संबंधित है जो एकत्रित रूप में महिलाओं पर नकारात्मक असर डालता है। भावनात्मक हिंसा, भ्रूण हत्या, महिलाओं को पोषण भोजन न देना क्रूरता के कुछ अन्य उदाहरण है। (Fourth World Conference on Women, Beijing, 1995, Country Report, Government of India, 98-102)।

महिला सम्मेलन बीजिंग (1995) में प्रस्तुत की गई रपट में महिलाओं के विरूद्ध हिंसा के खतरे का विरोध करने पर एक पूरा सत्र आयोजित किया गया था जो विषय की बढ़ती हुई महत्ता को दर्शाती है• जबकि बीस वर्षों पहले भारत में महिलाओं की स्थिति पर तैयार रपट (1992) में इस हिंसा का कोई

उल्लेख नहीं था। अभी हाल में ही गठित राष्ट्रीय मानव अधिकार आयोग (1992) महिलाओं के अधिकारों सहित मानव अधिकारों के उल्लंघन के मुकद्मों को सुलझाने के लिए कदम उठाती है। यह राष्ट्रीय महिला आयोग ही है जो मुख्यत: महिलाओं के अधिकारों के उल्लंघन और वंचन के मुकदमे लेता है और उनके कल्याण और विकास की दिशा में कार्य करता है। उन्होंने यौन उत्पीड़न, महिलाओं पर क्रूरता, उदाहरण स्वरूप उत्तराखंड में, दहेज-मृत्यु के मुकद्मे, कार्य-स्थान पर उत्पीड़न और अवसरों की पूर्ण भेदभाव आधारित अस्वीकृति के मुकद्मे लिये हैं (राष्ट्रीय महिला आयोग, ब्रोशर, नई दिल्ली)।

यद्यपि बहुत कुछ करने की ज़रूरत है, सरकारी और गैर-सरकारी संगठनों और महिला समूहों के प्रयासों ने सिद्ध कर दिया है कि महिलाओं के विषय अन्य समस्त मुद्दों का केन्द्र बन गये हैं और स्त्री-पुरुष भेदभाव संबंधी मुद्दों पर अधिक ध्यान दिया जा रहा है। यह मान्य हो गया है कि महिलाओं के अधिकार मानव अधिकार हैं और उनका उल्लंघन मानव अधिकारों का उल्लंघन है। भारत इस मुद्दे पर यू.एन. समझौतों मुख्यत: CEDAW के प्रति एक हस्ताक्षरकर्ता (संधि पत्र पर हस्ताक्षर करने वाले) के रूप में वचनबद्ध है।

अपने अनुभव से सीखिए 1

परिवार, समाज और कार्यस्थान पर अपने अनुभव और अवलोकन के आधार पर, महिलाओं के अधिकारों के उल्लंघन की घटनाओं का विश्लेषण करें जोकि आपके अनुसार मानव अधिकारों का भी उल्लंघन है।

1.5 सारांश

इस इकाई में हमने मानव अधिकार की संकल्पना, महिलाओं के अधिकार मानव अधिकार कैसे हैं और महिलाओं के अधिकारों का उल्लंघन मानव अधिकारों का उल्लंघन क्यों है पर विचारविमर्श किया है। यह केवल गरीबी, निरक्षरता, स्वास्थ्य समस्याओं, राजनैतिक रूप से एक तरफ करने की प्रक्रिया (political marginalisation) या सामाजिक लांछन जिनका महिलाएँ सामना करती हैं के तहत ही नहीं देखा गया है, बल्कि मुख्यत: उसके विरूद्ध हिंसा के भी, जो परिवार, कार्यस्थान, सड़कों पर पनपती है और युद्ध की स्थिति में आतंकवाद जातिगत और जातिगत गतिविधियों में भी पनपती है। कुल मिलाकर गर्व और प्रतिष्ठा सहित एक मनुष्य के रूप में रहने की स्वतंत्रता उन्हें नहीं है। यह इकाई इस दिशा में संयुक्त राष्ट्र द्वारा लिये गये विभिन्न कदमों और महिलाओं और महिला आंदोलन का महिला अधिकारों के इस मुद्दे को मानव अधिकार और संबंधित पहलुओं को समस्त चर्चाओं के केंद्र में लाने के प्रयासों की भी चर्चा करती है। ये मुद्दे भारत के संदर्भ में भी वर्णित किये गये हैं।

1.6 शब्दावली

चार्टर : एक मान्यता प्राप्त प्राधिकारी द्वारा लिखित कथन।

आयोग : एक कार्य को पूर्ण करने के लिए कानूनी तौर से अधिकार प्राप्त व्यक्तियों का एक समूह।

समिति : विशेष व्यापार की देखभाल के लिए नियुक्त व्यक्तियों का एक समूह।

समझौता : राज्यों/शासकों के बीच समझौता। यह एक संधि से कम औपचारिक है।

संविदा : औपचारिक समझौता जो कानूनी रूप से बाध्यकारक हो।

अनुमोदन : एक दावे को सहमति या समर्थन देना।

लॉबी : एक कानून बनाने वाले निकाय के सदस्य को प्रभावित करना।

ट्रिब्यून : एक सभा को सम्बोधित करने वाले वक्ताओं का एक मंच।

1.7 कुछ उपयोगी पुस्तकें

बावजा, जी.एन. (1995) *ह्यूमन राइट्स इन इंडिया.* नई दिल्ली : अनमोल पब्लिकेशंस प्राइवेट लिमिटेड.

यू.एन. (1995) *द यूनाइटेड नेशंस एंड ह्यूमन राइट्स,* 1945-1995. न्यूयार्क : यूनाइटेड नेशंस पब्लिकेशंस.

यू.एन. (1995) *द यूनाइटेड नेशंस एंड द एडवांसमेंट आफ वूमैन,* 1945-1995. न्यूयार्क : यू.एन. पब्लिकेशंस.

इकाई 2 स्त्री-पुरुष समानता : विश्वव्यापी बहस

रूपरेखा

2.0 उद्देश्य

2.1 प्रस्तावना

2.2 संयुक्त राष्ट्र द्वारा की गई पहल

2.2.1 संयुक्त राष्ट्र महिला हैसियत आयोग

2.2.2 अन्तरराष्ट्रीय महिला सम्मेलन

2.3 स्त्री-पुरुष भेदभाव पर क्षेत्रीय बहस: दक्षेस (सार्क) पहल

2.4 कुछ महत्वपूर्ण विषयों पर बहस

2.4.1 महिलाओं के राजनैतिक अधिकार

2.4.2 महिलाओं का शारीरिक शोषण और संबंधित मुद्दे

2.4.3 विकास में महिलाओं की भूमिका

2.4.4 बदलती भूमंडलीय अर्थव्यवस्था और महिलाएं

2.4.5 महिलाओं के खिलाफ़ हिंसा

2.5 सारांश

2.6 शब्दावली

2.7 कुछ उपयोगी पुस्तकें

2.0 उद्देश्य

इस इकाई में स्त्री-पुरुष भेदभाव और पूर्वाग्रह के कारण महिलाओं के खिलाफ हो रहे भेदभाव पर हुई विश्वव्यापी बहस के प्रमुख विषयों पर विचार किया गया है। इस इकाई को पढ़ने के बाद आप:

- इस बहस से जुड़े घटनाक्रमों का विवरण दे सकेंगे;
- इस बहस से जुड़े प्रमुख व्यक्तियों से परिचित हो सकेंगे; और
- इस बहस के प्रमुख विषयों को पहचान सकेंगे।

2.1 प्रस्तावना

यह इकाई पिछली इकाई का ही विस्तार है। पिछली इकाई में हमने महिलाओं के अधिकारों के मानवाधिकारों के रूप में उदय के संदर्भ और विषय पर विचार किया था। इस इकाई में हम अन्तरराष्ट्रीय स्तर पर होने वाले प्रयत्नों को संक्षेप में देखने का प्रयत्न करेंगे जिसके कारण स्त्री-पुरुष भेदभाव के संबंध में मौजूदा विश्वव्यापी बहस को एक स्वरूप प्राप्त हुआ है। द्वितीय विश्व युद्ध के परिदृश्य में इस बहस को विशेष महत्व मिला है। इसके बाद ही पूरे विश्व में महिलाओं के अधिकारों के प्रति जागरूकता भी आई है। संयुक्त राष्ट्र ने अपने प्रस्तावों और सम्मेलनों के जरिए इन भावनाओं को मूर्त रूप देने के लिए पहल की है।

स्त्री-पुरुष भेदभाव पर हुई विश्वव्यापी बहस की विषय वस्तु पर हम तीन प्रमुख स्तरों पर विचार करेंगे। सबसे पहले हम इस बहस को एक स्वरूप प्रदान करने की दिशा में संयुक्त राष्ट्र द्वारा की गई पहल पर विचार करेंगे। इसमें संयुक्त राष्ट्र के प्रमुख अंगों जैसे संयुक्त राष्ट्र सचिवालय, आम सभा और सबसे महत्वपूर्ण महिला हैसियत आयोग और उनकी विशिष्ट भूमिकाओं पर विचार किया जाएगा जिनके जरिए संयुक्त राष्ट्र ने पहल की।

इसके बाद हम महिलाओं के संबंध में हुई क्षेत्रीय बहस पर विचार करेंगे और इस क्रम में दक्षिण एशियाई देशों के क्षेत्रीय सहयोग संगठन पर भी विचार किया जाएगा जिन्हें मिलाकर दक्षिण एशियाई क्षेत्रीय सहयोग संगठन अर्थात दक्षेस या सार्क का निर्माण किया गया है। इकाई में भारत पर विशेष रूप में विचार किया गया है।

अन्त में हमलोग महिलाओं के संबंध में चल रही बहस के विशिष्ट विषयों और बहसों को मानने और समझने का प्रयत्न करेंगे।

2.2 संयुक्त राष्ट्र द्वारा की गई पहल

द्वितीय विश्व युद्ध के बाद विश्व स्तर पर महिलाओं की हैसियत और उनकी स्थिति को ऊपर उठाने की दिशा में विश्वस्तरीय प्रयास किए गए। द्वितीय विश्व युद्ध के बाद एक उत्तर औपनिवेशिकता की विविधता से युक्त विश्व का उदय हुआ; इसके बाद भी केवल 31 देशों ने महिलाओं को मतदान का अधिकार दिया। गौर करने की बात है कि यूनाइटेड किंगडम जैसे देश में भी महिलाओं को 1948 में जाकर मतदान का अधिकार प्राप्त हुआ। दुनिया के अधिकांश हिस्सों में महिलाओं के लिए किसी भी राजनैतिक या सामाजिक क्षेत्र में हिस्सेदारी करना बहुत मुश्किल था क्योंकि उन पर रीति रिवाज और संस्कृति का कड़ा प्रतिबंध लगा हुआ था।

महिलाओं के अधिकार के प्रश्न को सामने रखने के लिए संयुक्त राष्ट्र को एक महत्वपूर्ण भूमिका अदा करनी थी। युद्ध के बाद खासतौर पर ऐसी स्थिति पैदा हुई। इस दिशा में पहल करते हुए संयुक्त राष्ट्र ने 1946 में संयुक्त राष्ट्र महिला हैसियत आयोग की स्थापना की। 1945 में इसने संयुक्त राष्ट्र के आर्थिक और सामाजिक परिषद के उप आयोग के रूप में काम करना शुरू किया था।

अन्तरराष्ट्रीय महिला समस्या समन्वयन ने विभिन्न देशों के संदर्भ में पूरे विश्व की महिलाओं की तुलनात्मक स्थिति और सांख्यिकी संबंधी असमानताओं को सामने लाने में मदद की। संयुक्त राष्ट्र ने कुछ प्रमुख सांख्यिकी विवरण प्रकाशित किया जैसे 1986 में विकास में महिलाओं की भूमिका पर पहला विश्व सर्वेक्षण प्रकाशित हुआ और 1991 में 'दुनिया की महिलाएँ: प्रवृत्तियां और सांख्यिकी', शीर्षक से पूरी दुनिया की महिलाओं की स्थिति संबंधी आंकड़ा प्रकाशित किया गया।

इनके अलावा संयुक्त राष्ट्र ने कई सम्मेलनों का आयोजन किया और अपने विभिन्न अंगों की गतिविधियों का संयोजन किया। खासतौर पर महिला आयोग पर विशेष ध्यान दिया। अगले भाग में हम यह देखने का प्रयास करेंगे कि पूरी दुनिया में महिलाओं की समस्याओं से निपटने के लिए संयुक्त राष्ट्र महिला प्रतिष्ठा आयोग ने क्या भूमिका निभाई।

2.2.1 संयुक्त राष्ट्र महिला हैसियत आयोग

महिलाओं के प्रश्न पर लोगों को जागृत करने के लिए और राजनैतिक विचार-विमर्श की ओर अग्रसर करने के लिए संयुक्त राष्ट्र ने पहल की और इसके लिए महिला हैसियत आयोग की स्थापना की। इस आयोग ने दुनिया भर के हिस्सों में रह रही महिलाओं की स्थिति के संबंध में आंकड़े इकट्ठे किए।

इस आयोग ने सार्वभौम मानव अधिकार उद्घोषणा का मसौदा तैयार करने में मदद की जिसने अन्तरराष्ट्रीय मानव अधिकार विधेयक और अन्तरराष्ट्रीय आर्थिक, सामाजिक और सांस्कृतिक

अधिकार प्रतिज्ञा पत्र शामिल थे। इस प्रकिया में आयोग ने मसौदे की भाषा पर विशेष ध्यान रखा और यह ध्यान रखा कि वैधानिक दृष्टि से महिलाओं को 'स्पष्ट समानता' प्राप्त हो।

दिसम्बर 1963 में आम सभा ने महिला आयोग से यह भी अनुरोध किया कि वह महिलाओं के खिलाफ होने वाले सभी भेदभावों के उन्मूलन के लिए मसौदे पर काम करना शुरू करे। इसके बाद 1969 में महिलाओं के खिलाफ सभी प्रकार के भेदभाव के उन्मूलन की उद्घोषणा ने एक सम्मेलन का रूप ले लिया। 1979 में इस उद्घोषणा ने महिलाओं को समानता प्राप्त करने के लिए वैधानिक अधिकार प्रदान किया। इस सम्मेलन ने महिलाओं के खिलाफ होने वाले भेदभाव को समर्थन देने वाले पुराने कानूनों, रीति रिवाजों और नियमों को समाप्त करने और नए कानून बनाने का आह्वान किया।

1972 में महिला हैसियत आयोग के गठन के 25 वर्ष पूरे होने के उपलक्ष्य में आयोग ने आम सभा को सुझाव दिया कि वर्ष 1975 को अन्तरराष्ट्रीय महिला वर्ष घोषित किया जाए।

आयोग द्वारा प्रस्तावित विषयों को खास महत्व देते हुए अन्तरराष्ट्रीय महिला वर्ष मनाया गया। राजनैतिक और वैधानिक दृष्टि से महिलाओं की समानता और विकास की प्रकिया में महिलाओं के योगदान का मूल्यांकन और विश्व शांति को मजबूत बनाने में उनके बढ़ते योगदान जैसे विषयों पर प्रमुख रूप से विचार किया गया।

2.2.2 अन्तरराष्ट्रीय महिला सम्मेलन

1975 में अन्तरराष्ट्रीय महिला वर्ष के उपलक्ष्य में अन्तराष्ट्रीय महिला सम्मेलन का आयोजन किया गया। इस अन्तरराष्ट्रीय महिला सम्मेलन में संयुक्त राष्ट्र के 133 सदस्य राज्यं से प्रतिनिधि मंडलों ने हिस्सा लिया। इसके अलावा सम्मेलन में राज्य प्रतिनिधि मंडलों ने भी हिस्सा लिया। अलग से 6000 गैर सरकारी संगठन के प्रतिनिधि भी इकट्ठा हुए जिन्हें अन्तरराष्ट्रीय महिला वर्ष ट्रिब्यून के नाम से जाना गया।

इस सम्मेलन में प्रतिनिधियों ने 1975-85 के दशक के लिए एक विश्व योजना बनाई और महिलाओं के विकास के लिए कुछ दिशा निर्देश तय किए गए। मुख्य रूप से इसके तीन उद्देश्य थे . पुरुषों और महिलाओं के बीच समानता को बढ़ावा देना, पूर्ण विकास के प्रयत्न में महिलाओं की भागीदारी सुनिश्चित करना और विश्व शांति को मजबूत बनाने में महिलाओं के योगदान को बढ़ाना।

कार्य योजना ने 1980 तक निर्धारित लक्ष्यों को प्राप्त करने की योजना बनाई। इस योजना को चलाने का मुख्य भार राष्ट्रीय सरकारों को सौंपा गया। संयुक्त राष्ट्र ने अपनी ओर से आंकड़ा संग्रहण और विश्लेषण में सुधार लाने का प्रावधान शामिल किया।

सम्मेलन ने सुझाव दिया कि संयुक्त राष्ट्र 1976-85 के दशक को अन्तरराष्ट्रीय महिला दशक घोषित करे। सम्मेलन की समाप्ति पर एक विश्व कार्य योजना बनाई गई जिसे मैक्सिको उद्घोषणा के नाम से जाना गया। इसमें महिलाओं की समानता, विकास और शांति में उनके योगदान की बात की गई। इस सम्मेलन ने उस समय के कई विवादास्पद राजनैतिक मुद्दों पर भी अपना मत प्रकट किया था (उदाहरण के लिए जियोनिज्म)।

इस सम्मेलन ने अपने सदस्य देशों को एक वैधानिक प्रविधि का मसौदा तैयार करने का आह्वान किया ताकि 1967 की महिला भेदभाव उद्घोषणा को प्रभावी बनाया जा सके।

मेक्सिको सिटी सम्मेलन के बाद संयुक्त राष्ट्र की आम सभा ने 1976-85 को संयुक्त राष्ट्र महिला: समानता विकास और शांति के दशक के रूप में घोषित किया।

इस सम्मेलन ने नीति-वैधानिक स्तर पर कुछ प्रमुख उपलब्धियां हासिल की जिस पर 1992 में भारत ने हस्ताक्षर किया। 15 मार्च 1996 तक 185 संयुक्त राष्ट्र के सदस्य राज्यों में से 152 सदस्य इसमें शामिल हो चुके थे।

सम्मेलन का एक प्रमुख आधार और दृष्टिकोण यह था कि महिलाएं न केवल राजनैतिक और वैधानिक क्षेत्र में बल्कि वैवाहिक, घरेलू और पारिवारिक स्तर पर भी पुरुषों के बराबर हों। दूसरे शब्दों में इस सम्मेलन ने यह बात सामने रखी कि महिलाओं के साथ भेदभाव के प्रश्न पर सार्वजनिक जीवन और निजी जीवन दोनों के बीच के भेद को समाप्त करना होगा। अर्थात सार्वजनिक जीवन के साथ साथ निजी जीवन में भी इस भेदभाव को समाप्त करना होगा।

किसके लिए?

सौजन्य : सी. डब्ल्यू. डी. एस., नई दिल्ली

सम्मेलन के इस मसौदे के अनुसार महिला भेदभाव उन्मूलन के लिए एक समिति की स्थापना की गई जिसमें 1979 के सम्मेलन से इसका तालमेल बिठाने के लिए विशेषज्ञों की सहायता ली गई।

1980 में कोपेनहेगन में अन्तरराष्ट्रीय महिला सम्मेलन का आयोजन किया गया जिसमें मेक्सिको कार्य योजना को सुधारा गया और मेक्सिको प्रस्ताव के कार्यान्वयन की प्रगति की समीक्षा की गई। इसके अलावा इस सम्मेलन में महिलाओं के संदर्भ में तीन क्षेत्रों पर विशेष जोर दिया. रोजगार, स्वास्थ्य और शिक्षा। मेक्सिको सम्मेलन द्वारा निर्धारित लक्ष्यों पर विचार करते समय इसकी जरूरत महसूस की गई।

मेक्सिको सम्मेलन के परिणामों का आलोचनात्मक मूल्यांकन करते हुए इस सम्मेलन ने इस बात का जिक्र किया कि कई देशों में महिलाओं की प्रतिष्ठा में सुधार लाने के लिए राजनैतिक इच्छा शक्ति की कमी है और वहां महिलाओं की आवश्यकताओं की पूर्ति पर ध्यान नहीं दिया जा रहा है और बहुत कम महिलाएं निर्णय लेने की स्थिति या पद पर विराजमान हैं। संयुक्त राष्ट्र सचिवालय द्वारा 1984 में संयुक्त राष्ट्र विकास की भूमिका का विश्व सर्वेक्षण प्रकाशित किया गया जिसमें महिलाओं की स्थिति

सुधारने के लिए विश्व स्तर पर किए गए प्रयासों का उल्लेख किया गया था। इस सर्वेक्षण में यह दिखाया गया कि इस कार्यक्रम से कुछ ही महिलाओं को फायदा हो सका था। इस समीक्षा ने 1985 में नौरोबी में होने वाले तीसरे विश्व महिला सम्मेलन के लिए आधार भूमि का काम किया।

नौरोबी सम्मेलन में महिलाओं के विकास के लिए प्रगतिशील रणनीतियां तैयार की गईं और इसमें मैक्सिको कार्य योजना में सुधार किया गया और भविष्य की रणनीतियां बनाई गईं। इन विभिन्न कार्यक्रमों को कार्यान्वित करने के लिए राष्ट्रीय स्तर पर समानता स्थापित करने कों प्रमुख रणनीति के रूप में शामिल किया गया। इस दस्तावेज में कहा गया कि विभिन्न देश अलग-अलग विकास की स्थिति में है। अत: उनकी अपनी विकासात्मक नीतियों के अनुसार उन्हें अपनी प्राथमिकताएं तय करने का अधिकार है।

संयुक्त राष्ट्र की 50वीं वर्षगांठ पर 1995 में बीजिंग सम्मेलन आयोजित किया गया। सरकारी और गैर सरकारी प्रतिनिधियों का अब तक का यह सबसे बड़ा सम्मेलन था। बीजिंग उद्घोषणा और कार्य योजना को 189 देशों ने एकमत से स्वीकार कर लिया और पिछले तीन सम्मेलनों में महिलाओं की समानता स्थापित करने के प्रयत्न को राजनैतिक सहमति मिल गई। अगले 15 वर्षों में अन्तरराष्ट्रीय समुदाय द्वारा कार्य किए जाने वाले 12 प्राथमिकता वाले क्षेत्रों की उद्घोषणा की गई।

राष्ट्रीय सरकारों को इन कायक्रमों को लागू करने की सलाह दी गई और सामान्य रूप से संयुक्त राष्ट्र को विशिष्ट रूप से महासचिव को इस कार्य योजना के कार्यान्वयन और निगरानी की विशेष जिम्मेदारी सौंपी गई। संयुक्त राष्ट्र ने अपने कार्यक्रमों और नीतियों में स्त्री-पुरुष भेदभाव के मसले को शामिल करने का सुझाव दिया। इसके परिणामस्वरूप संयुक्त राष्ट्र ने 2000 ई. तक अपने कर्मचारियों के 50 महिला कर्मचारी रखने का प्रण किया। द्वितीय विश्व युद्ध के बाद की अवधि में स्त्री-पुरुष भेदभाव के प्रश्न पर व्यापक विचार विमर्श हुआ। अगले भाग में हम विश्व स्तर पर स्त्री-पुरुष भेदभाव के प्रश्न पर हुई बहस में हिस्सा लेंगे।

जरा सोचिए 1

चारों अन्तरराष्ट्रीय महिला सम्मेलन के प्रमुख विषय क्या थे? क्या इनमें कोई अंतर था? क्या अन्तरराष्ट्रीय स्तर पर भारतीय महिलाओं की समस्याओं को उभारा जा सका?

2.3 स्त्री-पुरुष भेदभाव पर क्षेत्रीय बहस: दक्षेस (सार्क) पहल

स्त्री-पुरुष भेदभाव पर हुई विश्वव्यापी बहस से यह निष्कर्ष सामने आया कि महिलाओं की स्थिति पुरुषों से बदतर है। इस बात को स्वीकार करने के साथ-साथ अनेक सम्मेलनों ने यह भी स्वीकार किया कि महिलाओं की विशिष्ट समस्याओं पर विचार करते समय उनके सामाजिक-सांस्कृतिक और आर्थिक पृष्ठभूमियों पर विचार करना होगा।

दक्षेस (सार्क) देशों ने महिलाओं की समस्याओं पर लोगों का ध्यान आकृष्ट करने के लिए पहल की और उन्होंने 1991-2000 को दक्षेस बालिका दशक के रूप में मनाने की घोषणा की।

इस कार्य योजना के निम्नलिखित उद्देश्य थे:

i) बालिकाओं की जीवन रक्षा और सुरक्षित मातृत्व, खासकर उसे आर्थिक रूप से स्वतंत्र बनाना, और
ii) विकट परिस्थिति में रह रही असुरक्षित बालिकाओं को विशेष संरक्षण प्रदान करना। खासकर आर्थिक और सामाजिक, शारीरिक और मानसिक रूप से पिछड़ी लड़कियों को विशेष संरक्षण प्रदान करना।

विश्व बहस के विपरीत दक्षेस देशों में बालिकाओं के सम्पूर्ण विकास और उन्नति पर ध्यान केंद्रित किया गया। इसके अलावा विश्व स्तरीय और क्षेत्रीय कार्य सूची में बालिकाओं की हत्या और बालिकाओं की भ्रूण हत्या की रोकथाम को विशेष महत्व दिया गया।

सामाजिक विषयों के अलावा समाज में बालिकाओं की वृद्धि और विकास के साथ-साथ विकासात्मक विषयों पर भी विचार किया गया। इसके तहत नवजात शिशु मृत्यु दर को कम करने तथा विकट और साधारण कुपोषण के उन्मूलन पर विचार किया गया। दक्षेस योजना में बालिकाओं की शिक्षा पर भी विचार किया गया। उनकी योजनाओं में महिलाओं की अशिक्षा दर को कम करने का भी लक्ष्य रखा गया। इसमें 15 से 20 वर्ष की महिलाओं पर विशेष ध्यान रखा गया। इस प्रकार के कार्यक्रमों में व्यवसायोन्मुख शिक्षा और वैज्ञानिक दृष्टि विकसित करने वाली शिक्षा पर विशेष बल दिया गया।

क्षेत्रीय स्तर पर देश और समाज के संदर्भ में विशिष्ट और उपयुक्त विषयों पर विचार किया गया। इस प्रकार भारत सरकार ने अनुसूचित जनजाति और अनुसूचित जाति जैसे सामाजिक पिछड़े वर्गों की बालिकाओं पर विशेष ध्यान दिया। एड्स से पीड़ित बच्चों या ऐसे बच्चे जिनके माता-पिता एड्स से पीड़ित हों तथा शारीरिक या मानसिक रूप से अपंग बच्चों पर भी विशेष ध्यान दिया गया।

दक्षेस सम्मेलन ने विभिन्न जटिलताओं पर विचार करने के लिए एक अनुसंधान प्रकोष्ट की स्थापना की और इसमें दक्षेस बालिका वर्ष के रूप में "बालिका और उसके परिवार" की परिस्थिति का विश्लेषण किया गया।

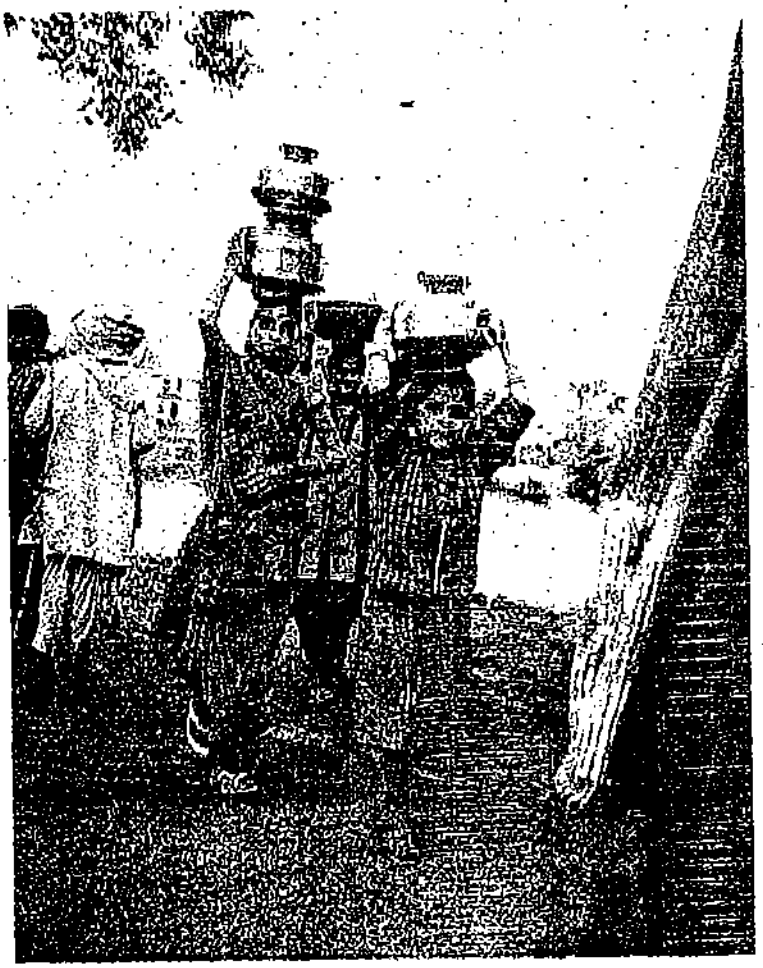

बालिका : उदासीनता का शिकार?

सौजन्य : देबल के. सिंहराय, इग्नो, नई दिल्ली

अनुभव से सीखिए 1

क्या स्थानीय स्तर पर महिलाओं की समस्याएँ अलग तरह की है? जमीनी स्तर पर काम कर रहे कार्यकर्ताओं से इसके बारे में बातचीत कीजिए। इस विचार विमर्श और अनुभव के आधार पर स्थानीय स्तर पर स्त्री-पुरुष मुद्दे पर एक टिप्पणी लिखिए।

2.4 कुछ महत्वपूर्ण विषयों पर बहस

स्त्री-पुरुष भेदभाव से संबंधित बहस के एक प्रश्न अर्थात महिला के राजनैतिक अधिकार पर हम यहां विचार-विमर्श करेंगे। यहां महिलाओं के मताधिकार, प्रतिनिधित्व और प्रतिरोध से संबंधित अधिकारों पर विचार-विमर्श किया जाएगा।

2.4.1 महिलाओं के राजनैतिक अधिकार

इस बहस में सबसे पहले महिलाओं के अधिकार को मानवाधिकार के रूप में देखा गया। 1993 में वियना में आयोजित अन्तरराष्ट्रीय मानवाधिकार सम्मेलन में यह कहा गया था कि "महिलाओं और बालिकाओं के मानवाधिकार सार्वभौम मानवाधिकारों से अपृथक, अभिन्न और अविभाज्य अंग हैं"।

महिलाओं के खिलाफ होने वाली हिंसा पर हुए सम्मेलन को भी इसी रोशनी में देखा जाना चाहिए अर्थात महिलाओं के विकास के मुद्दे को मानवाधिकार के रूप में देखा जाना चाहिए।

संयुक्त राष्ट्र के स्तर पर महिलाओं के अधिकारों के संबंध में कई राष्ट्रीय महिला आंदोलनों और गैर सरकारी संगठनों ने बहस को आगे बढ़ाया।

संयुक्त राष्ट्र बनने के काफी पहले से राष्ट्रीय महिला आंदोलनों ने महिलाओं के लिए समान अधिकार का विचार सामने रखा था। भारत में 20वीं शताब्दी के आरंभ में सरोजिनी नायडु ने इस क्षेत्र में नेतृत्व किया था। महिलाओं के आंदोलनों द्वारा दास प्रथा के खिलाफ आंदोलन चलाया गया था।

दो विश्व युद्धों के दौरान इस प्रवृत्ति को बल मिला जब महिलाएं उद्योगों और कारखानों में बड़ी संख्या में काम करने लगीं। उनके इस उद्यम के कारण द्वितीय विश्व युद्ध के बाद फ्रांस और जापान में उन्हें मताधिकार प्राप्त हुआ।

1985 में हुए नौरोबी महिला सम्मेलन ने संयुक्त राष्ट्र के कई सदस्य राज्यों में इस प्रकार के आंदोलनों को आगे बढ़ाया। सदस्य राज्यों ने स्थानीय, क्षेत्रीय और राष्ट्रीय स्तरों पर महिलाओं के उत्थान के लिए कई प्रकार के उपाय किए।

इसी प्रकार गैर सरकारी संगठन भी इन्हीं मुद्दों पर पूरी दुनिया में महिला अधिकारों के लिए सर्वसम्मति बनाने के लिए कंधे से कंधा मिलाकर काम कर रहे थे। वियना में सम्पन्न हुए मानवाधिकार सम्मेलन में एक समानांतर गैर सरकारी संगठन महिला ट्रिब्यूनल ने महिलाओं के खिलाफ होने वाली हिंसा के प्रमाण प्रस्तुत किए और वक्ताओं ने पूरी दुनिया में मानवाधिकारों के उल्लंघन की चर्चा की।

2.4.2 महिलाओं का शारीरिक शोषण और संबंधित मुद्दे

परम्परा के नाम पर महिलाओं के शारीरिक शोषण के खिलाफ महिलाओं के प्रतिरोध के अधिकार को लगातार महत्व प्राप्त हुआ। एशिया, अफ्रीका, अमेरिका और यूरोप में आप्रवासियों के बीच जनन संबंधी विकृति एक परम्परागत प्रथा है जिससे महिलाओं के स्वास्थ्य पर प्रतिकूल असर पड़ता है। एशिया के कई देशों में अभी भी दहेज संबंधी प्रताड़णा और महिला शिशु हत्या तथा भ्रूण हत्या काफी प्रचलित है।

2.4.3 विकास में महिलाओं की भूमिका

निर्णय लेने वाले निकायों में महिलाओं की भागीदारी का प्रश्न और विकास में उनकी भूमिका परस्पर सम्बद्ध है। महिलावादी विचार से प्रभावित सिद्धांतों के रूप में विकास के संबंध में एक बिल्कुल नया वैकल्पिक दृष्टिकोण सामने आया जिसका देश के लगभग सभी केंद्रीकृत राष्ट्रों ने अनुपालन किया।

विभिन्न निकायों में महिलाओं को प्रतिनिधित्व देने के तर्क में दम हैं क्योंकि अधिकांश देश प्रजातंत्र है और वहां आधी मतदाता महिलाएं हैं। अत: संयुक्त राष्ट्र आर्थिक और सामाजिक परिषद ने 1995 में यह अनुरोध किया कि निर्णय लेने में महिलाओं को शामिल किया जाना चाहिए और उन्होंने इसके लिए 30% का लक्ष्य सामने रखा। यह लक्ष्य एक दूसरे प्ररिप्रेक्ष्य में भी महत्वपूर्ण हैं। महिलाओं की इस भागीदारी से ग्रामीण शक्ति व्यवस्था के पुनर्निर्माण में भी इससे सहायता मिलेगी जिससे तुरंत प्रस्तावित विकास विकल्पों की रोशनी में इसकी फिर से परिभाषा करनी होगी।

2.4.4 बदलती भूमंडलीय अर्थव्यवस्था और महिलाएं

शीत युद्ध की समाप्ति के बाद 80 के दशक के अन्त में कई विकासशील देशों में इस विषय पर हो रही बहस के संदर्भ में संरचनात्मक समायोजन कार्यक्रम चलाए गए। उरूगुए में हुए पक्षीय व्यापार संबंधों के रूप में इसका एक ठोस रूप सामने आया।

आर्थिक विकास के लिए उठाए गए नए कदमों का संबंध भी महिलाओं के विकास से है। हालांकि इसका बल मुख्य रूप से जनतंत्रीकरण, अच्छी व्यवस्था और प्रत्यक्ष आर्थिक विकास के लिए बाजार के उपयोग पर है।

विकास में महिलाओं की भूमिका पर पहले विश्व सर्वेक्षण को 'विकास में महिला' नीति दृष्टिकोण पत्र के नाम से जाना गया। 60 के दशक के कार्यक्रमों में महिलाओं के कल्याण और परिवारोन्मुख कार्यक्रमों, जिसमें महिलाओं की प्रजनन भूमिका पर बल दिया गया था, के विपरीत 'विकास में महिला' नीति दृष्टिकोण में आर्थिक और सामाजिक विकास के महत्व पर बल दिया गया। इसमें आर्थिक विकास को महिलाओं की स्वतंत्रता से जोड़ा गया और इसे राष्ट्रीय और अन्तरराष्ट्रीय विकास एजेंसियों की कार्यसूची में शामिल किया गया।

राज्य के स्वामित्व वाले उद्यमों के निजीकरण द्वारा 80 के दशक में संरचनात्मक समायोजन नीतियों की शुरुआत की गई। ये नीतियां नव क्लासिकल और मुद्रावादी आर्थिक सिद्धांतों पर आधारित थीं जो पिछली 30 वर्षों तक पश्चिमी आर्थिक विचारों पर हावी थी।

निजीकरण की बढ़ती प्रवृत्ति के कारण महिलाओं के बेरोजगार होने की संभावना बढ़ी क्योंकि कई विकासशील देशों में सार्वजनिक क्षेत्र महिलाओं का सबसे बड़ा नियोक्ता है।

इसके परिणमास्वरूप श्रम बाजार में स्वच्छदंता आई जिसके कारण महिला श्रमिकों की कीमत के निर्धारण और महिला रोजगार के परिवेश पूर्णत: बाजार के नियंत्रण में चले गए। इसलिए स्थानीय स्तर से लेकर भूमंडलीय स्तर तक सरकार द्वारा महिला श्रम शक्ति के पक्ष में निर्णय लेने और उन्हें उचित पारिश्रमिक दिलाने के लिए बनाई गई सरकारी नीतियों की गहराई से छानबीन करने की जरूरत है।

इसके अलावा विभिन्न निर्धनता उन्मूलन कार्यक्रमों पर फिर से विचार करने की जरूरत है। इस कार्यक्रम में स्त्री-पुरुष भेदभाव से संबंधित मुद्दों को भी शामिल किया जाना चाहिए।

अब बहस इस बात पर होने लगी है और इस तथ्य को काफी हद तक स्वीकार कर लिया गया है कि महिला और पुरुष को गरीबी की मार अलग-अलग ढंग से झेलनी पड़ती है और वे विभिन्न प्रकियाओं से निर्धन होते चले जाते हैं। निर्धनों में भी महिलाओं को सही प्रतिनिधित्व नहीं मिल पाता और उन्हें निर्धनता उन्मूलन कार्यक्रमों का लाभ भी नहीं मिल पाता।

क्या उन्हें बाज़ार की दया पर छोड़ दिया जाय?
सौजन्य : सी.एस.आर., नई दिल्ली

इन बहसों के परिणामस्वरूप यह बात सामने आई है कि किसी भी आर्थिक नीति के निर्धारण में तीन कारक महत्वपूर्ण भूमिका अदा करते हैं। ये कारक हैं . राज्य, बाजार और परिवार । अन्तरराष्ट्रीय श्रम संगठन भूमंडलीय स्तर पर यह विचार प्रतिपादित करने का प्रयत्न कर रहा है कि महिलाओं को शिक्षा के क्षेत्र में समान अवसर प्राप्त हों और उनके साथ समानता का व्यवहार किया जाए। उनके लिए समान पारिश्रमिक दिए जाने की व्यवस्था की जाए तथा महिला श्रमिकों को संरक्षण दिया जाए और गर्भवती महिला पर विशेष ध्यान रखा जाए। यह संगठन राष्ट्रीय नीति निर्माताओं और अन्तरराष्ट्रीय समुदाय को उद्‌बोधित करने का प्रयास कर रहा है। 1981 में अन्तरराष्ट्रीय श्रम संगठन के समान पारिश्रमिक प्रस्ताव और सुझाव स्वीकृत किया जिसकी जनवरी 1994 तक 120 सदस्य राज्यों द्वारा पुष्टि कर दी गई।

2.4.5 महिलाओं के खिलाफ हिंसा

महिलाओं के खिलाफ होने वाली हिंसा भी बहस का एक प्रमुख मुद्‌दा रहा है। इस प्रकार की बहसों में महिलाओं की स्थिति को बहुत ही स्पष्टता और मजबूती से पेश किया गया है। पूरी दुनिया में महिलाओं के ऊपर यौनाचार में जो शारीरिक हिंसा होती है उसके आंकड़े दिल दहला देते हैं। दुनिया भर के अधिकांश देशों ने बहुत ही दृढ़ शब्दों में महिलाओं के खिलाफ होने वाली हिंसा का विरोध किया है। आमतौर पर यह देखा गया है कि बलात्कारी के प्रति ढिलाई बरती जाती है और बलात्कार से पीड़ित महिला को ही दोषी मान लिया जाता है।

1979 में संयुक्त राष्ट्र आम सभा ने महिलाओं के खिलाफ सभी प्रकार के भेदभाव के उन्मूलन का

प्रस्ताव रखा। यह प्रस्ताव हालांकि काफी वृहत् था परंतु इसमें महिलाओं के खिलाफ होने वाली हिंसा पर अलग से विचार नहीं किया गया।

1993 में महिला प्रतिष्ठा आयोग की संस्तुति पर महिलाओं के खिलाफ हिंसा को आम सभा ने मानवाधिकार के उल्लंघन का दर्जा दिया। इस उद्घोषणा के अनुच्छेद 1 में कहा गया है "महिलाओं के खिलाफ स्त्री-पुरुष भेदभाव आधारित हिंसा में महिलाओं पर शारीरिक, यौनात्मक और मनोवैज्ञानिक आघात शामिल होता है"। इसके अलावा निजी या सार्वजनिक जीवन में इस प्रकार के संभावित खतरे को महिलाओं के खिलाफ हिंसा के रूप में परिभाषित किया गया है।

चौथे विश्व महिला सम्मेलन में यह बात उभर कर सामने आई कि परिवार और समाज में महिलाओं की प्रतिष्ठा कम होने के कारण ही मुख्यत: उनके खिलाफ हिंसा होती है। महिलाओं के सुरक्षा उपायों के क्रम में कुछ आंकड़े इकट्ठे किए गए जिनसे पता चलता है कि महिलाओं के खिलाफ हिंसा दुनिया के कोने कोने में व्याप्त है। उदाहरण के लिए दक्षिण अफ्रीका में प्रत्येक 90 सेकेंड में 1 महिला पर बलात्कार किया जाता है और प्रत्येक वर्ष लगभग 3,20,000 महिलाएं बलात्कार का शिकार होती हैं। संयुक्त राज्य अमेरिका में प्रत्येक घंटे 16 महिलाओं की एक बलत्कारी से मुठभेड़ होती हैं और प्रत्येक छ: मिनट में एक महिला बलात्कार का शिकार होती है। फेडरल ब्यूरो ऑफ इनवेस्टिगेशन यानी संघीय जांच ब्यूरो ने 1991 में अमेरिका में 106,593 बलत्कार के मामले दर्ज किए थे। जुलाई 1991 में किशोर लड़कों के एक समूह ने पूर्वी अफ्रीका के एक देश में स्कूली छात्रावास में रहने वाली 71 लड़कियों को केवल इस कारण बलात्कार कर दंडित किया क्योंकि उन्होंने स्थानीय विद्यालय प्रशासकों के खिलाफ हड़ताल करने से मना कर दिया था। इस मामले में 19 लड़कियों ने अपना जीवन गंवा दिया था। इस प्रकार के आंकड़े देखने से पता चलता है कि पूरी दुनिया में महिलाओं और लड़कियों पर यौनाचार होना एक आम बात है। किसी न किसी धार्मिक या परम्परागत प्रथाओं का सहारा लेकर महिलाओं पर अत्याचार किया जाता है।

हालांकि इस बात पर गंभीरता से विचार करने की जरूरत है कि इनमें से कितनी मान्यताएं वस्तुत: धार्मिक या सांस्कृतिक हैं। फिर भी संयुक्त राष्ट्र एजेंसियों ने महिलाओं के जननांग विच्छेदन को महिलाओं के स्वास्थ्य और मानवाधिकार कार्यक्रमों में शामिल किया है।

उदाहरण के लिए राष्ट्रीय स्तर पर मिस्र के स्वास्थ्य मंत्रालय ने यह आदेश पारित किया कि महिला जननांग विच्छेदन से होने वाले खतरे को कम से कम करने के लिए इसे चिकित्सक की देखरेख में सम्पन्न किया जाना चाहिए। कीनिया ने 1990 के बाद इस प्रथा पर रोक लगा दी। महिलाओं और बच्चों के स्वास्थ्य को प्रभावित करने वाले परम्परागत प्रथाओं के खिलाफ कार्यरत अन्तर अफ्रीका समिति का निर्माण महिलाओं के जननांग विच्छेदन की प्रथा के खिलाफ किया गया था। अब यह जेनेवा स्थित गैर सरकारी अन्तरराष्ट्रीय संगठन है।

2.5 सारांश

हाल के वर्षों में परिवार और समाज में महिलाओं की निम्न हैसियत के मुद्दे पर चारों ओर जागरूकता फैल रही है। कई राष्ट्रीय और अन्तरराष्ट्रीय स्तर की बहसों में यह जागरूकता प्रतिबिंबित हुई है। इन बहसों से भी जागरूकता फैलाने में मदद मिली है। इस इकाई में हमने इन बहसों के प्रमुख मुद्दों पर विचार किया है। हमने संयुक्त राष्ट्र द्वारा उठाए गए प्रमुख उपायों की चर्चा की है और यह बताया है कि विभिन्न सम्मेलनों और आयोगों के उद्देश्यों से यह किस प्रकार प्रतिबिंबित हुआ है। इस इकाई में स्त्री-पुरुष समानता संबंधी दक्षेस द्वारा किया गया विचार-विमर्श भी शामिल किया गया है। इस इकाई के अन्तिम भाग में इन बहसों से उभरने वाले विभिन्न मुद्दों जैसे महिलाओं के राजनैतिक अधिकार, महिलाओं के सम्मान, विकास में महिलाओं की भूमिका, बदलती वैश्विक अर्थव्यवस्था में महिलाओं की भूमिका और महिलाओं के खिलाफ हिंसा जैसे महत्वपूर्ण मुद्दों पर विचार-विमर्श किया गया है।

निस्संदेह इन बहसों का मुख्य उद्देश्य हमारे समाज में स्त्री-पुरुष के बीच में समानता लाना है। इसके लिए कई स्तरों पर संघर्ष भी चल रहा है। इस खंड की अगली इकाइयों में हम इन संघर्षों की चर्चा करेंगे।

2.6 शब्दावली

वैश्विक : पूरे विश्व से जुड़े मुद्दे या नज़रिया।

दृष्टिकोण : स्थिति, प्रश्न आदि को देखने का तरीका।

मताधिकार : मत देने का अधिकार।

2.7 कुछ उपयोगी पुस्तकें

अग्रवाल, ए., (1983) *वीमेन्स स्टडीज़ इन एशिया एंड पेसिफिक : ऐन ओवरव्यू ऑफ करेंट स्टेटस ऐंड नीडेड प्रायोरिटीज़.* कुआललमपुर : एपीडीसी.

देसाई, एन एंड पटेल, (1985) *इंडियन वीमेन : चेंज एंड चैलेंज इन द इन्टरनेशनल डिकेड 1975-85.* बंबई : पोपुलर प्रकाशन.

गवर्नमेंट ऑफ इंडिया, (1988) *नेशनल पर्सपेक्टिव प्लान फॉर वीमेन 1988-2000.*

डिपार्टमेंट ऑफ वीमेन एंड चाइल्ड डेवलपमेंट, मिनीस्ट्री ऑफ ह्यूमन रिसोर्सेज डेवलपमेंट, नई दिल्ली.

इकाई 3 स्त्री-पुरुष समानता के संघर्ष के रूप

रूपरेखा

3.0 उद्देश्य

3.1 प्रस्तावना

3.2 स्त्री-पुरुष समानता के विचार का विकास

3.3 भारत में महिलाओं के संघर्ष की ऐतिहासिक पृष्ठभूमि

- 3.3.1 आज़ादी से पहले का आंदोलन
- 3.3.2 स्वतंत्रता आंदोलन
- 3.3.3 सामाजिक आर्थिक दमन के खिलाफ संघर्ष

3.4 समकालीन भारतीय महिलाओं का संघर्ष

- 3.4.1 महिलाओं द्वारा स्वाभाविक कार्यवाई
- 3.4.2 जन आंदोलनों और बड़े राजनैतिक संगठनों के भीतर महिलाओं का संघर्ष
- 3.4.3 स्वायत्त महिला आंदोलन
- 3.4.4 महिलाओं का आंदोलन: स्थान बनाने के लिए संघर्षरत
- 3.4.5 महिलांओं का समानता के लिए राज्य समर्थित प्रयास

3.5 सारांश

3.6 शब्दावली

3.7 कुछ उपयोगी पुस्तकें

3.0 उद्देश्य

भारत में स्त्री-पुरुष समानता के लिए कई प्रकार के संघर्ष किए जाते रहे हैं। कई बार यह संघर्ष समाज के बड़े संघर्षों के हिस्से के रूप में सामने आए। कभी-कभी अलग से भी आंदोलन चलाए गए। इस इकाई में हमलोग इन संघर्षों की जानकारी प्राप्त करने का प्रयास करेंगे। अत: इस इकाई को पढ़कर आप:

- स्त्री-पुरुष समानता के विकास की प्रक्रिया बता सकेंगे;
- भारत में स्त्री-पुरुष समानता के लिए महिलाओं द्वारा किए गए संघर्षों की ऐतिहासिक पृष्ठभूमि बता सकेंगे;
- स्त्री-पुरुष समानता के लिए हमारे समाज में उभरने वाले विभिन्न प्रकार के संघर्षों का विश्लेषण कर सकेंगे; और
- भारत में महिलाओं द्वारा किए गए विभिन्न संघर्षों के बीच समानता और असमानता को रेखांकित कर सकेंगे।

3.1 प्रस्तावना

इस इकाई में भारत में अपनी समानता के लिए महिलाओं द्वारा किए गए संघर्ष की आधारभूत अवधारणाओं और उपलब्धियों से विद्यार्थियों को परिचित कराया जाएगा। हालांकि इकाई की शुरुआत महिला आंदोलन की अन्तरराष्ट्रीय पृष्ठभूमि से की गई है परंतु इस इकाई में मुख्यत: आधुनिक काल में भारत में महिलाओं के संघर्ष पर ध्यान केंद्रित किया गया है। इन संघर्षों विभिन्न मुद्दों और इनके अनेक तत्वों का विश्लेषण किया गया है। इकाई के अन्त में हमने भारत में महिला आंदोलन को लेकर चल रही वर्तमान बहस की समीक्षा भी की है। हमें उम्मीद है कि इस इकाई को पढ़ने के बाद आपको इन मुद्दों पर सोचने के लिए काफी खुराक मिल जाएगी और सोचने की एक दृष्टि भी विकसित हो सकेगी। इस कार्यक्रम के आधार पाठ्यक्रम की इकाई 6,7 और 8 में हम इतिहास के विभिन्न चरणों में हुए महिला आंदोलनों पर विचार विमर्श करेंगे। इस इकाई में जिन मुद्दों की चर्चा की गई है उन पर विस्तार से जानकारी प्राप्त करने के लिए आप इन इकाइयों को पढ़ सकते हैं।

3.2 स्त्री-पुरुष समानता के विचार का विकास

स्त्री-पुरुष की समानता के विचार को स्वीकार करने में मानव सभ्यता को बहुत समय लगा। इसके अलावा स्त्री-पुरुष भेदभाव को सामाजिक संबंधों की एक व्यवस्था के रूप में समझने में और भी ज्यादा समय लगा। इस पूरी संकल्पना का निर्माण महिलाओं को दबाने और मातहत रखने के लिए किया गया था।

स्त्री-पुरुष समानता के विचार की शुरुआत यूरोप में 'ज्ञानोदय', जिसके फलस्वरूप सामंतवाद का अंत हुआ, और फ्रांसीसी कांति के आरंभ में मानी जा सकती है। हालांकि आरंभिक दार्शनिकों ने 'पुरुष के अधिकार की बात की'। वे भी महिलाओं को पुरुष के समान दर्जा देने के प्रति जागरूक नहीं थे। सबसे पहले मैरी वालस्टोनक्राट जैसे लेखकों ने महिलाओं के लिए समान अवसरों की बात उठाई। उन्होंने 18वीं शताब्दी में प्रकाशित अपनी पुस्तक विन्डिकेशन ऑफ द राइट्स ऑफ वुमन (महिलाओं के अधिकार का हनन) में ज्ञानोदय का विचार भौगोलिक सीमाओं को पार करता हुआ एटलांटिक से गुजरता हुआ अमेरिका के उत्तरी महाद्वीप में पहुंचा जहां अमेरिकी स्वतंत्रता संग्राम एक गणतंत्र स्थापित करने का प्रयास कर रहा था। यह बड़ा ही रोचक तथ्य है कि जब संयुक्त राज्य अमेरिका का नया संविधान बन रहा था तब अमेरिकी संविधान के एक प्रमुख-आधार स्तंभ जॉन एडम्स की पत्नी एबिगेल एडम्स (1744-1818), ने महिलाओं के मताधिकार का सवाल उठाया। परंतु इस विचार को उपहास में उड़ा दिया गया।

> **क्या आप जानते हैं?**
>
> 1776 में एबिगेल ने अपने पति को एक पत्र लिखकर निवेदन किया था कि नया कानून बनाते समय उन्हें महिलाओं का भी ध्यान रखना चाहिए और पतियों को असीमित ताकत नहीं दे देनी चाहिए। जान एडम का उत्तर भी बड़ा रोचक था। उन्होंने उत्तर दिया कि तुम्हारे इस अनोखे कानून पर मुझे हंसी आती है। हमें बताया गया है कि हमारे संघर्ष से चारों ओर सरकार की पकड़ ढीली पड़ गई है। बच्चे अवज्ञाकारी हो गए थे, कॉलेजों में उपद्रव हो रहा था, इंडियन अपने अभिभावकों का अनादर कर रहे थे, और नीग्रो अपने मालिकों से बदतमीजी कर रहे थे। लेकिन तुम्हारा पत्र पाकर मुझे पहली बार अहसास हुआ कि एक और कबीला जो इन सबसे अधिक बड़ा और ताकतवर है, में असंतोष की लहर फैल रही है।
>
> एडम्स ने अपने एक मित्र को पत्र लिखकर भी इस मुद्दे पर बातचीत की थी। "सिद्धांत: यह सही है कि सरकार का केवल नैतिक आधार जनता के मत पर आधारित है परंतु हम इस सिद्धांत को कहां तक आगे ले जा पाएंगे ?.....(रोज़ी, ए. 1973)

18 वीं शताब्दी के दौरान महिलाओं ने समान अधिकार के लिए आंदोलन की शुरुआत की और उन्हें समर्थन भी प्राप्त हुआ। रॉबर्ट ओएन और चार्ल्स फेरियर जैसे आदर्शवादी समाजवादियों ने 18 वीं शताब्दी में अपने लेखन में इस मुद्दे को शामिल किया और लोरा ट्रिस्टन (1803-44) जैसी समाजवादी महिलाओं के महिला अधिकार के लिए संघर्ष और पूंजीवादी विस्तार के समय मानवीय परिवेश के लिए मजदूरों के संघर्ष को जोड़कर देखने की कोशिश की। समाजवादियों के समान उदारवादी दार्शनिकों ने भी महिलाओं को समर्थन दिया। उदारवादी दार्शनिक जॉन स्टुअर्ट मिल ने 1869 में प्रकाशित अपनी पुस्तक 'द सब्जेक्शन ऑफ वूमन' में महिलाओं से जुड़े मुद्दों का विश्लेषण किया। महिलाओं की प्रतिष्ठा, मताधिकार, सम्पत्ति पर समान अधिकार और शिक्षा को नियंत्रित करने वाले दमनात्मक विधान के खिलाफ इस शताब्दी के अंत में यूरोप और अमेरिका में संघर्ष अपने उत्कर्ष पर पहुंच गया। नारी मताधिकार के लिए आंदोलन करने वाली महिलाएं ब्रिटेन में 20 वीं शताब्दी के आरंभ में महिलाओं ने मताधिकार के लिए संघर्ष का नेतृत्व किया। सिल्विया पैंख्स्ट ने भी इस आंदोलन का नेतृत्व किया और इसे उस समय के समाजवादी संघर्ष के साथ जोड़ दिया। फ्रांसीसी महिलाओं को 1907 में अपना वेतन खुद खर्च करने का वैधानिक अधिकार प्राप्त हुआ। अमेरिकी महिलाओं को प्रथम विश्व युद्ध (1914-19) के बाद मत देने का अधिकार प्राप्त हुआ। ब्रिटेन की महिलाओं को दूसरे विश्व युद्ध (1939-1945) के बाद 1948 में जाकर मताधिकार प्राप्त हुआ।

3.3 भारत में महिलाओं के संघर्ष की ऐतिहासिक पृष्ठभूमि

इस कार्यक्रम के आधार पाठ्यक्रम की इकाई 6 और 7 में हम आजादी से पहले और आजादी के बाद भारत में होने वाले महिला आंदोलन पर विस्तार से विचार विमर्श करेंगे। इस भाग में हम इस आंदोलन को संक्षेप में प्रस्तुत कर रहे हैं। अगली इकाइयों में हमलोग केवल आधुनिक युग की ही चर्चा करेंगे।

3.3.1 आज़ादी से पहले का आंदोलन

भारत में दुनिया के अन्य भागों के समान जनतांत्रिक चेतना के विकास के साथ महिला आंदोलन का उदय हुआ। आंरभ में महिलाओं के लिए सामाजिक न्याय की वकालत करने वाले शिक्षित और बौद्धिक पुरुषों ने इसकी शुरुआत की जिनका संबंध अपेक्षाकृत ऊंचे वर्ग और जाति से था। 19वीं शताब्दी में पश्चिमी शिक्षा के आगमन से संस्कृतियों का टकराव हुआ और इसके फलस्वरूप महिलाओं के अधिकारों की बात की जाने लगी। लोग परम्परागत ढांचे से बाहर निकलकर सोचने लगे। राजा राममोहन राय, ईश्वरचंद्र विद्यासागर और बंगाल में ब्रह्म समाज ने सती प्रथा पर प्रहार किया और महिलाओं की शिक्षा को बढ़ावा दिया। 19वीं शताब्दी के समाज सुधारकों ने विधवा विवाह को सामाजिक मान्यता प्राप्त किए जाने की मांग की। ब्रह्म समाज ने महिलाओं के लिए विद्यालय खोले और उन्हें शैक्षिक अवसर उपलब्ध कराए। महाराष्ट्र में ज्योतिबा फुले ने इन्हीं क्षेत्रों में काम किया। इसके अलावा उन्होंने समाज में जाति, नस्ल और स्त्री-पुरुष आधारित भेदभाव पर भी आक्रमण किया। उन्होंने दलित बालिकाओं की शिक्षा के लिए काम किया। उन्होंने और उनकी पत्नी ने मिलकर इन बालिकाओं के लिए विद्यालयों की स्थापना की। उन्होंने विधवाओं और अविवाहित माताओं के मानवाधिकारों के लिए भी काम किया। उपलब्ध सूचना के आधार पर ऐसा प्रतीत होता है कि 1900 में सामाजिक आंदोलन के लिए महिलाओं की स्थिति में सुधार भी एक मुद्दा था। आनंदी गोपाल जोशी, पंडित रमाकान्त और सावित्री बाई फुले जैसी विलक्षण महिलाओं की जीवनियों को पढ़कर यह पता चलता है कि उन्हें यह काम करने में कितनी मुश्किलों और समाज के तिरस्कार का सामना करना पड़ा। आनन्दी बाई देश की पहली महिला चिकित्सक थीं जिन्होंने सामाजिक बहिष्कार सह कर भी अध्ययन और प्रशिक्षण प्राप्त किया था। उन्होंने महिलाओं के सामाजिक निर्वासन पर

काम किया था। सावित्री फुले ने पुणे के निकट हिन्दू विधवाओं के लिए इन्हीं परिस्थितियों में एक स्कूल खोला था।

3.3.2 स्वतंत्रता आंदोलन

आजादी की लड़ाई के आंदोलन के साथ-साथ इस शताब्दी के आरंभ में महिलाओं की स्थिति में सुधार के लिए भी आंदोलन चलाया जाने लगा। 1917,1926 और 1927 में क्रमशः भारतीय महिला संघ, राष्ट्रीय भारतीय महिला परिषद और अखिल भारतीय महिला सम्मेलन की स्थापना की गई। ये सभी संगठन महिलाओं की सामाजिक समस्याओं और उन्हें शिक्षित करने के सरोकार से जुड़े थे। इन समूहों ने विपदाग्रस्त महिलाओं के लिए विशेष कार्यक्रम चलाए (जैसे उन्हें घर में ही काम दिलवा दिया गया)। परंतु समस्या की विकरालता को देखते हुए यह प्रयत्न ऊंट के मुंह में जीरा के समान था। इन समूहों की एक सीमा यह थी कि इनका सामाजिक आधार काफी संकीर्ण था। इनमें से अधिकांश संगठन समाज के उच्च स्तर की शिक्षित महिलाओं तक सीमित था। महिलाओं के लिए नीति निर्माताओं तथा कार्यकर्ताओं में उच्च वर्ग की महिलाएं ही शामिल थीं। दूसरे वर्ग की महिलाएं केवल मूक दर्शक बनी हुई थीं। उन्हें जो कुछ मिल जाता था उसे सहज रूप में वे स्वीकार कर लेतीं।

महात्मा गांधी के नेतृत्व में जब स्वतत्रंता आंदोलन में महिलाओं ने बड़े पैमाने पर हिस्सा लिया तब सामाजिक आधार की यह संकीर्णता काफी हद तक टूटी। गांधी जी ने हिन्दू शब्दावली और कल्पनाशक्ति (उदाहरण के लिए नमक सत्याग्रह) का उपयोग करते हुए महिलाओं को इस प्रकार लामबंद किया जिसके कारण कांग्रेस नेतृत्व का एक हिस्सा महिलाओं की समानता की विचारधारा का समर्थन करने लगा और इसके परिणामस्वरूप महिलाओं को समान अधिकार दिए जाने की बात की जाने लगी और अन्ततः उन्हें संविधान में भी शामिल किया गया। यह अलग बात है कि इसके द्वारा सभी अनियमितताओं और भेदभाव को दूर नहीं किया जा सका तथा स्वतंत्रता संग्राम में लगातार महिलाओं पर घर और बाहर दोनों जगह अत्याचार होते रहे।

3.3.3 सामाजिक-आर्थिक दमन के खिलाफ संघर्ष

आज़ादी से पहले स्वतंत्रता के लिए संघर्ष करने के दौरान कुछ लोगों का यह भी मानना था कि स्वतंत्रता का अर्थ समाज में आधारभूत संरचनात्मक परिवर्तन लाना है। उत्तरी बंगाल और बिहार के बंटाईदार के अधिकारों (तिभागा आंदोलन) का नेतृत्व उस समय के भारतीय कम्यूनिस्ट पार्टी ने किया। इसके अलावा तेलंगाना क्षेत्र में हुए किसान आंदोलन, महाराष्ट्र के थाणे जिले में हुए आदिवासी आंदोलन और कई ऐसे ही आंदोलनों ने समाज की शक्ति संरचना को चुनौती दी। आर्थिक और सामाजिक दमनकर्ताओं के खिलाफ युद्ध में संघर्ष करने के लिए महिलाओं का भी आह्वान किया गया। इस प्रकार के संघर्षों में महिलाओं पर किए जाने वाले क्रूर आत्याचारों (जैसे पत्नी को पीटना, किसी को डायन घोषित करना और शराब पीकर महिलाओं पर आत्याचार करना) का भी विरोध किया। इन आंदोलनों ने महिलाओं को एक व्यक्तित्व प्रदान करने की कोशिश की।

आज़ादी के दौरान के महिला संघर्ष की यह पूरी विरासत वर्तमान पीढ़ी की महिलाओं को प्राप्त हुई जिन्होंने भारतीय समाज और राजनीति में अपने लिए स्थान प्राप्त करने का प्रयास किया।

> जरा सोचिए 1
>
> भारत में हुए आरंभिक सामाजिक सुधार आंदोलनों में महिलाओं से संबंधित किन मुद्दों को उठाया गया? संघर्ष के अगले चरण में यह किस प्रकार प्रतिबिंबित हुआ?

3.4 समकालीन भारतीय महिलाओं का संघर्ष

आज भारत में प्रजातांत्रिक राजनैतिक व्यवस्था के तहत महिलाओं ने अपने दमन के खिलाफ सशक्त आंदोलन किए और पुरुषों के बराबर समान नागरिक हक प्राप्त करने का प्रयत्न किया। एक महत्वपूर्ण बात यह थी कि जहां आजादी से पहले उच्च श्रेणी की महिलाएं ही इस आंदोलन में शामिल होती थीं वहीं आजादी के बाद ज्यादा से ज्यादा आम महिलाएं इसमें शामिल होने लगीं। इस आंदोलन की कई कड़ियां हैं जिन्हें अलग-अलग करके अच्छी तरह समझा जा सकता है।

3.4.1 महिलाओं द्वारा स्वाभाविक कार्यवाही

कभी-कभी ऐसे भी मौके आए हैं जब महिलाएं स्वत: स्वाभाविक रूप से किसी मुद्दे का विरोध करने के लिए संगठित हो गई हैं। यहां दो उदाहरण प्रस्तुत किए जा रहे हैं जो बहुत पुराने नहीं हैं: 1972-75 के दौरान बम्बई में हुआ मूल्य वृद्धि विरोधी आंदोलन और नेल्लौर (आंध्र प्रदेश) में ताड़ी विरोधी आंदोलन। आज दो दशक बाद हम इन पर विचार विमर्श करने जा रहे हैं; आइए, इन पर एक नजर डाली जाए।

अरक विरोध आंदोलन में भाग लेती महिलाएँ

सौजन्य : इंडिया टुडे.

क) 1960 के अंत में आवश्यक वस्तुओं के दाम में वृद्धि होने से आर्थिक संकट पैदा हो गया। इसके खिलाफ आंदोलन भी हुए। इस दौरान अभूतपूर्व घटनाएं घटीं। हजारों मजदूर और निम्न मध्य वर्ग की महिलाएं सड़कों पर आ गईं और इसे उन्होंने 'लाटनी' (Latni) मोर्चा का नाम दिया। इसके लिए उन्होंने लामबंदी और संचार का एक मजबूत ढांचा खड़ा किया। यह आंदोलन

और भी आगे बढ़ा। पटना और बम्बई जैसे प्रमुख शहरों में भी इस आंदोलन के लक्षण दिखाई पड़े। महिलाओं ने बम्बई की सड़कों पर एक हाथ में बेलन और एक हाथ में तेल का खाली कनस्तर लेकर 1961-62 की अवधि में जुलूस निकाले। जनसंचार माध्यमों ने भी इसे प्रसारित प्रकाशित किया था। मृणाल गोरे इस आंदोलन के दौरान प्रमुख नेता के रूप में उभरीं जिन्होंने बाद में पश्चिमी भारत की महिलाओं और समाजवादी आंदोलनों को नेतृत्व प्रदान किया।

ख) आंध्र प्रदेश के नेल्लौर जिले में ताड़ी विरोधी आंदोलन चलाया गया। इसकी शुरुआत साक्षरता आंदोलन से हुई। साक्षरता आंदोलन के लिए तैयार पाठ्य पुस्तकों में शराब पीने और महिलाओं पर इसके बुरे असर के संबंध में कुछ पाठ दिए गए थे। इस पाठ को पढ़कर महिलाओं के मन में जागृति पैदा हुई। परिवार के पुरुषों द्वारा शराब पीने से सबसे ज्यादा नुकसान महिलाओं को ही उठाना पड़ता है। इसलिए शराब बंदी के खिलाफ महिलाएं अपने आप एकजुट होने लगीं। शराब की दुकानों के सामने धरना दिया जाने लगा। शराबियों को समझा बुझाकर रास्ते पर लाने की कोशिश की गई और प्रशासन से शराब की बिक्री पर पूरी तरह पाबंदी लगाने की मांग की गई। इसके बाद महिलाओं के विभिन्न संगठन में साक्षरता आंदोलन चलाने वाले गैर सरकारी संगठन, जिला प्रशासन और शराब बेचने वालों के बीच जो संवाद और आदान-प्रदान हुआ उससे स्वत: स्फूर्त कार्यवाई की संभावनाओं और सीमाओं को समझने में मदद मिलती है। इससे पता चला कि सामाजिक मुद्दों पर लगातार लामबंदी करने से महिलाओं की नई सामाजिक पहचान बनती है जो समाज में उनकी शक्ति सम्पन्नता के लिए जरूरी है।

ग) गढ़वाल हिमालय क्षेत्र में पेड़ों के काटने के खिलाफ शुरू हुआ चिपको आंदोलन भी स्वत: स्फूर्त और त्वरित कार्यवाई के रूप में आरंभ हुआ था। बढ़ती वाणिज्यिक वानिकी के संदर्भ में और लघु वन उत्पादों पर अपने अधिकारों के लिए महिलाओं ने इसकी शुरुआत की थी। जब ठेकेदार के मजदूर पेड़ गिराने की कोशिश करते थे तो महिलाएं उस पेड़ से चिपक जाती थीं। बाद में यह आंदोलन गहराता चला गया और इसमें गांधीवादी पर्यावरण कार्यकर्ता विमला और सुंदर लाल बहुगुणा तथा चांदी प्रसाद भट्ट के नेतृत्व में पर्यावरण संबंधी मुद्दों और विकासात्मक विकल्पों पर विचार करना शुरू किया।

यह बात ध्यान रखनी चाहिए कि ऊपर जिन स्वत: स्फूर्त कार्यवाइयों का जिक्र किया गया है उसमें महिलाओं के अधिकारों की मांग पर आरंभ में बल नहीं दिया गया। परंतु एक बार राजनैतिक मंच हासिल हो जाने के बाद कई स्थानों पर जैसे नेल्लौर में महिलाओं के प्रश्न को बड़ी ही स्पष्टता से सामने रखा गया।

अनुभव से सीखिए 1

क्या आपके क्षेत्र में किसी खास मुद्दे पर कोई ऐसा आंदोलन हुआ है जिसमें मुख्य रूप से महिलाओं ने हिस्सा लिया हो ? क्या आपके इलाके में किसी समूह/अभिकरण ने किसी सामूहिक कार्यवाई के लिए आपके क्षेत्र की महिलाओं को संगठित किया है ?

उपर्युक्त किसी भी एक विषय पर टिप्पणी लिखते हुए उस संदर्भ में नेतृत्व की भूमिका और लोगों को एकजुट करने में संगठन द्वारा किए गए कार्य का उल्लेख कीजिए।

3.4.2 जन आंदोलनों और बड़े राजनैतिक संगठनों के भीतर महिलाओं का संघर्ष

आजादी के बाद भारत में महिलाओं ने बड़ी संख्या में कई जन आंदोलनों में हिस्सा लिया। 70 के दशक के अन्त में हुआ बोध गया भूमि संघर्ष, परम्परागत रूप से मछली मारने वालों के अधिकारों की रक्षा के लिए केरल मछुआरों का संघर्ष और पूर्वी मध्य प्रदेश में छत्तीसगढ़ में हुआ मजदूर आंदोलन इसके कुछ प्रमुख उदाहरण हैं। इन सभी उदाहरणों में सबसे रोचक तथ्य है कि महिलाओं ने न केवल इन संघर्षों में बड़ी संख्या में हिस्सा लिया बल्कि उन्होंने अपनी बात स्पष्टता और दृढ़ता से सामने रखी तथा एक महिला केंद्रित संघर्ष का एजेंडा सामने रखा। बोध गया मठ की विशाल भू

सम्पदा के वितरण को लेकर यह संघर्ष शुरू हुआ। यह आंदोलन महिलाओं को भूमि अधिकार दिए जाने के आंदोलन में परिवर्तित हो गया। इसी प्रकार छत्तीसगढ़ में काम करने के परिवेश को मानवीय बनाने के लिए ठीका पर काम करने वाले खान मजदूरों ने संघर्ष की शुरुआत की। जल्द ही यह आंदोलन महिलाओं के काम करने के समान अधिकार में बदल गया। चूंकि अक्सर प्रौद्योगिकी में महिलाओं का ख्याल नहीं रखा जाता है अत: इस बात की मांग की गई कि ऐसी प्रौद्योगिकी का इस्तेमाल किया जाए जो मजदूरों खासकर महिला मजदूरों के उपयुक्त हो।

इस अवधि में राजनैतिक दलों ने अपनी महिला शाखा बनाई और इससे जुड़े महिला संगठन स्थापित किए गए। निश्चित रूप से यह इस बात का प्रमाण था कि महिलाएं इसके जरिए सशक्त रूप से आवाज उठा रही थीं और अब उन्हें नजरअंदाज करना संभव नहीं था। वामपंथी राजनैतिक दलों से जुड़ी दिल्ली की जनवादी महिला समिति उल्लेखनीय है जो अखिल भारतीय जनतांत्रिक महिला संगठन से सम्बद्ध है। इस प्रकार के समूहों ने महिला मजदूरों और खासकर कामकाजी महिलाओं के मुद्दों पर अपना ध्यान केंद्रित किया और महिलाओं की दृष्टि से उन समस्याओं का विश्लेषण करने का प्रयास किया। महिला संबंधी नई आर्थिक नीति आदि इसके उल्लेखनीय उदाहरण हैं। वर्तमान में सभी प्रमुख राजनैतिक दलों की महिला शाखाएं हैं जिनका उत्तरदायित्व महिला सदस्यता और महिलाओं से जुड़े सवालों से है।

कुल मिलाकर यह एक स्वागत योग्य कदम है। परंतु सबसे परेशान करने वाली बात यह है कि सम्प्रदायवादी ताकतों ने भी अपनी महिला शाखा बना ली है और उन्होंने महिला अधिकार आंदोलनों की शब्दावली और रणनीति का ही इस्तेमाल करना शुरु कर दिया है। इसमें कोई संदेह नहीं है कि इससे महिलाओं के संघर्ष करने की शक्ति और उनके लड़ने की ताकत का पता चलता है परंतु जहां तक महिलाओं के आंदोलन का सवाल है इससे महिलाओं की स्थिति दुविधा में पड़ गई थी।

3.4.3 स्वायत्त महिला आंदोलन

'स्वायत्त महिला आंदोलन' का तात्पर्य 70 के दशक में कई शहरों में महिला समूहों के निर्माण से है। इन महिला समूहों का संबंध किसी बड़े आंदोलन या मुद्दों से नहीं रहा। 70 के दशक में अधिकांश बड़े शहरों में इस प्रकार के समूह बने। हालांकि उनका सामाजिक आधार बहुत विस्तृत नहीं था परंतु महिलाओं के मुद्दों को जन संचार माध्यमों के द्वारा प्रचारित प्रसारित करने का महत्वपूर्ण काम किया। उन्होंने खास मुद्दों को लेकर आंदोलन किया और जनहित याचिकाएं दायर कीं। दिल्ली और बम्बई तथा अन्य शहरों में स्थापित इन समूहों ने महिलाओं के संबंध में बने कानून की कुछ दुर्बलताओं की ओर इशारा किया। मथुरा और रामीज़ा बी बलात्कार कांड के संदर्भ में बलात्कार संबंधी कानून की कमियों को प्रकाश में लाया गया (70 के दशक में हवालात में इनका बलत्कार हुआ था जो खूब प्रचारित प्रसारित हुआ था)। इसके अलावा दहेज को लकर दुल्हनों की हत्याओं के मामलों को भी इस समूह ने अपने हाथ में लिया। 70 के दशक में और उसके बाद इस प्रकार के महिलाओं को दहेज के मामले में उनको जलाए जाने की कई दुघटनाएं सामने आईं। इस कार्य से जुड़ी महिला और महिला समूहों ने 70 के दशक के अंत और 80 के दशक के प्रारंभ में मानुषी (इंगलिश और हिन्दी) और बैजा (मराठी) जैसे चेतना जागृत करने वाली पत्रिका निकाली। उन्होंने अपरीक्षित हार्मोनयुक्त गर्भ निरोधकों और महिला भ्रूण हत्या के खिलाफ भी अभियान चलाया। 1988 में पटना में आयोजित नारी मुक्ति संघर्ष सम्मेलन में गैर दलीय जन आंदोलनों की महिला शाखाओं और समूहों को एक मंच पर लाने का प्रयास किया।

महिलाओं के मुद्दों को अन्तरराष्ट्रीय रूप में मान्यतां प्राप्त हुई और 1975-85 को अन्तरराष्ट्रीय महिला दशक घोषित किया गया। इसके साथ ही महिलाओं के कल्याण के लिए कार्य करने हेतु कई प्रकार के विकासात्मक वित्त उपलब्ध कराया गया। इसके परिणामस्वरूप महिलाओं के कल्याण के लिए कार्य करने वाले गैर सरकारी संगठन का निर्माण हुआ जिन्होंने अभी तक स्वायत्त समूहों द्वारा केए जाने वाले दायित्वों को अपने हाथ में ले लिया। स्वायत्त समूहों और जन आधारित समूहों में

कारगिल युद्ध के दौरान सैनिकों को अपना समर्थन देती महिलाएँ- स्वायत्त महिला आन्दोलन का विस्तार
सौजन्य : सी.एस.आर., नई दिल्ली

हमेशा क्षीण संबंध रहा और इस क्षेत्र में गैर सरकारी संगठन और उसके जरिए पेशेवरों के प्रवेश से स्थिति और भी जटिल हो गई।

3.4.4 महिलाओं का आंदोलन: स्थान बनाने के लिए संघर्षरत

अन्तरराष्ट्रीय महिला दशक के उपलक्ष्य में भारत सरकार ने 'समानता की ओर' शीर्षक की से महिला प्रतिष्ठा समिति की रिपोर्ट प्रकाशित किया। इस समिति में लब्ध प्रतिष्ठित समाज वैज्ञानिक और कार्यकर्ता शामिल थे और इसमें पहली बार भारतीय महिलाओं की सामाजिक प्रतिष्ठा, आर्थिक अवसरों और कानूनी अक्षमता के संदर्भ में भारतीय महिलाओं के विविध अनुभवों को दर्ज करने का गंभीर प्रयत्न किया गया। इस रिपोर्ट के आने के बाद 'महिला अध्ययन' शिक्षा की एक नई शाखा के रूप में विकसित हुआ। 1981 में बम्बई के एस.एन.डी.टी महिला विश्वविद्यालय में महिला अध्ययन का पहला सम्मेलन हुआ और यहीं भारतीय महिला अध्ययन संगठन की स्थापना की गई। इसके बाद यही संगठन इस प्रकार के और इससे जुड़े सम्मेलन कराती है और इसे शिक्षा के एक नई शाखा के रूप में स्थापित करने का प्रयत्न कर रही है। इस प्रक्रिया के परिणामस्वरूप कई विश्वविद्यालयों में महिला अध्ययन के पाठ्यक्रम शुरू किए गए और महिला अनुसंधान केंद्रों की स्थापना की गई। हालांकि मुख्य धारा से जुड़ने के कारण ये मुद्दे उभर कर सामने आए और शैक्षिक समुदाय में महिला अध्ययन के बारे में बातचीत की जाने लगी। परंतु अभी भी इस अध्ययन क्षेत्र को किस धारा में रखा जाए इसको लेकर विवाद बना हुआ है।

3.4.5 महिलाओं की समानता के लिए राज्य समर्थित प्रयास

महिलाओं के अधिकारों के मुद्दों को मुख्य धारा से जोड़ने और पिछले कई दशकों से किए जाने वाले आंदोलन का एक परिणाम यह हुआ कि राज्य ने महिला आंदोलनों की शब्दावली और तर्क को स्वीकार कर लिया। इस प्रक्रिया को अन्तरराष्ट्रीय स्तर पर काफी सहयोग मिला और भारत सरकार ने भी संयुक्त राष्ट्रीय महिला दशक के फलस्वरूप महिलाओं के खिलाफ होने वाले सभी प्रकार भेदभाव को निर्मूल समाप्त करने के प्रति अपनी निष्ठा कम की। इस दशक (1975-85) के दौरान और इसके बाद संयुक्त राष्ट्र संघ द्वारा महिलाओं पर कई सम्मेलन आयोजित कराए गए जिसने महिलाओं के अधिकारों के मुद्दे पर राजनैतिक नेतृत्व और नौकरशाही को जागरूक बनाने का प्रयत्न किया। 1988 में भारत सरकार ने राष्ट्रीय महिला दृष्टिकोण योजना के तहत महिलाओं की स्थिति और उनके लिए समान अधिकार प्राप्त करने की दिशा में हुई प्रगति पर एक विश्लेषणात्मक दस्तावेज प्रस्तुत किया। इसी प्रकार बीजींग सम्मेलन में भी 1995 में देश की रिपोर्ट पेश की गई। 1991 में राष्ट्रीय महिला आयोग की स्थापना की गई।

8वें दशक में सरकार ने महिला और बाल/बालिका विकास के लिए निदेशालय स्थापित किए और ग्रामीण क्षेत्रों में महिलाओं और बच्चों के विकास के लिए योजनाएं बनाईं। भारत सरकार ने महिला समानता आंदोलनों को विभिन्न कार्यक्रमों के द्वारा संतुष्ट करने की कोशिश की जैसे राजस्थान में महिला विकास कार्यक्रम तथा उत्तर प्रदेश, कर्नाटक तथा मध्य प्रदेश में महिला समाख्या कार्यक्रम चलाया गया। इन कार्यक्रमों के जरिए विभिन्न कार्यक्षेत्रों में ग्रामीण स्तर पर कार्यकर्ताओं का निर्माण किया गया। परंतु जैसे ही इस कार्यक्रम की गतिविधियों और कार्यकर्ताओं ने सामाजिक तथा राजनैतिक ढांचे को चुनौती देनी शुरू की तो इनके कार्यक्रमों को विकट समस्याओं का सामना करना पड़ा। राजस्थान की 'साथिनों' को गांव के संभ्रांत लोगों ने शारीरिक नुकसान पहुंचाया और कार्यक्रम चलाने में नौकरशाहों की तरफ से बाधाएं पहुंचाई गईं। इनसे राज्य सरकार की परिवर्तनकारी भूमिका की सीमा का पता चलता है।

> **जरा सोचिए 2**
>
> कई ऐसे मुद्दे हैं जिन्होंने भारत में महिला आंदोलन के उदय में योगदान दिया है। क्या आप बता सकते हैं कि हाल के वर्षों में किन बातों को लेकर स्वायत्त महिला आंदोलन हुए।

3.5 सारांश

हालांकि महिला अधिकार से जुड़े मुद्दों के लिए काम कर रहे धड़ों का एक ही उद्देश्य है अर्थात महिलाओं की प्रगति। परंतु इन मुद्दों की प्रस्तुति, संघर्ष, स्थल और दृष्टिकोण को लेकर मतभेद रहे हैं। आपके महिला संघर्ष में कोई एक केंद्रीय प्रवृत्ति नहीं है। कभी-कभी शहर आधारित समूहों को सामान्य और आम प्रवृत्ति के रूप में देखा जाने लगता है। परंतु उपयुक्त विश्लेषण से स्पष्ट है कि ऐसा करना गलत है। साम्प्रदायिक समूहों और राज्य द्वारा महिला दृष्टिकोण के अपनाए जाने पर आज काफी बहस हो रही है। पिछले अनुभवों के विश्लेषण के द्वारा राज्य हस्तक्षेप की सीमाओं को पहचाना जा सकता है। महिला समूहों ने लम्बे समय के संघर्ष के द्वारा एक माहौल तैयार किया है; यह माहौल इनके हस्तक्षेप से टूट रहा है। महिलाओं के समूहों ने यह बात सामने रखने का प्रयत्न किया है कि स्त्री-पुरुष भेदभाव और सामाजिक न्याय एक दूसरे के अभिन्न अंग हैं और महिलाओं की शक्ति सम्पन्नता (जिसके लिए लामबंदी प्रथम कदम है) द्वारा महिलाओं की ऊर्जा का उपयोग समाज की भलाई के लिए होगा।

इस इकाई में महिलाओं के विभिन्न आंदोलनों और संघर्षों की चर्चा की गई है। इससे आपको हमारे समाज की वैधानिक और संवैधानिक व्यवस्थाओं के संदर्भ में महिलाओं की शक्ति सम्पन्नता के मुद्दों के परीक्षण में मदद मिलेगी।

जैसा कि आपको इस पाठ्यक्रम की अगली इकाइयों में बताया जाएगा हमारे संविधान ने हमारे समाज में स्त्री-पुरुष समानता का आधार प्रदान किया है। परंतु केवल संवैधानिक प्रावधानों से ही स्त्री-पुरुष भेदभाव दूर नहीं होगा और महिलाओं को समुचित न्याय भी नही मिलेगा बल्कि न्याय प्राप्ति के लिए पर्याप्त दबाव की भी जरूरत होगी। यह दबाव विभिन्न आंदोलनों और संघर्षों से ही निर्मित होगा जिसकी चर्चा ऊपर की जा चुकी है।

3.6 शब्दावली

संभ्रांत : आर्थिक और राजनैतिक दृष्टि से सामाजिक पदानुक्रम में अवस्थित समाज का सबसे ऊपरी तबका।

आंदोलन : कोई परिवर्तन लाने या परिवर्तन को रोकने के लिए कुछ लोगों द्वारा किया जाने वाला संगठित प्रयास। यहां नई सामाजिक पहचान बनाने के एक माध्यम के रूप में भी इस शब्द का इस्तेमाल किया गया है।

महिला मत समर्थक : महिला मताधिकार की महिला मत समर्थक।

3.7 कुछ उपयोगी पुस्तकें

कुमार, राधा (1993) *द हिस्ट्री ऑफ डूइंग.* नई दिल्ली : काली कॉर वीमेन.

सेन, आइलिना (1990) *ए स्पेस विदिन द स्ट्रगल: वूमन्स पार्टिसिपेशन इन पिपुल्स मूवमेंट्स* नई दिल्ली.

संदर्भ

अग्रवाल, ए. (1983) वुमैन्स स्टडिज इन एशिया ऐंड पेसेफिक: ऐन ओवरव्यू ऑफ करेंट स्टेटस ऐंड नीडेड प्रापरटिज. कुवालालम्पुर : ए पी डी सी.

बैजवा, जी. एस. (1995) ह्यूमन राइट्स इन इंडिया. नई दिल्ली: एनुअल पब्लिकेशन.

देसाई, एन. ऐंड वी पलेल (1985) इंडियन वुमैन्स चेंज ऐंड चैलेंज इन इन्टरनेशनल डिकेड. बम्बई: पोपुलर प्रकाशन.

डोनेलिव, जे., (1997) इंटरनेशनल ह्यूमन राइट्स: वेस्टव्यू प्रेस.

ह्यूमन राइट्स ट्रिब्यून (1993) वूमैन्स राइट्स ऐज ह्यूमन राइट्स: एन इन्टरनेशनल लॉबिंग सक्सेस स्टोरी इन ह्यूमन राइट्स. जून, 1993:

इन्सट्रॉ ऐंड यूनिम (1995) वुमैन्स ऐंड देवराला यू एन 1945-1995 यू एन इन्टरनेशनल रिसर्च ऐंड ट्रेनिंग इंस्टिच्यूट फॉर एडभांसमेंट ऑफ वुमैन (इन्सट्रॉ) ऐंड यूनाइटेड नेशन्स डेवलेप्मेंट फंड फॉर वुमैन (यूनिम)।

कुमार, आर (1993) द हिस्ट्री ऑफ डुविंग. नई दिल्ली: काली फॉर वुमैन.

गवर्नमेंट ऑफ इंडिया (1994) फोर्थ वर्ल्ड कॉन्फ्रेंस ऑन वुमैन . बिजिंग, कंट्री रिपोर्ट. नई दिल्ली.

नेशनल कमीशन फॉर वुमैन (1980) द नेशनल कमीशन फॉर वुमैन. नई दिल्ली.

नेशनल ह्यूमन राइट्स कमीशन (1993) द नेशनल ह्यूमन राइट्स कमीशन इन इंडिया : नई दिल्ली

रोसी, ए. (1997) देवराला फेमिस्ट पेपर्स फ्रॉम एडभांस टू विहेवियर. न्यू यार्क.

सेन आई. (1990) ए स्पेस विदिन देवराला स्ट्रगल: वुमैन्स पार्टिसिपेशन इन पिपल्स मुवमेंट. नई दिल्ली.

यू एन (1995) द यूनाइटेड नेशन्स ऐंड द एडभांसमेंट ऑफ वुमैन. न्यू यार्क यूनाइटेड नेशन्स पब्लिकेशन.

यू एन (1996) द यूनाइटेड नेशन्स ऐंड ह्यूमन राइट्स. 1945-1995. न्यू यार्क : यू एन पब्लिकेशन.

यू एन (1996) कनवेंसन ऑन देवराला इलिमिनेशन ऑफ ऑल फॉर्म्स ऑफ डिसक्रिमिनेशन अगेन्स्ट वुमैन.

यूनाइटेड नेशन्स पब्लिकेशन यू एन (1998) ह्यूमन डेवेलप्मेंट रिपोर्ट 1998. नई दिल्ली: ऑक्सफोर्ड यूनिवर्सिटी प्रेस.

उत्तर प्रदेश
राजर्षि टण्डन मुक्त विश्वविद्यालय

खंड

2

भारत में स्त्री-पुरुष समानता के लिए संवैधानिक आधार

खंड प्रस्तावना: भारत में स्त्री-पुरुष समानता के लिए संवैधानिक आधार

इकाई 4

भारत में स्त्री-पुरुष समानता के लिए संवैधानिक प्रावधान : अनुदेश और कमियां 5

इकाई 5

संवैधानिक संशोधन : स्त्री-पुरुष समानता के उभरते क्षेत्र 15

इकाई 6

राष्ट्रीय महिला आयोग 32

संदर्भ 49

खंड 2 प्रस्तावना : भारत में स्त्री-पुरुष समानता के लिए संवैधानिक आधार

इस खंड में हम आपको स्त्री-पुरुष समानता के लिए भारत में उपलब्ध संवैधानिक प्रावधानों से परिचित कराने जा रहे हैं।

इसके साथ-साथ इस खंड में आपको स्त्री-पुरुष समानता के लिए संविधान में किए गए संशोधनों, संविधान की कमियों और इसके लिए महिलाओं द्वारा किए जा रहे संघर्षों की भी चर्चा की जाएगी। भारत में महिलाओं के अधिकारों की रक्षा के लिए महिला आयोग की स्थापना की गई है। इस खंड में इसकी भी चर्चा की गई है। इस खंड में तीन इकाइयां हैं।

इकाई 4 में भारत में स्त्री-पुरुष समानता के लिए संवैधानिक प्रावधान: अधिदेश और कमियों पर विचार किया गया है। इस इकाई में भारत के संविधान के मौलिक अधिकारों और नीति निर्देशक सिद्धांतों की चर्चा की गई है जो स्त्री-पुरुष समानता के लिए आधार का काम करता है। इस इकाई में रोजगार के क्षेत्र में और उत्तराधिकार के मामले में स्त्री-पुरुष समानता के संवैधानिक प्रावधानों की भी चर्चा की गई है। इसके अलावा विभिन्न धार्मिक समुदायों के व्यक्तिगत कानूनों के मुद्दों की भी चर्चा की गई है। इकाई के अंत में स्त्री-पुरुष समानता संबंधी संवैधानिक कमियों पर भी विचार किया गया है।

इकाई 5 में संवैधानिक संशोधन: स्त्री-पुरुष समानता के उभरते क्षेत्र पर विचार विमर्श किया गया है। स्त्री-पुरुष समानता के लिए संवैधानिक अधिदेश की पृष्ठभूमि का परीक्षण करने के साथ-साथ इसमें भारत में स्त्री-पुरुष समानता के लिए संवैधानिक संशोधनों के उभरते क्षेत्रों और बदलते परिदृश्य की चर्चा की गई है। संसद में महिला आरक्षण के मुद्दे पर भी विस्तार से विचार किया गया है।

इकाई 6 में भारत में राष्ट्रीय महिला आयोग की ऐतिहासिक पृष्ठभूमि, संघटन और कार्यों पर विचार विमर्श किया जा रहा है।

इस इकाई में आयोग के आरंभिक सरोकारों और कार्यों, वर्तमान कार्य क्षेत्रों और महिलाओं के शक्तिकरण के लिए राष्ट्रीय महिला आयोग के महत्वपूर्ण प्रावधानों पर भी प्रकाश डाला गया है।

इकाई 4 भारत में स्त्री-पुरुष समानता के लिए संवैधानिक प्रावधान : अनुदेश और कमियां

रूपरेखा

4.0 उद्देश्य

4.1 प्रस्तावना

4.2 स्त्री-पुरुष समानता : संवैधानिक अधिदेश

4.2.1 मौलिक अधिकार

4.2.2 नीति निर्देशक सिद्धांत

4.3 रोज़गार में स्त्री-पुरुष समानता के लिए संवैधानिक प्रावधान

4.4 महिलाओं के लिए विशेष संवैधानिक प्रावधान

4.5 व्यक्तिगत कानून और संविधान

4.6 संवैधानिक प्रावधान : कुछ कमियां

4.7 सारांश

4.8 शब्दावली

4.9 कुछ उपयोगी पुस्तकें

4.0 उद्देश्य

इस इकाई में भारतीय संविधान में स्त्री-पुरुष समानता के प्रावधानों के साथ-साथ इस मुद्दे पर संविधान की कमियों की चर्चा की गई है। इसके अध्ययन के बाद आप :

- स्त्री-पुरुष समानता से जुड़े संवैधानिक प्रावधानों के बारे में बता सकेंगे,
- महिलाओं के लिए किए गए विशेष संवैधानिक प्रावधानों के बारे में चर्चा कर सकेंगे,
- व्यक्तिगत कानून के क्षेत्र में प्रदत्त संवैधानिक सुरक्षा उपायों की व्याख्या कर सकेंगे, और
- स्त्री-पुरुष समानता के लिए किए गए संवैधानिक प्रावधानों में अधिदेशों और कमियों के बारे में बता सकेंगे।

4.1 प्रस्तावना

इस इकाई में हम भारतीय संविधान में प्रतिष्ठापित स्त्री-पुरुष समानता के प्रावधानों के बारे में बताएंगे। यह चर्चा हमने संवैधानिक अधिदेशों विशेषकर संविधान के कमशः भाग-तीन और भाग-चार में दिए गए मौलिक अधिकारों और नीति निर्देशक सिद्धांतों से आरंभ की है। उसके बाद अगले भाग में रोजगार के क्षेत्र में स्त्री-पुरुष समानता के संवैधानिक प्रावधानों के बारे में चर्चा दी गई है। संविधान हालांकि समानता का अधिकार देता है (अनुच्छेद 15) महिलाओं के लिए विशेष प्रावधान किए जा सकते हैं (अनुच्छेद 15 '3' इन संवैधानिक प्रावधानों के बारे में हमने भाग 4.4

में चर्चा की है। भारत एक धर्म निरपेक्ष राज्य है और संविधान धर्म (अनुच्छेद 25) और सभी धार्मिक सम्प्रदायों को समान रूप से व्यक्तिगत कानून का व्यवहार करने की स्वतंत्रता की गारंटी देता है। इनके बारे में हमने अगले भाग में समझाया है। इसके अगले भाग में स्त्री-पुरुष समानता के संवैधानिक प्रावधानों की कमियों के बारे में चर्चा की गई है।

4.2 स्त्री-पुरुष समानता : संवैधानिक अधिदेश

इकाई के इस भाग में हम भारत में स्त्री-पुरुष समानता के संवैधानिक प्रावधानों के बारे में बताएंगे।

अपनी इस चर्चा में मौलिक अधिकारों और राज्य के नीति निर्देशक सिद्धांतों का विशेष उल्लेख करेंगे।

भारत का संविधान 26 जनवरी 1950 के दिन से लागू हुआ। इसमें संकल्प लिया गया कि सभी नागरिकों को विचार अभिव्यक्ति, विश्वास, आस्था और पूजा की स्वतंत्रता, हैसियत और अवसर की समानता, और सभी के बीच भातृत्व (भाईचारे) को बढ़ावा देते हुए व्यक्ति की निजी गरिमा और राष्ट्र की एकता और अखंडता क़ायम रखी जाएगी (भारतीय संविधान की प्रस्तावना)

क्या आप जानते हैं?

भारतीय संविधान की प्रस्तावना:

"हम, भारत के लोग, भारत को एक सम्पूर्ण प्रभुत्वसम्पन्न लोकतंत्रात्मक गणराज्य बनाने के लिए तथा उसके समस्त नागरिकों को सामाजिक, आर्थिक और राजनीतिक न्याय, विचार, अभिव्यक्ति, विश्वास, धर्म और उपासना की स्वतंत्रता, प्रतिष्ठा और अवसर की समानता प्राप्त कराने के लिए तथा उन सब में व्यक्ति की गरिमा और राष्ट्रीय एकता सुनिश्चित करनेवाली बंधुता बढ़ाने के लिए दृढ़संकल्प होकर अपनी इस संविधान सभा में आज तारीख 26 नवम्बर, 1949 को एतद द्वारा इस संविधान को अंगीकृत, अधिनियमित और आत्मार्पित करते हैं।

इन राष्ट्रीय लक्ष्यों को प्राप्त करने के लिए संविधान महिलाओं और पुरुषों को कुछ विशेष अधिकार प्रदान करता है। इन्हें हम "मौलिक अधिकार" कहते हैं, जिन्हें न्यायालयों के द्वारा लागू करवाया जा सकता है। इन अधिकारों को सकारात्मक अधिकार की संज्ञा भी दी जा सकती है। कुछ अधिकारों को नकारात्मक अधिकार भी कहा जाता है, जिन्हें अदालतें लागू कर सकती हैं। इन नकारात्मक अधिकारों के अनुसार किसी भी व्यक्ति के साथ किसी भी किस्म का भेदभाव नहीं बरता जा सकता, या उसे समान सुरक्षा देने से इंकार नहीं किया जा सकता है (सी एस डब्ल्यू आई, 1974, पृ. 1)। ये स्त्री-पुरुष समानता के लिए अति महत्वपूर्ण हैं।

संविधान राज्य को कुछ विशेष सिद्धांतों पर अमल करने का निर्देश भी देता है, जिन्हें राज्य के "नीति निर्देशक सिद्धांत" कहा गया है। इन्हें न्यायालयों के द्वारा लागू नहीं कराया जा सकता है। मगर इन सिद्धांतों को राष्ट्र के संचालन का आधार बताया जाता है और इनका नैतिक और राजनीतिक महत्व है।

इस तरह भारत का संविधान सबसे पहले यह सुनिश्चित करता है कि पुरुषों और महिलाओं के साथ समानता बरती जाए और दूसरी बात यह कहता है कि कुछ विशेष मामलों में महिलाओं के साथ दुर्व्यवहार किया जाता है, इसलिए वह राज्य को उनके लिए विशेष प्रावधान बनाने की अनुमति देता

है। तीसरा, संविधान राज्य से अपेक्षा करता है कि वह महिलाओं समेत समाज के कमजोर तबकों की दशा को सुधारने के लिए विशेष प्रयत्न करेगा। चौथा, राज्य से यह अपेक्षा भी की गई है कि वह महिलाओं के शोषण को रोकेगा। पहली दो बातें मौलिक अधिकारों में आती हैं और शेष दो बातें राज्य के लिए निर्देश हैं, जिसे उसे अपने ध्यान में रखना चाहिए।

4.2.1 मौलिक अधिकार

मौलिक अधिकार संविधान के भाग-III में शामिल हैं जिसमें अनुच्छेद 12 से लेकर अनुच्छेद 35 तक 24 अनुच्छेद हैं।

संविधान का अनुच्छेद 14 भारत के भूभाग के अंदर कानून के सामने स्त्री-पुरुष की समानता या समान कानूनी सुरक्षा सुनिश्चित करता है। अनुच्छेद 15 'धर्म, नस्ल, जाति, यौन-लिंग या जन्मस्थान के आधार पर भेदभाव 'का निषेध करता है। लेकिन इस अनुच्छेद (15 '3', का उपबंध 4 राज्य को 'महिलाओं और बच्चों के लिए विशेष प्रावधान' बनाने का अधिकार देता है, जोकि नागरिकों के बीच स्त्री-पुरुष के आधार पर भेदभाव न बरतने के बुनियादी दायित्व के उल्लंघन के बावजूद भी किया जा सकता है। इसी उपबंध के आधार पर राज्य ने महिलाओं के लिए विशेष प्रावधान बनाए हैं और न्यायालयों ने महिलाओं के लिए आरक्षण को न्यायोचित और महिलाओं के पक्ष

स्त्री-पुरूष समानता
सौजन्य : सी.डब्ल्यू.डी.एस., नई दिल्ली

में किए गए संवैधानिक प्रावधानों को सही ठहराया है। जैसे ये प्रावधान महिलाओं को व्यभिचार के दोष में मिलने वाली सजा से मुक्त करते हैं, दंड प्रकिया संहिता की धारा 497 (1) के तहत महिलाओं को जमानत संबंधी विशेष अधिकार देते हैं, अदालती सम्मन सिर्फ पुरुषों पर ही जारी करने का अधिकार देते हैं, सिर्फ महिलाओं को ही गुजारा भत्ता का अधिकारी बनाते हैं, स्थानीय निकायों या शैक्षिक संस्थानों में महिलाओं के लिए सीटों का आरक्षण करते हैं, या महिलाओं पर कुत्सित आक्रमण के लिए दोषी व्यक्ति को सजा देते हैं। (वर्मा, 1995 : 100)

संविधान का अनुच्छेद 16 (2) सभी नागरिकों को रोज़गार संबंधी अवसरों या राज्य के तहत किसी भी पद में नियुक्ति के अवसर की समानता की गारंटी देता है। इसी प्रकार अनुच्छेद 16 (2) धर्म, नस्ल, जाति, यौन-लिंग, वंश, जन्मस्थान, आवास या इनमें से किसी एक के आधार पर राज्य के किसी पद या रोज़गार के मामले में किसी भी तरह के भेदभाव को वर्जित बताता है। रोज़गार या राज्य के अंतर्गत किसी पद पर नियुक्ति के मामले में भेदभाव न किए जाने के दायित्व ने इस तरह कम से कम आदर्श रूप में ही सही भारतीय महिलाओं के लिए महत्वपूर्ण स्थिति और हैसियत सुनिश्चित की है।

4.2.2 नीति निर्देशक सिद्धांत

भारतीय संविधान के भाग-IV में दिए गए राज्य के नीति निर्देशक सिद्धांत असल में कल्याणकारी राज्य के प्रमुख नीतिगत लक्ष्य हैं। मौलिक अधिकारों के साथ मिलकर ये सिद्धांत भारतीय संविधान के निर्माताओं के सामाजिक-राजनीतिक व्यवस्था के दर्शन को ठोस स्वरूप प्रदान करते हैं। नीति निर्देशक सिद्धांत न तो न्यायालय के अधिकार क्षेत्र में आते हैं और न ही इन्हें जबरिया लागू करवाया जा सकता है। इनका उल्लंघन किसी कानून को अमान्य नहीं बनाता है। न ही किसी नागरिक को राज्य द्वारा इनके उल्लंघन के लिए शिकायत करने का अधिकार है जिससे वह राज्य के खिलाफ न्यायालय से अधिदेशात्मक मुआवजा आदि पा सके। मगर नीति निर्देशक सिद्धांत राष्ट्र के संचालन का आधार हैं और राज्य का यह दायित्व है कि वह कानून बनाते समय इन सिद्धांतों को अमल में लाए (अनुच्छेद 37)। नीति निर्देशक सिद्धांतों के अमल के लिए बनाए जाने वाले विधान को इनकी कसौटी पर यथासंभव खरा उतरना चाहिए। न्यायिक दृष्टि से ये भारतीय संवैधानिक कानून का अति महत्वपूर्ण हिस्सा हैं। इनमें से कुछ का सरोकार अप्रत्यक्ष या अनिवार्य निहितार्थ रूप से महिलाओं से है तो कुछ 'महिला विशेष' हैं (सी एस डब्ल्यू आई, 1974, पृ. 2)।

हम इन प्रावधानों को दो श्रेणियों में बांट सकते हैं : वे अनुच्छेद, जो महिलाओं से अप्रत्यक्ष रूप से संबंध रखते हैं और उनसे प्रत्यक्ष रखने वाले अनुच्छेद।

क) निम्न अनुच्छेद महिलाओं से अप्रत्यक्ष रूप से जुड़े हैं : अनुच्छेद 38 का वह सर्वसंरक्षी प्रावधान जो संक्षेप में राज्य को निर्देश देता है कि वह जनता के कल्याण के लिए सामाजिक, आर्थिक और राजनीतिक व्यवस्था बनाए और प्रभावी तरीके से उसकी रक्षा करे। अनुच्छेद 9 के (b), (c) और (f) का संबंध बहुजन हिताय के लिए समुदाय के भौतिक संसाधनों के स्वामित्व के वितरण और नियंत्रण संपदा और उत्पादन के साधनों के संकेन्द्रण, जिससे कि बहुजन अहित हो, पर अंकुश और बच्चों व युवाओं का शोषण और नैतिक भौतिक दुराचार से रक्षा से है।

अनुच्छेद 40 स्वराज को बढ़ावा देने के लिए गांव पंचायतों के गठन से संबंध रखता है। इसी प्रकार अनुच्छेद 41 काम, शिक्षा और बेरोजगारी, वृद्धावस्था, बीमारी, विकलांगता और अन्य तरह की आवांछित स्थितियों में सरकारी सहायता के अधिकार के बारे में बताता है। अनुच्छेद 43 कहता है कि काम के लिए वेतन हो, कार्यगत स्थिति ऐसी हो जिससे कि जीवन स्तर बेहतर बने और व्यक्ति अवकाश, सामाजिक और सांस्कृतिक अवसरों का पूरा आनंद उठाए और अंत में कुटीर उद्योगों को प्रोत्साहन दिया जाए।

अनुच्छेद 44 समान नागरिक संहिता (यूनिफार्म सिविल कोड) की बात करता है तो अनुच्छेद 45

राज्य को 14 वर्ष की आयु तक के बच्चों के लिए निःशुल्क और अनिवार्य शिक्षा देने का निर्देश देता है। अनुच्छेद 47 जनता के पोषण स्तर और जीवन स्तर को उन्नत बनाने और जनस्वास्थ्य में सुधार लाने की बात करता है।

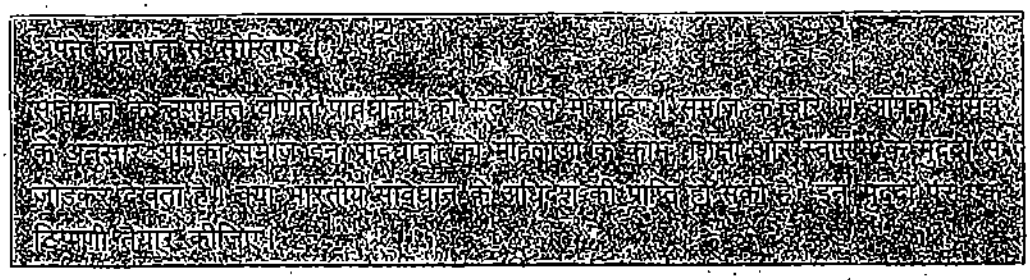

ख) जिन नीति निर्देशक सिद्धांतों का सरोकार सीधे महिलाओं से हैं और जिनका उनकी स्थिति पर विशेष प्रभाव पड़ता है, वे इस प्रकार हैं : अनुच्छेद 39 (a) पुरूषों और महिलाओं के लिए आजीविका के पर्याप्त साधन के समान अधिकार की बात करता है तो अनुच्छेद 39 (d) पुरूषों और महिलाओं के लिए समान काम के लिए समान वेतन की बात करता है। इसी प्रकार अनुच्छेद 39 (e) महिला, पुरुष और बालकों : सभी प्रकार के श्रमिकों के स्वास्थ्य और शारीरिक शक्ति को दुरुपयोग से बचाने और उन्हें ऐसे पेशों में प्रवेश करने से बचाने की बात करता है जो उनकी उम्र और शक्ति के अनुरूप नहीं हों। अनुच्छेद 42 का संबंध समुचित और मानवीय कार्यस्थिति और महिलाओं के लिए मातृत्व लाभ और सहायता से है।

अनुच्छेद 51 का विशेष अनुच्छेद (e) है जो कि नागरिकों के मौलिक कर्तव्यों के बारे में बताता है, महिलाओं के लिए विशेष महत्व रखता है। यह देश के प्रत्येक नागरिक से महिलाओं की गरिमा को ठेस पहुंचाने वाले तमाम प्रचलनों को त्यागने के कर्तव्य का पालन करने को कहता है (भाग III और IV)।

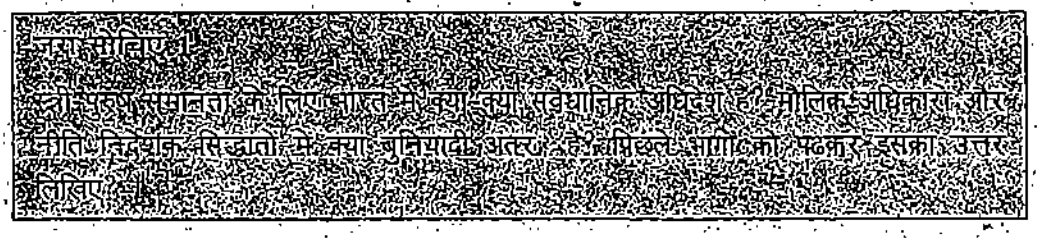

4.3 रोज़गार में स्त्री-पुरुष समानता के लिए संवैधानिक प्रावधान

जैसा कि इस इकाई में पीछे कहा गया है, अनुच्छेद 16 अधिदेश देता है कि राज्य के अधीन रोज़गार या किसी भी पद पर नियुक्ति के मामले में सभी नागरिकों को अवसर की समानता हो। अनुच्छेद 16 (2) यह स्पष्ट रूप से कहता है कि राज्य के अधीन किसी भी पद या रोज़गार के मामले में स्त्री-पुरुष के आधार पर किसी भी तरह का भेदभाव नहीं बरता जाएगा।

संविधान का अनुच्छेद 39 (a) कहता है कि राज्य विशेष रूप से अपनी नीति अपने नागरिकों, पुरुष और महिला दोनों, को समान रूप से आजीविका का अधिकार सुनिश्चित करने की दिशा में बनाएगा। इसके अतिरिक्त अनुच्छेद 39 (d) राज्य को निर्देश देता है कि वह अपनी नीति महिला और पुरुष के लिए समान काम के लिए समान वेतन सुनिश्चित करने में लगाएगा। इस प्रावधान को मजबूती के लिए संसद ने 1976 में समान पारिश्रमिक अधिनियम (इक्वल रेमुनरेशन ऐक्ट) पास किया। इस अधिनियम की धारा 4 कहती है कि किसी भी पुरुष कर्मचारी को (उसी प्रतिष्ठान या रोज़गार के) महिला कर्मचारी से कम वेतन नहीं दिया जा सकता, जो वही काम या उसी तरह का काम करता हो। एक ही काम या उसी तरह के काम के लिए कर्मचारियों की भर्ती करते समय नियोक्ता महिलाओं

के प्रति किसी तरह का भेदभाव नहीं बरत सकता। बहरहाल यह प्रावधान उन पेशों में लागू नहीं होता जहां महिलाओं की नियुक्ति कानूनन वर्जित है (मेथ्यू और अन्य, 1998; पृ. 8.9)।

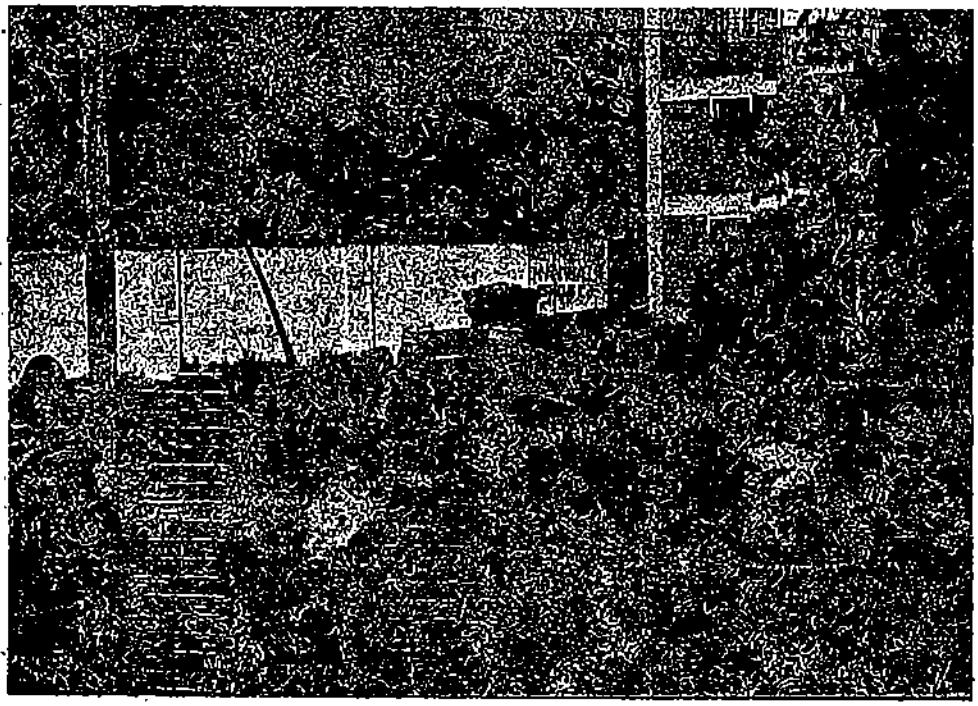

क्या उन्हें समान रोजगार के लिए समान वेतन मिलता है?

संविधान का अनुच्छेद 39 (e) कहता है कि राज्य 'श्रमिकों महिला और पुरुषों के स्वास्थ्य और शक्ति को सुनिश्चित करेगा और यह भी सुनिश्चित करेगा कि छोटे बच्चे के साथ दुर्व्यवहार न हो और नागरिकों को आर्थिक मजबूरियों के चलते ऐसे व्यवसाय में प्रवेश करने के लिए बाध्य नहीं होना पड़े जो उनकी उम्र या सामर्थ्य के अनुरूप न हो। अनुच्छेद 39 (f) के अनुसार राज्य का कर्तव्य है कि वह बचपन और युवाओं को शोषण और नैतिक व भौतिक व्यभिचार से बचाएँ। इस उद्देश्य के लिए अनैतिक देह व्यापार (निरोधक) अधिनियम (1986) बनाया गया जिसके दायरे में वे सभी व्यक्ति, स्त्री या पुरुष आते हैं जिनका व्यावसायिक लाभ के लिए यौन शोषण किया जा रहा हो।

संविधान का अनुच्छेद 42 राज्य को समुचित और मानवीय कार्य स्थिति और मातृत्व सहायता प्रदान करने का निर्देश देता है। इस प्रावधान को व्यावहारिक रूप देने के लिए 1961 में मातृत्व लाभ अधिनियम पारित किया गया। इस अधिनियम को 1976 में संशोधित कर इसके दायरे में उन महिलाओं को भी शामिल किया गया जो 1948 के कर्मचारी राज्य बीमा अधिनियम के दायरे से बाहर थीं। इन सिद्धांतों के अमल में एक और अन्य महत्वपूर्ण विधान, फैक्ट्री (संशोधन) अधिनियम 1976 पारित किया गया, जिसके अनुसार जिन प्रतिष्ठानों में 30 से अधिक महिलाएं काम कर रही हों उनके बच्चों की देखरेख के लिए शिशु सदन की व्यवस्था अनिवार्य है। महिलाओं की दशा को सुधारने और उनके खिलाफ होने वाले अपराधों को रोकने के लिए दहेज निषेध (संशोधन) अधिनियम 1986 ने इससे पूर्व 1961 के दहेज निषेध अधिनियम के प्रावधानों को और कड़ा प्रभावशाली बना दिया है।

दंड कानून (संशोधन) अधिनियम, 1983 ने भारतीय दंड संहिता (आइपीसी) में बलात्कार की सजा, दंड प्रक्रिया और साक्ष्य नियमों से संबंधित कुछ विशेष सुधार किए। आइपीसी में दहेज मृत्यु (धारा 304 b) और पति व अन्य संबंधियों द्वारा की जाने वाली क्रूरता (धारा, 498A) जैसे नए प्रावधान जोड़ दिए गए हैं (एस.के. वर्मा, 1995, पृ.101-2)।

इन सब प्रावधानों के अलावा भारतीय संविधान राज्य को यह दायित्व भी सौंपता है कि वह मानवीय कार्य स्थितियां सुनिश्चित करे और स्त्री-पुरुष समानता के अलावा मानवीय गरिमा के साथ काम करने के अधिकार की गारंटी भी नागरिकों का दे। संविधान का अनुच्छेद 19 (1) (g) कोई भी व्यवसाय या पेशा, व्यापार या धंधा करने के अधिकार की गारंटी देता है तो अनुच्छेद 21 जीवन और निजी स्वतंत्रता के सुरक्षा की गारंटी देता है। निजी स्वतंत्रता के संदर्भ में महिलाओं के संवैधानिक अधिकारों के मामले में कुछ और प्रगति हुई है। पुलिस लॉक-अप में बंद महिलाओं की समस्याएं एक बार सर्वोच्च न्यायालय के सामने रखी गई।। असल में सर्वोच्च न्यायालय को एक पत्र मिला जिसमें बंबई में पुलिस हिरासत में बंदी महिलाओं के साथ किए जा रहे पुलिस अत्याचार और हिंसा की शिकायत की गई थी। उच्चतम-न्यायालय ने इस शिकायत पर कार्रवाई करते हुए दिशा निर्देश जारी किए कि महिलाओं के साथ हिरासत में कैसा बर्ताव किया जाए। इन दिशा-निर्देशों मे कई तरह के सुरक्षा उपाय सम्मिलित हैं जैसे जिन महिलाओं पर अपराधी होने का संदेह हो उन्हें अलग हवालात में बंदी रखा जाए और उनसे पूछताछ सिर्फ महिला पुलिस अधिकारियों की उपस्थिति में ही हो।

आरंभ में उल्लिखित अनुच्छेदों जो राज्य के नीति निर्देशक सिद्धांत हैं, से अलग ये अनुच्छेद समानता और स्वतंत्रता के मौलिक अधिकारों को दर्शाते हैं और यौन उत्पीड़न से सुरक्षा प्रदान करते हैं जोकि इनमें अंर्तनिहित है।

जरा सोचिए 2

संविधान के निम्न अनुच्छेद किस से संबंध रखता है ?

क) 39 (a)

ख) 39 (b)

ग) 39 (c)

घ) 39 (d)

ङ) 42

च) 19 (1) (g)

4.4 महिलाओं के लिए विशेष संवैधानिक प्रावधान

संविधान का अनुच्छेद 15 (3) राज्य को महिलाओं के कल्याण के लिए विशेष प्रावधान बनाने की अनुमति देता है। इस अनुच्छेद 15 (3) के कारण ही न्यायालयों ने महिलाओं के लिए समय-समय पर किए गए प्रावधानों की वैधता को सही ठहराया है। इसके उदाहरण इस प्रकार हैं :

1) विशेष विवाह अधिनियम की धारा 56 (जिस दौरान न्यायालय में विवाद लंबित हो) सिर्फ पत्नियों को ही गुजारा भत्ता दिए जाने की अनुमति देती है।

2) व्यभिचार के लिए महिलाओं को सजा नहीं दी जा सकती। इस अपवाद की वैधता को सही ठहराया गया है।

3) दंड प्रक्रिया संहिता में ऐसे प्रावधान हैं जो महिलाओं को जमानत पर रिहाई पाने के विशेष अधिकार देते हैं। इन प्रावधानों को भी सही माना गया है।

4) दंड प्रक्रिया संहिता के तहत किसी परिवार की महिला सदस्य के नाम अदालती सम्मन जारी नहीं किया जा सकता। इसे भी वैध ठहराया जा चुका हैं।

5) स्थानीय निकायों में महिलाओं के लिए सीटों के आरक्षण के प्रावधान को भी वैध पाया गया है। इसी प्रकार शैक्षिक संस्थानों में महिलाओं के लिए आरक्षण के प्रावधान को भी वैध ठहराया गया है।

6) भारतीय दंड संहिता की धारा 354 में महिलाओं के साथ अभद्र व्यवहार के लिए सजा के प्रावधान को वैध ठहराते हुए एक न्यायोचित वर्गीकरण माना गया है।

7) 73वें और 74वें संवैधानिक संशोधन (1992) के भारतीय संविधान का भाग IX महिलाओं के लिए ग्रामीण और शहरी स्थानीय निकायों में एक तिहाई आरक्षण प्रदान करता है।

8) कानूनी सेवा प्राधिकार अधिनियम (लीगल सर्विसेज ऑथरिटी एक्ट) में महिलाओं को नि:शुल्क कानूनी सहायता दिए जाने का प्रावधान किया गया है, भले ही महिलाओं की स्थिति कुछ भी हो।

9) सरकारी निकायों या व्यक्तियों द्वारा महिलाओं के उत्पीड़न की शिकायतों पर कार्रवाई करने के लिए राष्ट्रीय महिला आयोग का गठन किया गया है (1992)। इसके साथ इसी मॉडल पर कई राज्यों में महिला आयोग गठित हुए हैं। (मैथ्यू, 1998 : पृ.10)

4.5 वैयक्तिक कानून और संविधान

संविधान का अनुच्छेद 25 सभी नागरिकों को धर्म की स्वतंत्रता का समान अधिकार देता है। इसका यह अर्थ है कि एक व्यक्ति किसी भी धर्म का अंगीकार, व्यवहार और प्रचार कर सकता है। भारत में मौजूद विभिन्न धार्मिक सम्प्रदाय अपने व्यक्तिगत कानूनों द्वारा परिचालित होते हैं जो विवाह, तलाक, गुजारा-भत्ता, संरक्षकता, दत्तकग्रहण, उत्तराधिकार और दाय-प्राप्ति इत्यादि मामलों को निपटाते हैं।

परंतु जहां तक महिलाओं का संबंध है, सभी धर्मों में भेदभाव भरे पहलू मौजूद हैं। उन मामलों में भी, जहां कानून संहिताबद्ध हैं जैसे हिंदुओं में, वैधानिक निर्देशों और सामाजिक स्वीकार्यता के बीच बड़ी गहरी खाई है। उत्तराधिकार के मामले में हिंदू उत्तराधिकार अधिनियम (1956) ने सामान्यत: स्त्री-पुरुष समानता बनाए रखी है और यह महिला उत्तराधिकारियों को पैतृक संपत्ति में दाय-प्राप्ति का अधिकार तो देता है लेकिन इस में अनेक पतनोन्मुखी प्रावधान हैं। अनुच्छेद 4 (2) के अनुसार कृषि जोतों को खंडित होने से रोकने वाले कानूनों पर यह अधिनियम लागू नहीं होता। इसका सीधा सा मतलब यह है कि जोतों को टुकड़ों में बंटने से रोकने के नाम पर एक हिंदू महिला को संपत्ति के अधिकार से वंचित रखा जा सकता है। इसके अलावा धारा 23 संपत्ति के विभाजन की मांग के उसके अधिकार पर अंकुश लगाता है। इसके अनुसार अगर कोई हिंदू निर्वसीयत (वसीयत किए बिना) मर जाता है उसकी महिला उत्तराधिकारी घर या मकान में अपना हिस्सा नहीं मांग सकती। ऐसा वह तभी कर सकती है जब मृतक के पुरुष उत्तराधिकारी अपना-अपना हिस्सा बांटने के लिए तैयार हों। तब तक उस महिला उत्तराधिकारी को उस घर में रहने का अधिकार रहता है। यह महिला उत्तराधिकारी अगर बेटी हो तो उसे पैतृक घर में रहने का अधिकार तभी है जब वह अविवाहित हो या उसके पति ने उसे त्याग दिया हो या तलाकशुदा हो या फिर वह विधवा हो। सीएस डब्ल्यू आई की रिपोर्ट में इस भेदभाव पूर्ण प्रावधान को अधिनियम से हटाने की सिफारिश की थी ताकि सभी बेटियों को समान अधिकार मिल सकें (1974, पृ.138)। हिंदू संरक्षकता और अल्पसंख्यक अधिनियम (1956) भी पिता को ही बच्चे का स्वाभाविक संरक्षक मानता है और उसकी अनुपस्थिति में ही मां प्राकृतिक संरक्षक बन सकती है। संबंध विच्छेद की स्थिति में मां बच्चे की संरक्षक तभी बन सकती है जब बच्चे की उम्र पांच वर्ष से कम हो। बहरहाल अपने एक ऐतिहासिक फैसले में भारत के उच्चतम न्यायालय ने फरवरी 1999 में मां और पिता दोनों को समान रूप से बच्चे का

प्राकृतिक संरक्षक बनने का अधिकार दे दिया है। इस फैसले को भारतीय नारी की एक ऐतिहासिक विजय माना गया है।

उधर मुस्लिम व्यक्तिगत कानून (मुस्लिम पर्सनल लॉ) के तहत कोई भी मुसलमान चार पत्नियां रख सकता है। जहां तक तलाक का संबंध है 1939 के मुस्लिम विवाह विच्छेद अधिनियम (डिसोल्यूशन ऑव मुस्लिम मैरिज एक्ट) से मुस्लिम महिलाओं की स्थिति में कुछ सुधार अवश्य आया। लेकिन इसमें पति द्वारा तलाक कहकर एक तरफा संबंध-विच्छेद कर लेने के प्रावधान को बरकरार रखने और बहुपत्नी प्रथा के कारण महिलाओं की सामाजिक स्थिति में कमी आई है। शाह बानो मुकदमे के बाद 1986 में मुस्लिम महिला (संबंध विच्छेद अधिकार रक्षा) अधिनियम (मुस्लिम वीमेंस प्रोटेक्शन ऑव राइट्स ऑन डाइवोर्स एक्ट) के पारित हो जाने से दंड प्रकिया संहिता की धारा 125-127 के तहत अपने पति से गुजारा भत्ता मांगने के मुस्लिम महिलाओं को अधिकार में भारी कटौती हो गई है। संपत्ति के उत्तराधिकार के मामले में शरियत कानून के अनुसार महिलाओं को अधिकार तो है मगर यह बराबरी का नहीं है क्योंकि इसमें बेटे को बेटी से दोगुना हिस्सा मिलता है। मुस्लिम व्यक्तिगत कानून में दत्तक ग्रहण या गोद लेने का कोई प्रावधान नही है।

ईसाई और पारसी विवाह और तलाक संबंधी कानूनों में पुरुषों और महिलाओं की स्थिति में कोई बड़ी विषमता नहीं दिखाई देती है। मगर यह कानून भी पर्याप्त नज़र नहीं आता क्योंकि ईसाइयों के लिए लागू होने वाला भारतीय संबंध विच्छेद अधिनियम (1869) के तहत क्रूरता ही तलाक का आधार नहीं हो सकती। इस अधिनियम के अनुसार पत्नी तभी तलाक मांग सकती है जब पति ने अपना धर्म बदल लिया हो और दूसरी स्त्री से विवाह कर लिया हो या फिर पति व्यभिचार, दूसरी पत्नी (रखैल) रखने, या बलात्कार, अप्राकृतिक मैथुन, पशुता, क्रूरता या पत्नी का परित्याग करने का दोषी हो। इस तरह इस अधिनियम के प्रावधान स्पष्टतः महिलाओं के प्रति भेदभाव पूर्ण है। (सी एस डब्ल्यू आई रिपोर्ट '1974' का अध्याय 3 देखें)।

कई लोगों का तर्क यह है कि धर्म द्वारा संचालित होने वाले विभिन्न व्यक्तिगत कानूनों में महिलाओं के प्रति व्यवहार में मौजूद विसंगतियों को एक समान नागरिक संहिता बनाकर दूर किया जा सकता है। जैसा कि संविधान का अनुच्छेद 44 में निर्देश दिया गया है, यह एक बेहतर उपाय होगा। उच्चतम न्यायालय ने 1986 में शाहबानों मुकदमे और मई 1995 में सरला मुदगल बनाम भारत सरकार मुकदमे में भी यही विचार व्यक्त किया था कि केंद्र सरकार संविधान के अनुच्छेद 44 पर पुनर्विचार करे। कुछ अन्य महसूस करते हैं कि पहले विभिन्न धर्मों के लिए समान कानून बनाने के प्रयास किए जाएं, जिसे हम व्यक्तिगत कानूनों का संहिताकरण कह सकते हैं। मगर कुछ लोग समान नागरिक संहिता के सिद्धांत को यह कहकर खारिज कर देते हैं कि यह संविधान के अनुच्छेद 25 में नागरिकों को दी गई धर्म की स्वतंत्रता के अधिकार पर कुठाराघात होगा। मगर वहीं यही अनुच्छेद इस अधिकार को जन व्यवस्था, नैतिकता और स्वास्थ्य से जोड़कर इसे सीमित करता है (25) (1)। यह राज्य को उन क्रिया कलापों को नियमित करने या उन पर अंकुश लगाने का अधिकार देता है, जो धार्मिक प्रचलन से जुड़ी हो सकती है (25 [2] [a])। इसलिए स्त्री-पुरुष समानता के सिद्धांत और धार्मिक स्वतंत्रता के बीच संतुलन बनाया जा सकता है क्योंकि ये दोनों पहलू भारतीय संविधान का अभिन्न अंग हैं।

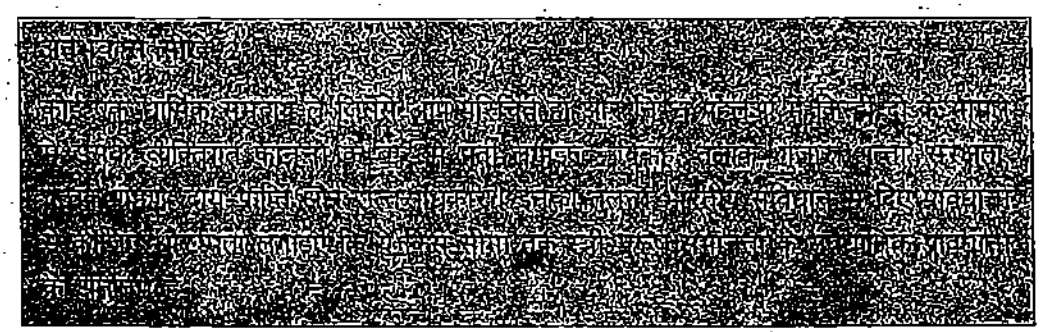

4.6 संवैधानिक प्रावधान : कुछ कमियां

जैसा कि पीछे हुई चर्चा में बताया गया है समानता का सिद्धांत मौलिक अधिकारों के अध्याय में विभिन्न अनुच्छेदों में समाहित है। यह स्वीकार किया जाता है कि हालांकि बतौर नागरिक महिलाओं के अधिकार समान हैं, अक्सर स्त्री-पुरुष सोच जनित भेदभावों के चलते उन्हें विशेष समस्याओं का सामना करना पड़ता है। संविधान का अनुच्छेद 16 राज्य के तहत रोज़गार या किसी भी पद पर नियुक्ति के मामले में सभी नागरिकों को अवसर की समानता का अधिकार देता है। यह रोजगार और नियुक्ति सरकार तक सीमित है। गैर-सरकारी क्षेत्र, इसमें नहीं आता जहां कि गैर-भेदभाव के नियम को मोड़ा जा सकता है। फिर अनुच्छेद 15 (3) के अंतर्गत महिलाओं के लिए विशेष प्रावधान बनाना राज्य के लिए आदेश नहीं है। सो यह राज्य के अपने विवेक पर निर्भर है और हो सकता है कि वह कोई ऐसा प्रावधान नहीं करे। इसलिए समानता के नियम का पूरा लाभ उठाने के लिए महिलाओं को राज्य की दया पर निर्भर रहना पड़ता है। (वर्मा, 1995, पृ. 100-1)।

मौलिक अधिकारों के अलावा, जिनको अदालत के आदेश से लागू करवाया जा सकता है, संविधान के अध्याय-IV में महिलाओं से संबंधित कुछ विशेष प्रावधान राज्य के नीति-निर्देशक सिद्धांत में निहित हैं जिनके बारे में हम पीछे बता चुके हैं। ये सिद्धांत देश के संचालन के लिए बुनियादी हैं और राज्य का कर्तव्य है कि कानून बनाते समय वह इन सिद्धांतों पर अमल करे, मगर ये बाध्यकारी नहीं है और ये न्यायालयों के दायरे में नहीं आते। इसलिए महिला विषयक सिद्धांतों को आसानी से ताक में रखा जा सकता है।

जहां तक व्यक्तिगत कानूनों का मामला है, जो कि महिलाओं के प्रति भेदभावपूर्ण हैं जैसा कि इकाई के 4.5 भाग में बताया गया है, समानता का अधिकार उनको तब तक नहीं मिल सकता जब तक उनके अपने सम्प्रदायों के लोगों की ओर से इस दिशा में पहल नहीं की जाती। व्यक्तिगत कानूनों के अस्तित्व, व्यवहार और आत्मसात्करण को राज्य के उपकरणों के माध्यम से नहीं रोका जा सकता है क्योंकि यह धार्मिक आस्था के व्यवहार और प्रचार में हस्तक्षेप माना जाएगा। इसके बावजूद ऐसे रीति-रिवाजों और प्रथाओं को चुनौती दी जा सकती है और उन पर रोक लगाई जा सकती हैं जो अपमानजनक और मानवता विरोधी हों। मई 1997 में मुंबई उच्च न्यायालय की एक पूर्ण खंडपीठ ने एक ईसाई महिला को क्रूरता के आधार पर तलाक की अनुमति दी, हालांकि भारतीय संबंध विच्छेद अधिनियम (1896) के अनुसार ईसाई महिला इस आधार पर तलाक पाने की अधिकारी नहीं है।

इस प्रकार उच्चतम न्यायालय अपने विवेक से ऐसे निर्णय दे सकता है जो स्त्री-पुरुष समानता की दृष्टि से न्यायपूर्ण हों। फिर महिलाओं के प्रति होने वाले अपराधों से संबंधित ऐसे कई कानून हैं जिनका महिलाएं प्रयोग कर सकती हैं। इनके बारे में आगे की इकाइयों में विस्तार से चर्चा की जाएगी।

4.7 सारांश

इस इकाई में हमने स्त्री-पुरुष समानता के लिए संवैधानिक प्रावधानों के बारे में चर्चा की। हमने अपनी चर्चा संवैधानिक अधिदेशों से आरंभ की है। इसके दोनों भागों, मौलिक अधिकार भाग (भाग 4.2.1) और नीति निर्देशक सिद्धांत (भाग 4.2.2) पर विस्तार से चर्चा की गई और दोनों के बीच अंतर भी बताया गया। रोज़गार से जुड़े संवैधानिक प्रावधानों (भाग 4.3) की विशेष रूप से चर्चा की गई। महिलाओं के लिए विशेष प्रावधानों की आवश्यकता और इन प्रावधानों की विषयवस्तु के बारे में भी बताया गया (भाग 4.4) जिसमें आपने जाना कि समानता का मौलिक अधिकार भी राज्य को महिलाओं के लिए विशेष प्रावधान बनाने से नहीं रोकता। भारतीय संविधान देश के नागरिकों को

धर्म की स्वतंत्रता की गारंटी भी देता है, मगर यह वहां हस्तक्षेप कर सकता हैं जहां व्यक्तिगत कानून महिलाओं की गरिमा पर चोट करते हैं और उनके साथ अमानवीय व्यवहार किया जा रहा हो। मगर इस अंतर्विरोध का समाधान निकाल पाना इतना सहज नहीं है जैसा कि : आखिरी भाग में हमने स्त्री-पुरुष समानता के सिलसिले में संवैधानिक प्रावधानों की कमियों के बारे में आपको बताया है।

4.8 शब्दावली

व्यवसाय	:	पेशा या धंधा जो कि किसी भी व्यक्ति का साधारण कार्य नहीं है।
भातृत्व	:	भाईचारे की भावना।
निर्वसीयती	:	संपत्ति के बंटवारे के लिए वसीयत किए बिना।
अधिदेश	:	अनिवार्य आज्ञाएं या आदेश।
व्यक्तिगत कानून	:	एक धार्मिक सम्प्रदाय विशेष के विशिष्ट वैधानिक नियम
प्रावधान	:	कानून दस्तावेज में दी गई व्यवस्था या शर्तें।

4.9 कुछ उपयोगी पुस्तकें

भारत सरकार, (1974) समता की ओर भारत में महिलाओं की स्थिति पर गठित समिति की रिपोर्ट. सी एस डब्ल्यू आई, नई दिल्ली.

मैथ्यू, पी.डी. और बक्शी, पी.एम. (1998) *वीमेन एंड द कस्टीट्यूशन लीगल एजुकेशन सिरीज.* इंडियन सोशल इंस्टीट्यूशन, नई दिल्ली.

शुक्ला, वी.एन. (1994) *कंस्टीट्यूशन ऑफ इंडिया.* लखनऊ : ईस्टर्न बुक कंपनी.

वर्मा, एस.के., (1995) *'जेन्डर इक्वेलिटी : थ्योरी एंड प्रैक्टिस इन इंडिया'*, जे.ए. कौल (संपा.) ह्यूमन राइट्स. नई दिल्ली : रेजेन्सी पब्लिकेशंस.

इकाई 5 संवैधानिक संशोधन : स्त्री-पुरुष समानता के उभरते क्षेत्र

रूपरेखा

5.0 उद्देश्य

5.1 प्रस्तावना

5.2 स्त्री-पुरुष समानता के लिए संवैधानिक अधिदेश की सामाजिक पृष्ठभूमि

5.3 कल्याण से शक्तिकरण की ओर : कुछ रणनीतियाँ

5.3.1 विकास दृष्टिकोण में परिवर्तन

5.3.2 पंचायती राज और संवैधानिक संशोधन

5.3.3 पंचायती राज संस्थान में बदलता परिदृश्य

5.4 आरक्षण के जरिए महिलाओं का शक्तिकरण

5.4.1 भारत में महिलाओं का राजनैतिक प्रतिनिधित्व

5.4.2 लोक सभा में महिलाएं

5.5 महिलाओं का आरक्षण बिल

5.5.1 पाठ और संदर्भ

5.5.2 बहस की एक झलक

5.5.3 संभावित परिणाम

5.6 सारांश

5.7 शब्दावली

5.8 कुछ उपयोगी पुस्तकें

5.0 उद्देश्य

पाठ्यक्रम की पिछली इकाइयों में हमने स्त्री-पुरुष समानता से संबंधित विभिन्न संवैधानिक प्रावधानों पर विचार किया है। इस इकाई में हमने समाज में स्त्री-पुरुष समानता से संबंधित संवैधानिक संशोधनों पर विचार किया है। इस इकाई को पढ़कर आप:

- भारत में स्त्री-पुरुष समानता के लिए संवैधानिक अधिदेश की सामाजिक पृष्ठभूमि की व्याख्या कर सकेंगे,
- 73वें और 74वें संवैधानिक संशोधनों के पाठ और संदर्भ का विश्लेषण कर सकेंगे, और
- महिला आरक्षण बिल और इससे जुड़ी बहसों पर विचार कर सकेंगे।

5.1 प्रस्तावना

'इस दुनिया में आधी संख्या महिलाओं की है परंतु यह दुनिया पुरुषों की है। कानून भी पुरुष का है, सरकार भी पुरुष की है, देश भी पुरुष का है। इस दुनिया को पुरुष और महिला दोनों की दुनिया

बनाना है'। दुनिया के कोने-कोने में होने वाले महिला आंदोलन का यह एक प्रसिद्ध नारा है। परंतु यह एक साधारण नारा नहीं है। इसके भीतर एक पीड़ा है, बेचैनी है और समाज को बदलने की आकांक्षा है। यह परिवर्तन अपने आप नहीं हो सकता है। इसमें एक ओर जनता को आंदोलन करना होगा तो दूसरी ओर राज्य द्वारा राजनैतिक इच्छा शक्ति का प्रदर्शन करना होगा तभी जाकर एक संगठित और संयोजित प्रयास हो सकेगा। दुनिया के अलग-अलग हिस्सों में महिलाओं ने आंदोलन किए और उसमें महिलाओं का असंतोष अभिव्यक्त हुआ। राज्य को भी स्त्री पुरुष समानता के लिए राजनीतिक रूप से प्रतिबद्ध होना पड़ेगा।

भारत के संविधान में स्त्री-पुरुष समानता की व्यापक संभावनाएं निहित हैं। हालांकि हमारे देश की सामाजिक, आर्थिक और राजनैतिक संरचना को देखते हुए केवल संवैधानिक संभावना से ही स्त्री-पुरुष समानता पैदा नहीं की जा सकती। इसके लिए संवैधानिक प्रावधानों के अनुसार विकास रणनीति में परिवर्तन करना होगा तथा महिलाओं को आरक्षण देकर समाज के भेदभाव से उनकी रक्षा करनी होगी। यहां हम विभिन्न स्तरों पर निर्णय लेने वाले निकायों में भागीदारी के लिए आरक्षण की बात कर रहे हैं। इस इकाई में आरक्षण के पाठ और संदर्भ के विश्लेषण और परीक्षण के लिए हम स्त्री-पुरुष असमानता के सामाजिक-सांस्कृतिक संदर्भ और महिलाओं के असंतुलित राजनैतिक भागीदारी की दृष्टि से विचार करेंगे। हम विकास दृष्टिकोण की बदलती प्रकृति और हमारे समाज में महिलाओं की राजनैतिक सम्पन्नता के लिए आरक्षण की आवश्यकता पर भी विचार करेंगे। इसीलिए हमने अपने संविधान में 73वें और 74वें और प्रस्तावित 81वें संवैधानिक संशोधनों पर विचार किया है। इन संशोधनों से हमारे समाज में इस दिशा में कुछ बहस भी शुरू हुई है। इस बहस को यहां संक्षेप में प्रस्तुत किया जाएगा।

5.2 स्त्री पुरुष समानता के लिए संवैधानिक अधिदेश की सामाजिक पृष्ठ भूमि

19वीं शताब्दी के अंत में पश्चिमी और भारतीय इतिहासकारों ने इस बात पर बल दिया है कि वैदिक समाज में महिलाएं पुरुषों के बराबर थीं और उन्हें भी पुरुषों के समान सम्मान प्राप्त था (देखिए आल्टेकर ए.एस, 1938, पुनः मुद्रित 1987, द पोजिशन ऑफ विमेन इन हिन्दू सिविलाइजेशन, दिल्ली मोतीलाल बनारसीदास)। हाल के इतिहासकारों ने इस दृष्टिकोण को चुनौती दी है (देखिए उमा चक्रवर्ती और कुमकुम राय, अप्रैल 1988 "इन सर्च ऑफ आवर पास्ट: रिव्यू ऑफ लिमिटेशन ऑफ पॉसिबलिटी हिस्ट्रीओग्राफी ऑफ विमेन इन अर्ली इंडिया," रिव्यू ऑफ विमेन स्टडिज, इकोनोमिक एंड पॉलिटिकल विकली, पृष्ठ डब्लू. एस 2-10)।

धीरे-धीरे महिलाओं की स्थिति खराब होती चली गई। सती प्रथा, दहेज, बहु विवाह, कम उम्र में शादी आदि जैसी कुछ सामाजिक बुराइयों का शिकार महिलाओं को ही बनना पड़ा। ब्रिटिश काल में राजा राम मोहन राय, ईश्वरचंद्र विद्यासागर, ज्योतिबा फुले और कई अन्य लोगों ने महिलाओं पर होने वाले अत्याचारों के खिलाफ आवाज उठाई। ब्रिटिश काल में सती उन्मूलन और विधवा पुनर्विवाह अधिनियम पारित किया गया। बाद में महात्मा गांधी और नेहरू के नेतृत्व में और कस्तूरबा गांधी, सरोजिनी नायडु, विजय लक्ष्मी पंडित, अरूणा आसफ अली, उषा मेहता जैसी नेताओं के नेतृत्व में महिलाओं की प्रतिष्ठा और समाज को ऊपर उठाने और देश की गुलामी की बेड़ियों से मुक्त करने के लिए संघर्ष किया गया। स्वतंत्रता आंदोलन के दौरान कई राष्ट्रीय महिला संगठन काम करते रहे। भारतीय महिला संघ (1917), भारतीय महिला परिषद (1920), अखिल भारतीय सम्मेलन (1926) जैसे कई संगठनों की स्थापना की गई और इन्होंने कई महिला सम्मेलन आयोजित किए। 1920 में भारतीय विश्वविद्यालय महिला संघ की स्थापना की गई जिसका उद्देश्य नागरिक और सार्वजनिक जीवन में भी महिलाओं के हितों की रक्षा करना था। महिलाओं से संबंधित आर्थिक, वैधानिक और सामाजिक

बाधाओं को दूर करना भी इसका एक लक्ष्य था। बच्चों और महिलाओं के कल्याण के लिए सामाजिक, नागरिक, नैतिक तथा शैक्षिक कल्याण को आगे बढ़ाना भी इसमें शामिल था।

गांधी जी के राजनीति परिदृश्य पर उभरते ही राजनैतिक क्षेत्र में महिलाओं का तेजी से उदय हुआ। उनका स्वराज व्यापक था। इसमें महिलाओं में आत्मबल और आत्मविश्वास पैदा करने और दमन के खिलाफ संघर्ष करने की भावना भी निहित थी। उनके विचारों ने भी महिलाओं के अंदर एक आत्मविश्वास पैदा किया और इस बात की चेतना जागृत की कि वे भी दमन के खिलाफ संघर्ष कर सकती हैं। गांधी जी के लिए स्वराज हेतू संघर्ष मात्र राजनैतिक जागरूकता से ही संबंधित नहीं था बल्कि इसका संबंध सामाजिक, शैक्षिक, नैतिक, आर्थिक और राजनैतिक सभी प्रकार की जागरूकता से था।

इसके परिणामस्वरूप बड़ी संख्या में महिलाओं ने स्वतंत्रता संग्राम में हिस्सा लिया और 30 के दशक में नागरिक अवज्ञा आंदोलन में शामिल हुईं। सरोजिनी नायडु और कमला देवी चटोपध्याय के अतिरिक्त हजारों महिलाओं ने स्वेच्छा से स्वतंत्रता आंदोलन में हिस्सा लिया। महिलाओं के इसी संघर्ष के कारण और स्वतंत्रता आंदोलन में उनकी भूमिका के फलस्वरूप स्वतंत्र भारत के संविधान में स्त्री-पुरुष समानता और महिलाओं की सुरक्षा और संरक्षण की बात की गई। भारतीय संविधान के निर्माताओं को यह मालूम था कि मौजूदा सामाजिक ओर सांस्कृतिक माहौल में महिलाओं को स्त्री-पुरुष भेदभाव से मुक्त किया जाना और उन्हें न्याय दिलाया जाना संभव नहीं है। इसलिए उन्होंने समाज के अन्य कमजोर हिस्सों के महिलाओं के लिए विशेष प्रावधान किए। भारतीय संविधान में और खासकर मौलिक अधिकारों और नीति निर्देशक सिद्धांतों में महिलाओं के लिए खास प्रावधान किए गए हैं। महिलाओं के प्रति भेदभाव को रोकने और महिलाओं के हितों को आगे बढ़ाने तथा सुरक्षा प्रदान करने के लिए कई मुख्य धाराएं शामिल की गईं। अनुच्छेद 15 (3) के तहत महिलाओं के विशेष प्रावधान बनाने का अधिकार राज्य को दिया गया है। इन संवैधानिक व्यवस्थाओं के बावजूद स्त्री-पुरुष समानता संबंधी संवैधानिक अधिदेश और महिलाओं की मौजूदा सामाजिक, आर्थिक स्थिति में बहुत फर्क है।

संविधान के अनुच्छेद 14 में कानून के समक्ष समानता और कानून से समान रूप से संरक्षण की बात की गई। अनुच्छेद 14 और 15 में सम्मानजनक जिंदगी का वादा किया गया है और यह कहा गया है कि धर्म, नस्ल, लिंग, विश्वास, आस्था या पूजा पद्धति के आधार पर महिलाओं के खिलाफ भेदभाव नहीं रखा जा सकता है। अनुच्छेद 15 (1) में स्पष्ट रूप से धर्म, लिंग, जाति, जन्म और अन्य कारकों के आधार पर भेदभाव पर स्पष्ट रूप से रोक लगाई गई है। अनुच्छेद 15 (3) इस दृष्टि से महत्वपूर्ण है क्योंकि इसमें समानता के सिद्धांत को संवैधानिक छूट दी गई है। इसमें कहा गया है कि 'इस अनुच्छेद में कुछ भी ऐसा नहीं है जो राज्य को महिलाओं और बच्चों के लिए विशेष प्रावधान करने को रोक सके'। इसके बाद समाज के दो सबसे कमजोर वर्गों, महिलाओं और बच्चों को संरक्षण और सुरक्षा प्रदान करने के लिए एक सकारात्मक, ठोस और विशिष्ट संवैधानिक अधिदेश पारित किया गया।

भरतीय संविधान की अनुच्छेद 16 में सार्वजनिक/राज्य रोजगार में समानता पर विशेष रूप से जोर दिया गया हैं। अनुच्छेद 16 (1) में इस प्रकार के रोजगार में अवसर की समानता की बात की गई है। अनुच्छेद 16 (2) में धर्म, नस्ल, या लिंग के आधार पर सार्वजनिक रोजगार से वंचित रखने पर प्रतिबंध लगाया गया है। अनुच्छेद 16 (4) में खासतौर से राज्य को यह अधिकार दिया गया है कि वह पिछड़े वर्गों के लिए विशेष प्रावधान बना सकता है और इसी उपधारा के तहत मंडल आयोग की रिपोर्ट आने के बाद अन्य पिछड़े वर्गों के लिए आरक्षण का अधिदेश जारी कर सकता है। इसके परिणामस्वरूप अनुच्छेद 15 (3), 16 (4) और 330 में विशिष्ट संवैधानिक प्रावधानों द्वारा सामान्य समानता की बात की गई है। इसके अलावा इनमें महिलाओं, बच्चों, पिछड़े वर्गों, अनुसूचित जाति और अनुसूचित जनजाति के आरक्षणों और अन्य विशेष योजनाओं पर बल दिया गया हैं।

विदेशी शासन ने हमारे देशी हस्तशिल्पों को नष्ट कर दिया और हमारे प्राकृतिक संसाधनों का खूब दोहन किया। औद्योगीकरण, बदलती प्रौद्योगिकी, निरक्षरता, आने-जाने की असुविधा आदि ने मिलकर महिलाओं को नई व्यवस्था के मुकाबले पिछड़ा बना दिया। रीति रिवाज, संस्कृति, और धर्म के कारण परम्परागत समाज में बहुत धीरे-धीरे परिवर्तन होता है। सभी जातियों, समुदायें या धर्मों में महिलाओं को लगभग एक सी समस्याओं का सामना करना पड़ता है। एक सामाजिक श्रेणी के रूप में महिलाओं के बीच इन समानताओं के बावजूद भारत की महिलाएं परिवार और धर्म के नियमों से जकड़ी हुई हैं। इसलिए जब हम 21वीं शताब्दी की दहलीज पर खड़े हैं उस समय भी महिलाओं की पहचान एक परिवार या धर्म से जुड़ी है और अभी भी उनकी पहचान धर्म निरपेक्ष राज्य के नागरिक के रूप में नहीं बन सकी है।

जरा सोचिए 1

क्या आप उन सामाजिक-राजनैतिक सन्दर्भों का उल्लेख कर सकते हैं जिसके तहत भारतीय महिलाओं को संवैधानिक सुरक्षा प्रदान की गई है। ये सुरक्षा उपाय क्या है?

5.3 कल्याण से शक्तिकरण की ओर : कुछ रणनीतियाँ

आगे बढ़ने से पहले आइए, हम भारत में सामाजिक विकास रणनीति की बदलती प्रवृत्ति और पंचायती राज्य संस्था पर विचार कर लें।

5.3.1 विकास दृष्टिकोण में परिवर्तन

भारत में सामाजिक विकास रणनीति में लगातार परिवर्तन हो रहा है। जब हमारा देश आजाद हुआ था तब प्रथम पंचवर्षीय योजना की शुरुआत की गई थी। प्रथम पंचवर्षीय योजना में 'स्थायित्व के साथ विकास' पर बल दिया गया था। 70 के दशक में 'न्याय के साथ विकास' की बात होने लगी। गरीबों की गिरती आर्थिक स्थिति और देश के विभिन्न हिस्सों में उठने वाले विरोध के स्वरों ने गरीबों की ओर विकास का रूख मोड़ दिया। 1980 और 1990 के दशक में अर्थव्यवस्था के भूमंडलीकरण और जन आंदोलनों के संदर्भ में एक बार फिर विकास रणनीति परिवर्तित हुई। अब हमारे राष्ट्रीय नेता और नीति निर्माता 'हाशिए पर खड़े लोगों की शक्ति सम्पन्नता के साथ आर्थिक विकास' की बात करने लगे। निश्चित रूप से 'महिलाओं की शक्ति सम्पन्नता' का मुद्दा विकास के केंद्र में आ गया।

अब आप यह जानना चाहेंगे कि शक्ति सम्पन्नता का क्या अर्थ होता है ? शक्ति सम्पन्नता की प्रक्रिया में केंद्रीय बल 'शक्ति' पर है। यह शक्ति अर्जित करने की प्रक्रिया है। परंतु शक्ति कैसे प्राप्त की जा सकती है? क्या मौजूदा शक्ति संरचना को परिवर्तित किए बिना यह स्वतः प्राप्त हो जाएगा? क्या इस शक्ति संरचना को बदलने के लिए कोई वैधानिक तरीका मौजूद है ?

हमारे समाज में कई स्तर हैं। इस समाज में कई तरीकों से महिलाओं का शोषण और दमन होता है। जाति पदानुक्रम में वे सामाजिक रूप से तिरस्कृत हैं और उन्हें निर्णय लेने में हिस्सेदार नहीं बनाया जाता है। वर्गीय दृष्टि से भी वे असमान हैं क्योंकि उनका आर्थिक शोषण किया जाता है, पुरुषों के मुकाबले कम रोजगार दिया जाता है। सांस्कृतिक दृष्टि से भी पुरुषों से उन्हें हेय माना जाता है। उन पर कई तरीकों से शासन किया जाता है। इसलिए समाज की इस दमनात्मक संरचना को बदले बिना समाज में महिलाओं को शक्ति सम्पन्न नहीं बनाया जा सकता है। इस प्रकार के शोषणात्मक सामाजिक और राजनैतिक व्यवस्थाओं को बदलने के लिए संवैधानिक संशोधन निर्णायक भूमिका निभा सकते हैं।

1995 में हुए विश्व विकास सम्मेलन ने दुनिया के सभी राज्यों को यह सुझाव दिया कि वंचित समूहों को शक्ति में हिस्सेदारी देने के लिए एक स्थाई कानूनी ढांचा बनाना चाहिए। इस दिशा में आगे बढ़ते हुए कानून बनाना चाहिए। संवैधानिक संशोधन किए जाने चाहिए और हाशिए पर खड़े समूहों को शक्ति सम्पन्न बनाने के लिए एक स्थाई कानूनी ढांचा बनाना चाहिए।

भारत में कल्याण से विकास, विकास में महिलाओं की भागीदारी और उन्हें शक्ति सम्पन्न बनाने की दिशा में योजनाएं बनाई गईं। संविधान द्वारा महिलाओं को शक्ति सम्पन्न बनाने के लिए कई विकल्प सामने आए। इस दृष्टि से संविधान ने कई आयोगों और समितियों की स्थापना की। 1993 में भारतीय संविधान के 73वें और 74वें संशोधन के द्वारा महिलाओं के लिए पंचायतों और नगर निगमों में स्थान आरक्षित करने का प्रावधान रखा गया जो महिलाओं की शक्ति सम्पन्नता की दिशा में एक बड़ा कदम था। महिलाओं को समानता प्रदान करने के लिए राष्ट्रीय महिला आयोग का निर्माण किया गया।

क्या आप जानते हैं?

कानूनी तौर पर महिलाओं और पुरुषों में कोई असमानता नहीं है और उच्च न्यायालय ने सम्मानजनक जीवन का आश्वासन दिया है। परंतु वास्तविकता यह है कि भैंस से भी आधे दाम में उसे बेचा जा सकता है, अपने शराबी पति को पैसा न देने पर उसे बुरी तरह पीटा जाता है, बेटा न पैदा करने पर उसे घर से निकाल दिया जाता है, दहेज न लाने पर जला दिया जाता है, पुरुष अपनी वासना की पूर्ति के लिए उसके साथ बलात्कार करते हैं और सारा कलंक उसके माथे पर थोप देते हैं। महिलाओं पर पुरुषों की प्रत्येक गलती का आरोप मढ़ दिया जाता है क्योंकि वह लघु ईश्वर की संतान है और समाज में उसकी हैसियत कम है।

1975–1985 का दशक अन्तरराष्ट्रीय महिला दशक के रूप में मनाया गया। इस दौरान महिलाओं की स्थिति सुधारने का प्रयत्न किया गया। इस युग में कुछ नीति संबंधी निर्णय लिए गए। महिला और बाल कल्याण नामक एक नए विभाग का निर्माण किया गया और स्वरोजगार महिला आयोग, राष्ट्रीय महिला आयोग, महिला अपराध प्रकोष्ठ की स्थापना की गई।

भारत में औसत महिलाओं की जिंदगी संवैधानिक आश्वासनों और नियमों द्वारा नहीं बल्कि परम्पराओं, रीति रिवाजों और उल्लिखित आचरण संहिताओं द्वारा परिचालित होता है। इन प्रतिबंधों और बाधाओं के बावजूद भारत में महिलाओं ने अपनी अद्भुत क्षमता का परिचय दिया है और आजादी की लड़ाई के दौरान उन्होंने सक्रिय रूप से राजनैतिक हिस्सेदारी ली है। इसके अलावा उन्होंने किसान आंदोलन, पर्यावरण आंदोलन आदि में भी हिस्सा लिया है। पहले पांच दशकों में महिलाएं ग्रामीण क्षेत्रों में भी सक्रिय रूप से सामने आईं। इस एकजुटता में निम्नलिखित पक्ष स्पष्ट रूप से उभर कर सामने आए हैं :

- महिलाएं अब राजनैतिक दृष्टि से मूक दर्शक नहीं हैं;
- समाज में महिलाओं के खिलाफ हो रहे अत्याचारों का महिलाओं ने खुद संगठित होकर विरोध किया है;
- अवसर मिलने पर उन्होंने यह भी दिखाया है कि वे ग्रामीण समाज में परिवर्तन ला सकती हैं। महिलाओं में राजनैतिक नेतृत्व प्रदान करने की भी पर्याप्त क्षमता है;
- महिलाएं अब समाज में अपने अधिकार के प्रति जागरूक होती जा रही हैं;
- जाति और वर्ग आधारित दमन के विरोध में महिलाएं संगठित होकर सक्रिय हिस्सा लेती हैं क्योंकि इसका परिणाम सबसे ज्यादा उन्हें ही भोगना पड़ता है।

इस बात को सुनिश्चित करने के लिए कि भारत में महिलाओं की राजनैतिक भागीदारी, रीति रिवाजों और परम्पराओं पर आधारित न होकर संवैधानिक आश्वासनों पर है स्थानीय स्तर पर महिलाओं की राजनैतिक हिस्सेदारी को सुनिश्चित करने के लिए हाल के वर्षों में कुछ महत्वपूर्ण संवैधानिक संशोधन किए गए हैं। आइए, इस पर एक नजर डाली जाए।

5.3.2 पंचायती राज और संवैधानिक संशोधन

1950 में भारत का संविधान बनाया गया था। इसमें (अनुच्छेद 40) में कहा गया था कि "राज्य ग्रामीण पंचायतों को संगठित करने के लिए कदम उठाएगा और स्वशासन की इकाई के रूप में विकसित करने के लिए उन्हें जरूरी शक्तियां और सत्ता प्रदान करेगा।"

प्रशिक्षण का दृश्य : उत्तरदायित्व की समझ

सौजन्य : आशा मिश्रा, भोपाल

73वें संशोधन अधिनियम के प्रावधान इस प्रकार हैं:

- महिलाओं के लिए कम से कम दो तिहाई स्थान आरक्षित करना होगा (अनुसूचित जाति और अनुसूचित जनजाति सहित और पंचायतों के विभिन्न क्षेत्रों में इसे बारी-बारी से आवंटित किया जाएगा)।
- क्षेत्र की कुल जनसंख्या और अनुसूचित जाति और अनुसूचित जनजाति की कुल जनसंख्या के अनुपात के अनुसार अनुसूचित जाति और अनुसूचित जनजाति के लिए स्थानों का आरक्षण किया जाएगा।
- अनुसूचित जाति और अनुसूचित जनजाति के लिए आवंटित जगहों में से कम से कम एक तिहाई जगहें महिलाओं के लिए आरक्षित होंगी।
- इसके अलावा इसमें कुछ अन्य विशेषाधिकार भी हैं जिसका लाभ महिलाएं उठा सकती हैं जैसे स्थानीय और मझोले स्तर (प्रखंड) पर सदस्यता और सरपंच के पदों के लिए सीधा चुनाव।
- पिछड़े वर्गों के सदस्यों के लिए अध्यक्ष पद को आरक्षित किए जाने या सदस्यता के लिए आरक्षण करना राज्य सरकार पर छोड़ दिया गया।

24 अप्रैल 1993 को 73वें संविधान संशोधन के तहत सभी राज्यों को अपने विधान में एक वर्ष के भीतर संशोधन करने का निर्देश दिया गया।

सभी राज्यों ने 23 अप्रैल 1994 तक इस आदेश का पालन किया और पंचायत विधान लागू कर दिया।

5.3.3 पंचायती राज संस्थान में बदलता परिदृश्य

हाल के संशोधनों से महिलाओं की राजनीतिक भागीदारी में कई प्रकार के परिवर्तन हुए हैं। पंचायती राज संस्थान द्वारा प्रशासनिक और राजनैतिक व्यवस्था में महिलाओं के समावेश से काफी फर्क पड़ता है। राजनैतिक गतिविधियों के विभिन्न स्तरों पर महिलाओं का प्रतिशत 4-5% से बढ़कर 25 से 40% हो गया। यह अन्तर गुणात्मक भी है। महिलाएं नागरिक समाज से लेकर राज्य सरकार तक अपने अनुभवों का उपयोग कर रही हैं। इस प्रकार वे राज्य को निर्धनता, असमानता और स्त्री-पुरुष असमानता के न्याय जैसे मुद्दों के प्रति राज्य को सचेत कर रही हैं।

पंचायती राज संस्थान के बाद महिलाओं का अपने बारे में सोचने का नजरिया बिलकुल बदल गया।

पंचायती राज संस्थान से बहुत सारी महिलाओं को राजनीति के कामकाज और राजनैतिक दलों के महत्व को समझने में मदद मिली।

ग्राम पंचायतों में महिलाओं के 33% आरक्षण से महिलाओं को अपने सामाजिक मुद्दों को अपने ही नजरिए से देखने का मौका मिला। मध्य प्रदेश के एक गांव के एक सरपंच के दृष्टिकोण से यह बात साफ झलकती है: 'आजादी मिलने के 50 वर्ष बाद भी हमारे क्षेत्र में बाल विवाह नहीं रूक पाया है। बच्चे को जन्म देते समय बच्चे के पिता का नहीं बल्कि बच्चे की माता का देहान्त होता है। आजादी के 50 वर्ष बाद भी गांव में न तो कोई अस्पताल है और न ही कोई प्रसूति गृह। गांव का पुरुष वर्ग प्रसूति गृह का महत्व ही नहीं समझता। उन्हें तो यह मालूम ही नहीं कि बच्चे होने में कितना दर्द होता है.....''

सरपंच ने इस गांव में बाल विवाह पर रोक लगा दी और गांव में प्रसूति गृह बनाने के लिए चंदा करके 12 लाख रुपए जमा किए।

क्या आप जानते हैं ?

औपचारिक राजनीति में प्रवेश करने वाली 3,30,000 महिलाओं ने सार्वभौम वयस्क मताधिकार के जरिए चुनाव जीता और वह स्थानीय परिषद की सदस्य बनीं। दक्षिणी राज्य कर्नाटक में 1983 में एक कानून पारित किया गया। इसमें एक नियम बनाया गया कि स्थानीय परिषद की 25% जगहें महिलाओं के लिए आरक्षित कर दी जाएं। मई 1987 में जनता दल (जीतने वाला दल) ने सभी 56,000 चुने गए प्रतिनिधियों का सम्मेलन बुलाया जिसमें 14,000 (25 %) महिलाएं थीं। सभी 14,000 महिलाएं इस सम्मेलन में उपस्थित थीं। इसके क्या मतलब चलता है?

पंचायती राज संस्थान की सफलता इस बात में निहित थी कि महिलाएं राज्य को भीतर से बदल दें। स्थानीय स्तर पर कार्य कर रहे नेतृत्व को राज्य नेतृत्व तक पहुंचाने की दिशा में यह पहला कदम था। अनेक लोगों का मानना था कि इससे समतावादी, जन केंद्रित विकास संभव हो सकेगा।

संख्या की दृष्टि से कर्नाटक में महिला प्रतिनिधियों का प्रतिशत सबसे ज्यादा है। यहां स्थानीय निकायों में 46.4% महिलाओं की हिस्सेदारी है। पश्चिम बंगाल में 35% और हरियाणा में 33.17% महिलाओं की स्थानीय निकायों में हिस्सेदारी है। सब मिलाकर ग्राम स्तर, प्रखंड समिति स्तर और जिलों में जिला परिषद में 10 लाख महिलाएं शामिल हैं। चुने हुए प्रतिनिधियों की गतिविधियों से यह पता चलता है कि जमींनी स्तर की जनतांत्रिक संस्थाओं में महिलाओं का प्रवेश ग्रामीण समाज के सामाजिक राजनैतिक ढांचे में परिवर्तन का एक शुभ लक्षण है।

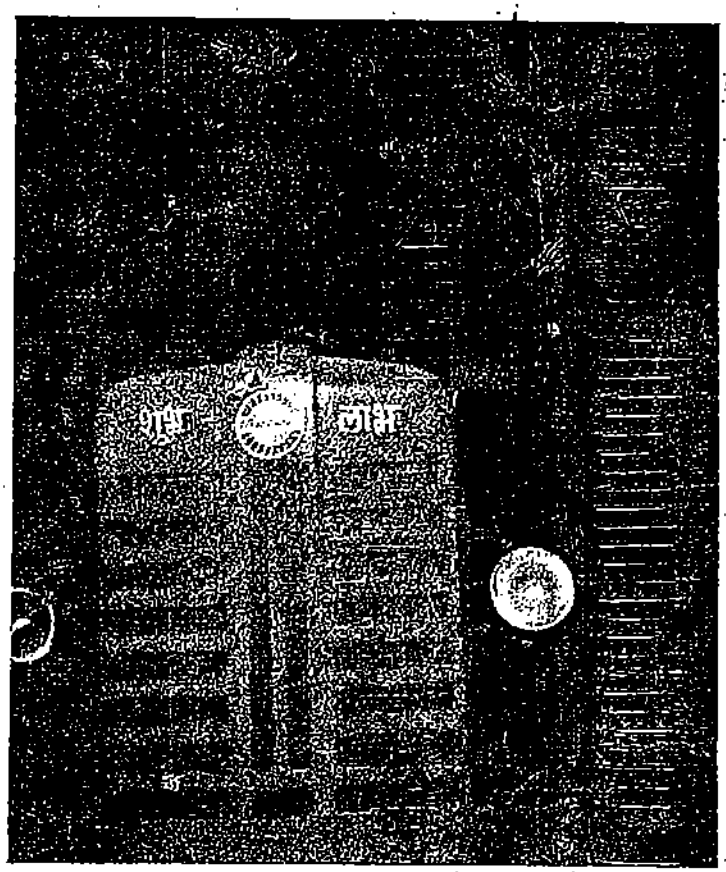

बढ़ता विश्वास, शिवकन्या बाई सरपंच, बोरोड़िया, म.प्र.

सौजन्य : देबल के. सिंहराय, इग्नू

कुल मिलकार यह एक आशावादी दृष्टिकोण है। हाल के अध्ययनों से यह पता चला है कि पंचायतों में महिलाओं के लिए आरक्षण कर दिए जाने के बावजूद महिला सरपंचों को काफी मुश्किलों का सामना करना पड़ता है। उन्हें रोजमर्रा के कामों में भी काफी कठिनाइयों का सामना करना पड़ता है।

प्रशासन भी उसके प्रति असंवेदनशील होता है, नौकरशाही भी उसके खिलाफ हो सकती है। पुरुष की शत्रुता तो उसे पग-पग पर झेलनी पड़ती है। अगर कोई दलित महिला सरपंच या कार्यकर्ता है तो उसे उच्च जाति के लोग बहुत सताते हैं। दलित महिला सरपंच को सामाजिक रूढ़ियों का सामना करना पड़ता है। ग्राम के संभ्रान्त जन दलित परिवारों को रोजगार देने से इनकार कर सकते हैं। उन पर यौन अत्याचार किया जाता है, बलात्कार किया जाता है और कभी-कभी उनकी हत्या भी कर दी जाती है। इन सबको देखते हुए हमारे समाज में मौजूद जाति वर्ग और स्त्री-पुरुष भेदभाव के असमान ढांचे का होना कोई आश्चर्य की बात नहीं है।

अनुभव से सीखिए 1

अपने क्षेत्र की महिला सरपंचों से बातचीत कीजिए। उनसे यह जानने की कोशिश कीजिए कि 'सरपंच' के रूप में कार्य करते वक्त उन्हें किन कठिनाइयों का सामना करना पड़ता है।

5.4 आरक्षण के जरिए महिलाओं का शक्तिकरण

1996 की चुनावी घोषणाओं में लगभग सभी दलों ने महिलाओं के लिए स्थान के आरक्षण की बात कही थी इसके बावजूद कांग्रेस ने 530 उम्मीदवारों में से केवल 49 महिलाओं को चुनाव में टिकट

दिया। भारतीय जनता पार्टी ने 477 में से 23, भारतीय कम्युनिस्ट पार्टी ने 43 में से 4, भारतीय कम्युनिस्ट पार्टी ने (M)] 77 में से 5 जगहें महिलाओं को दीं। पिछले चुनावों में यह संख्या और भी कम थी।

जनता दल ने महिलाओं का पक्षधर होने का स्वांग रचा परंतु उसके 15 सदस्यीय राजनीतिक मामले की समिति में एक भी महिला सदस्य नहीं थी। जब 1996 में संयुक्त मोर्चे की सरकार बनी तब संचालन समिति में एक भी महिला सदस्य नहीं शामिल की गईं। अभी तक प्रमुख राजनैतिक दलों ने महिलाओं के प्रति अपने रवैये में बहुत कम परिवर्तन किया है। अभी निर्णय समितियां और जनतांत्रिक प्रशासन व्यवस्था में उन्हें सार्थक भूमिका देने की दिशा में बहुत कम प्रयास किए गए हैं। दिल्ली विश्वविद्यालय के महिला अध्ययन में 80 महिला राजनीतिज्ञों का अध्ययन किया गया जिसमें 56 राष्ट्रीय स्तर की, 14 राज्य स्तर की (उत्तर प्रदेश) और 8 जिला स्तर (गाजियाबाद) की नेता शामिल थीं। इस अध्ययन में इस बात पर बल दिया है कि समाज में महिलाओं को शक्ति सम्पन्न बनाने के लिए आरक्षण की आवश्यकता है। यह पूछे जाने पर कि महिलाओं को दलों में इतना कम महत्व क्यों दिया गया, 72.5 प्रतिशत महिलाओं ने यह जवाब माना कि उनके साथ स्त्री-पुरुष संबंधी भेदभाव अपनाया जाता है और इसका रास्ता संसद में महिलाओं के आरक्षण के सिवा कुछ नहीं है।

कई नेताओं ने यह बात सामने रखी है कि आरक्षण महिलाओं को शक्ति सम्पन्न बनाने का प्रमुख जरिया है। यदि विधेयक को कानून में बदल दिया गया तो महिलाएं बहुत ही प्रभावी ढंग से राजनैतिक प्रक्रिया, निर्णय लेने की प्रक्रिया में हिस्सा ले सकेंगी और स्त्री पुरुष समानता की दिशा में महत्वपूर्ण कदम आगे बढ़ाएंगी। महिला समूहों और कार्यकर्ताओं ने यह तर्क दिया कि यदि उन्हें संसद और राज्य विधान सभाओं में पर्याप्त प्रतिनिधित्व मिल जाए तो उनके लिए अधिक प्रगतिशील कानून बनाने में कोई दिक्कत नहीं होगी। वे उन व्यक्तिगत कानूनों को बदल देंगी जो उनके प्रति भेदभाव रखते हैं। इसके अलावा वे उन कानूनों को भी लागू करवा सकेंगी जो उनके भलाई के लिए बने हैं। भारत के अधिकांश प्रगतिशील नेताओं का यह मानना है कि महिलाओं को निर्णय में शामिल करने के लिए यह जरूरी है कि उनके लिए आरक्षण किया जाए। इसके बाद ही महिलाएं सामाजिक न्याय, और स्त्री-पुरुष समानता की दिशा में प्रभावी रूप में कार्य कर सकती हैं।

5.4.1 भारत में महिलाओं का राजनैतिक प्रतिनिधित्व

आइए, कुछ महत्वपूर्ण तथ्यों की जांच की जाए :

1946 - संविधान सभा के 150 सदस्यों में से 16 सदस्य महिलाएं थीं।

1957 - पहली बार जब पंचायती राज की शुरुआत हुई थी तब दो महिलाओं को मनोनीत करने का प्रावधान रखा गया था जिन्हें महिलाओं और बच्चों के बीच काम करना था (बलवंत राय मेहता समिति रिपोर्ट)।

1961 - महाराष्ट्र जिला परिषद और पंचायत समिति अधिनियम 1961 के अनुसार यदि एक भी महिला चुनाव जीतकर नहीं आई तो पंचायत में "एक या दो महिला का मनोनयन किया जाएगा"।

1973 - पश्चिम बंगाल पंचायत अधिनियम में दो महिला सदस्य के मनोनयन का प्रावधान था।

1976 - महिला प्रतिष्ठा समिति की रिपोर्ट में पंचायतों में महिलाओं के प्रतिनिधित्व और ग्रामीण स्तर पर अखिल भारतीय पंचायत की स्थापना की मांग की।

1978 - महाराष्ट्र पंचायत में केवल 6% महिलाएं चुनी गई। हालांकि 314 महिलाओं को मनोनीत किया गया। भारत के अधिकांश हिस्सों में महिलाओं को मनोनीत कर पंचायत में शामिल किया गया।

1983 - कर्नाटक के जिला परिषद, ताल्लुक पंचायत समिति और मंडल पंचायत में न्याय पंचायत अधिनियम के अन्तर्गत 25% जगहें महिलाओं के लिए आरक्षित की गईं। कई कारणों से इस अधिनियम

के तहत चुनाव होने में बिलम्ब हुआ और 1987 में जाकर ही चुनाव सम्पन्न हो सका। 30,000 उम्मीदवारों ने चुनाव लड़ा जिसमें 14,000 महिलाएं चुनी गईं।

1988 - उत्तर प्रदेश के 74,000 ग्राम सभाओं के लिए चुनाव कराए गए। यहां केवल एक महिला के मनोनयन का प्रावधान रखा गया। पंचायत चुनाव में एक प्रतिशत से भी कम महिलाएं चुनाव जीत पाईं।

1991 - उड़ीसा पंचायत समिति ने कम से कम एक तिहाई महिलाओं के लिए जगहें आरक्षित कर दीं। 1992 में चुनाव हुए और 22,000 महिलाएं चुनी गईं।

केरल जिला परिषदों के चुनाव में महिलाओं के लिए 30% जगहें आरक्षित की जबकि महिलाओं ने 35% जगहें जीतीं।

1993 - लगभग 71, 000 महिला उम्मीदवारों ने चुनाव लड़ा। उनके लिए 33% जगहें आरक्षित थीं। 24,900 महिलाएं मतदान के द्वारा चुनी गईं।

1994 - मध्य प्रदेश में गांव, प्रखंड और जिला पंचायतों में 150,000 महिलाएं चुनी गईं।

5.4.2 लोक सभा में महिलाएं

1952-1998 के लोकसभा चुनावों में महिलाओं का प्रतिनिधित्व

वर्ष	जगहें	महिला सांसद	प्रतिशत
1952	499	22	4.4
1957	500	27	5.4
1962	503	34	6.8
1967	523	31	5.9
1971	521	22	4.2
1977	544	19	3.4
1980	544	28	7.9
1984	544	44	8.1
1989	517	27	5.3
1991	544	39	7.2
1996	543	39	7.2
1998	543	44	8.0

स्रोत : सीएसडीएस डाटा यूनिट

जरा सोचिए 2

क्या हाल के वर्षों में पंचायती राज संस्थाओं में महिलाओं की राजनैतिक भागीदारी में कोई बढ़ोत्तरी हुई है? इस परिवर्तन में किन कारकों का प्रमुख योगदान है ?

5.5 महिलाओं का आरक्षण बिल

महिलाओं की शक्ति सम्पन्नता के बारे में बातचीत करते समय महिला आरक्षण विधेयक पर बात न करें तो बात अधूरी रह जाएगी। यहां एक मूल प्रश्न यह है कि क्या केवल आरक्षण कर देने से महिलाएं शक्तिशाली हो जाएंगी? अभी संसद में केवल 18 महिलाएं और संसद के बाहर 500 मिलियन महिलाएं हैं; क्या आरक्षण इसका हल है ?

5,5.1 पाठ और संदर्भ

आरक्षण आंदोलन के समर्थकों का यह मानना है कि महिला आरक्षण विधेयक का मूल उद्देश्य प्रजातंत्र को वास्तविकता के और करीब लाना है। आरक्षण महिला आंदोलन का साध्य नहीं बल्कि साधन है। यह भारतीय परम्परागत समाज को बदलने का एक जरिया है। इसके जरिए भारत के पुरुषों को यह बताया जा सकेगा कि महिलाओं का दायित्व घर की चारदीवारी के भीतर ही नहीं बल्कि नीति निर्माता और पेशेवर के रूप में भी उनकी अहम भूमिका है।

पंचायतों और नगर निगमों में एक तिहाई आरक्षण का प्रावधान शक्ति सम्पन्नता की दृष्टि से एक स्वागत योग्य कदम है। पंचायती स्तरों के अनुभवों से यह पता चलता है कि अधिक से अधिक महिलाएं निर्णय लेने वाले निकायों में शामिल हुई हैं और उन्होंने ग्राम पंचायत के काम-काज में गुणात्मक परिवर्तन कर दिया है।

संसद में महिलाओं के लिए 33% आरक्षण महिलाओं के उत्थान की दिशा में एक बढ़ा हुआ कदम हैं। यह उन्हें शक्तिमान बना सकेगा। यह केवल शक्ति प्रदान करने का ही प्रयास नहीं है बल्कि इसके द्वारा लोगों को जागरूक करना है और यह परिवर्तन का एक प्रभावी माध्यम भी हो सकता है।

संवैधानिक संशोधन विधेयक (अनुच्छेद 330 (A) के अनुच्छेद 81 (अब अनुच्छेद 84) में लोक सभा और राज्य विधान सभाओं में महिलाओं के लिए 33 प्रतिशत आरक्षण का प्रावधान रखा गया है जिसे कई बार टाला जा चुका है। पहली बार 12 सितम्बर, 1996 को यह विधेयक रखा गया था परंतु इस पर बहस न हो सकी। इसे दूसरे दिन तुरंत संयुक्त चुनाव समिति को सौंप दिया गया। इसमें सबसे प्रमुख आपत्ति यह की गई कि इसमें अल्पसंख्यक समूहों खासकर अन्य पिछड़े वर्गों की महिलाओं को स्थान नहीं दिया गया था। पुन: 20 जुलाई को इसे सदन के पटल पर रखा जाना था परंतु ऐसा नहीं किया गया।

> क्या आप जानते हैं? 3
>
> महिलाओं की भलाई के लिए कानून बनाना आसान नहीं है। इसके लिए उदाहरण ढूंढने की जरूरत नहीं है। पूर्व प्रसव जांच तकनीक नियमन और दुरूपयोग रोकथाम अधिनियम 1991 में पेश किया गया और बहुत मुश्किल से 1994 में पारित हो सका। इसी प्रकार जीवन यापन अधिनियम में संशोधन तीन साल पहले पेश किया गया था परंतु अभी भी इसे स्वीकृति नहीं मिल पाई है।

दहेज विरोधी विधेयक को चार साल और बलात्कार के खिलाफ कानून बनाने में तीन साल लगे। विभिन्न महिला समूहों के दबाव के बावजूद दीवानी कानूनों, फौजदारी कानूनों, प्रमाणन अधिनियम के महिला विरोधी प्रावधानों को बदला नहीं जा सका है। परंतु 73वें और 74वें संशोधनों में जब 1992 में महिलाओं को स्थानीय निकायों में 33 प्रतिशत आरक्षण दिया गया। तब हाल के आरक्षण विधेयक जैसा विरोध नहीं हुआ था।

दहेज विरोधी विधेयक के संशोधन में 4 वर्ष, और बलत्कार विरोधी कानून के संशोधन में तीन वर्ष लगे। विभिन्न महिला समूहों के लगातार दबाव के बावजूद दीवानी कानूनों, फैजदारी प्रक्रियाओं और प्रमाण अधिनियम के असमान प्रावधानों को संशोधित नही किया जा सका है। हालांकि 73वें और 74वें संशोधन के द्वारा 1992 में अधिनियम बनाकर स्थानीय निकायों में महिलाओं को प्रतिनिधित्व दिया गया परंतु आरक्षण विधेयक के समान उसका विरोध नहीं हुआ था।

संसद और विधान सभाओं में महिलाओं के लिए 33 प्रतिशत मतों का आरक्षण हो जाने से इनके संघटन में क्रांतिकारी परिवर्तन आ जाएगा।

विधेयक की कुछ महत्वपूर्ण विशेषताएं

- लोक सभा और विधान सभाओं में महिलाओं के लिए 33% जगहों का आरक्षण;
- इनमें से एक तिहाई जगहें अनुसूचित जाति और अनुसूचित जनजाति की महिलाओं के लिए आरक्षित;
- इसे पारित करने वाले सदन या विधान सभा के भंग होने के बाद इसे लागू किया जाना;
- 181 लोक सभा क्षेत्रों में लौटरी निकालकर स्थान को बदला जाना;
- यह विधेयक उन राज्यों/ संघ क्षेत्रों में लागू नहीं होगा जहां अनुसूचित जाति और अनुसूचित जनजाति के लिए आरक्षित स्थान तीन से भी कम हैं। इस प्रकार 10 राज्यों/संघ शासित क्षेत्रों पर यह लागू नहीं होंगे।

5.5.2 बहस की एक झलक

इस बिल ने राजनैतिक दलों, नेताओं, कार्यकर्ताओं और सामाजिक कार्यकताओं के बीच स्पष्ट विभाजन कर दिया। उनमें से कई लोगों ने, खासकर, महिला सांसद कार्यकर्ता और पेशेवरों ने विधेयक का समर्थन किया और इस बात पर बल दिया कि स्त्री-पुरुष भेदभाव के खिलाफ संघर्ष को मजबूत करने के लिए यह जरूरी है। कुछ लोगों का यह भी कहना है कि इन निकायों में चुनाव योग्यता के आधार पर होना चाहिए।

परम्परागत रूप से कुछ महिला समूहों को आरक्षण से परहेज था। उनका मानना था कि महिलाओं को आरक्षण देने से उनकी समस्याओं का हल नहीं होगा। यह समस्याओं का कृत्रिम निदान है और यह मूल रूप से कुछ लोगों के हितों की पूर्ति करता है। उनका यह मानना था कि आरक्षण को स्वीकार किया जाना महिलाओं की कमजोरी को दर्शाता है। महिलाएं खुद एक ओर समानता की मांग करती हैं और दूसरी ओर योग्यता को आधार न मानकर आरक्षण को आधार बना रही हैं।

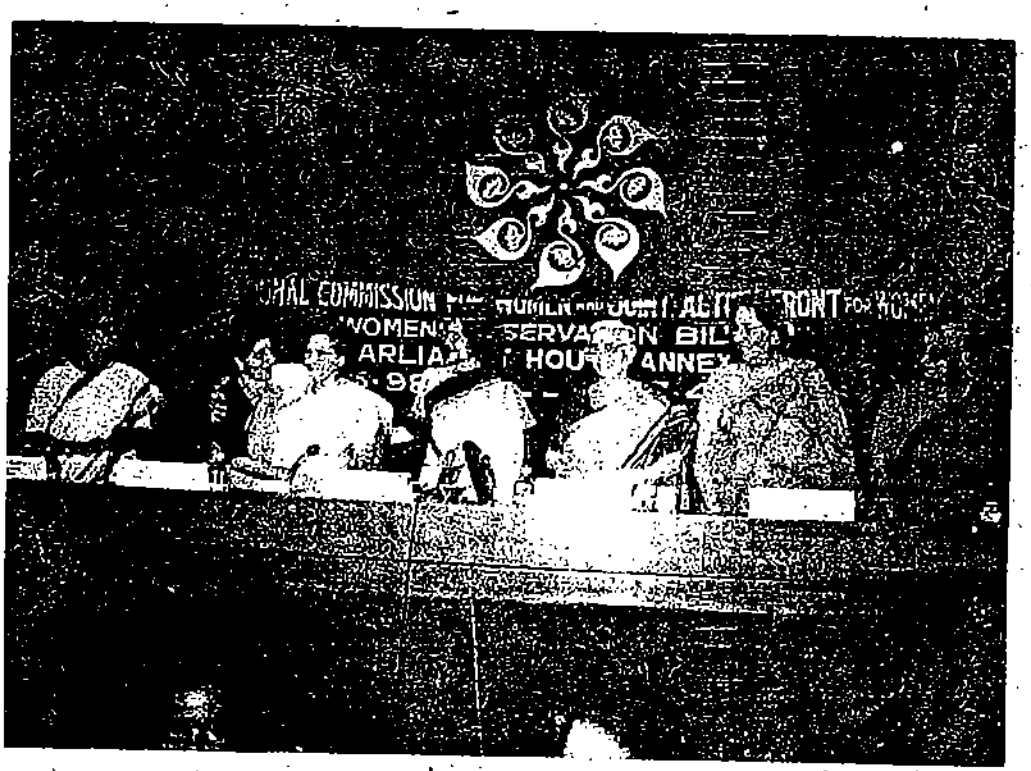

हम अपना हिस्सा मांगेंगे

सौजन्य : सी.एस.आर., नई दिल्ली

मार्क्सवादी कम्युनिस्ट पार्टी की बृंदा कारंत कहती हैं कि "1988 तक हम संसद में महिलाओं के आरक्षण के विरोधी थे। सबसे पहले हम यह देखना चाहते थे कि पंचायत स्तर पर इसका क्या असर पड़ता है। जब इस आरक्षण में एक लाख से भी अधिक महिलाएं शामिल हुईं तब हमलोगों ने यह सोचा कि संसद और राज्य विधान सभाओं में महिलाओं के कम प्रतिनिधित्व को इस उपाय से ठीक किया जा सकता है।''

महिला अधिकारों के लिए लड़ने वाली भारतीय नेता विमला फारूकी कहती हैं "हम यह चाहते थे कि महिलाएं पुरुषों के साथ खुली प्रतियोगिता में सामने आएं इसलिए हमने आरंभ में आरक्षण का विरोध किया था। परंतु हमने पाया कि कोई भी दल चाहे वह कितना भी प्रगतिशील क्यों न हो महिलाओं को चुनाव में प्रतिनिधित्व देने से हिचकिचाता है। आरक्षण लागू कर देने से उन्हें मजबूर होकर चुनाव का टिकट देना पड़ेगा और जिसके फलस्वरूप महिलाओं की हिस्सेदारी बड़े पैमाने पर बढ़ेगी। इससे धीरे-धीरे ही सही परंतु नेतृत्व की मनोवृत्ति में परिवर्तन आएगा। भूतपूर्व कांग्रेस मंत्री शैलजा मानती हैं कि अधिकांश महिलाओं को 'परिवार' (पत्नी/पुत्री/बहन/विधवा) के कारण प्रतिनिधित्व मिला है।

महिलाओं को शक्ति सम्पन्न बनाने के लिए आरक्षण एक साधन है। संवैधानिक प्रावधानों के द्वारा ही यह आरक्षण प्रदान किया जा सकता है। परंतु यदि इसमें भी पारिवारिक संबंधों के आधार पर ही आरक्षण दिया जाएगा तो इसकी सफलता पर प्रश्न चिन्ह लग जाएगा।

कारंत का मानना था कि आरक्षण को 'ब्रह्मास्त्र' नहीं माना जा सकता, यह सभी समस्याओं को नहीं सुलझा सकता। हालांकि इसके द्वारा स्त्री-पुरुष असमानता और असंतुलन को काफी हद तक कम किया जा सकता है परंतु महिलाओं के सार्वजनिक जीवन में प्रवेश से सामाजिक परिवर्तन आएगा। आरक्षण महिलाओं की हरेक समस्या का समाधान नहीं है बल्कि बड़ी लड़ाई के लिए एक साधन मात्र है।

इसके लिए और बड़े पैमाने पर रणनीति तैयार करने की जरूरत है। यदि संसद सदस्य और उनके दल संशोधन के पक्ष में नहीं हैं तो उनके संसदीय क्षेत्र से इस बात के लिए दबाव आना चाहिए कि वे इसका समर्थन करने के लिए मजबूर हैं। इसका मतलब यह है कि बहस को राज्य और जिलों तक ले जाना होगा। अप्रैल 1993 में 73वें और 74वें संशोधन के द्वारा स्थानीय सरकारों में महिलाओं के लिए 33% स्थान आरक्षित कर दिया गया।

इसी सफलता या इसके कार्यान्वयन के बाद ही 81वें संशोधन की बात सामने आई। 73वें संशोधन में ग्रामक्षेत्र पंचायत और 74वें संशोधन का संबंध नगर पालिका में आरक्षण से है। 81वें संशोधन का आधार मजबूत है। निचले स्तर पर (जो लागू किया जा चुका हो) प्रजातंत्र तभी सफल हो सकता है जब ऊपरी स्तरों पर प्रातिनिधिक प्रजातंत्र हो।

आरक्षण होने से रातों रात कोई परिवर्तन होने से चमत्कार नहीं हो जाएगा। यह एक सही दिशा में बढ़ा हुआ कदम है जो उसी दिशा में बढ़े अगले कदम का एक हिस्सा है। आरक्षण के आधार पर चुनी गई महिलाओं को अपने मतदाताओं के प्रति जवाबदेह होना होगा। महिला समूह प्रगतिशील संगठन, गैर सरकारी संगठन, जिम्मेदार नागरिक, महिला नेताओं और विधायकों की सहायता तथा समर्थन के लिए तैयार हैं।

महिलाएं अपनी नई जिम्मेदारी स्वीकार कर सकती हैं और इसमें उनके परिवार, समुदाय और राज्य से सहयोग तथा समर्थन भी प्राप्त करना होगा। परंतु घरेलू महिला की परम्परागत भूमिका को बदले बिना ऐसा करना संभव नहीं है जिसमें काफी समय और ऊर्जा खप जाती है। पुरुषों और समुदायों को इसमें हिस्सेदारी करनी होगी। अत: नया विधान महिलाओं और पुरुषों के लिए चुनौती होगा और इससे कई नए-नए अवसर सामने आएंगे।

इसके साथ-साथ इस बात का विचारपूर्वक प्रयत्न करना होगा कि प्रत्येक स्तर पर महिलाओं और

पुरुषों के समाजीकरण में परिवर्तन आए। महिलाओं को यह विश्वास करना होगा कि वे भारत के राजनैतिक जीवन में हिस्सा ले सकती हैं और योगदान दे सकती हैं। इसके लिए उन्हें उपयुक्त कौशल हासिल करना होगा। पुरुषों को यह समझना होगा कि महिलाओं को इन अवसरों से वंचित रखा गया है। परंतु वे नीतियों और कार्यक्रमों की सहायता से इसे बदल सकती हैं।

न्यायमूर्ति खन्ना का मानना है कि इस विधेयक का उस हद तक समर्थन किया जाना चाहिए जिस हद तक यह उन्हें शोषण के जुए को फेंकने, शिक्षित और आर्थिक रूप से स्वतंत्र होने में मदद करता है। "परंतु जिस ढंग से यह किया जा रहा है वह सही नहीं है। महिलाओं को सीधे उच्च राजनैतिक व्यवस्था में शामिल करने से व्यवस्था एकांगी हो जाएगी और उसमें असंतुलन पैदा हो जाएगा"। दूसरी ओर न्यायमूर्ति वी. आर. कृष्ण अय्यर का मानना है कि "राजनैतिक शक्तिकरण प्रदान कर ही महिलाओं को ऊपर उठाया जा सकता है। सामाजिक और आर्थिक शक्ति सम्पन्नता के साथ राजनैतिक शक्ति सम्पन्नता की शुरुआत होती है। स्त्री पुरुष समानता और न्याय के लिए महिलाओं को आरक्षण देना जरूरी है"।

भारत के सर्वोच्च न्यायालय के भूतपूर्व मुख्य न्यायाधीश न्यायमूर्ति पी.एन.भगवती के अनुसार "महिलाएं समाज का सबसे कमजोर वर्ग हैं। उन्हें जगाना होगा। पूरी दुनिया में शक्ति संरचना में महिलाओं का प्रतिनिधित्व सबसे कम है। उन्हें सरकार में पर्याप्त हिस्सा नहीं प्राप्त हुआ है" यह उनके अनुसार विधेयक एक सही दिशा में उठाया गया कदम है। इससे महिलाओं को संसद और विधान सभाओं में कम से कम 30% स्थान प्राप्त हो सकेगा।

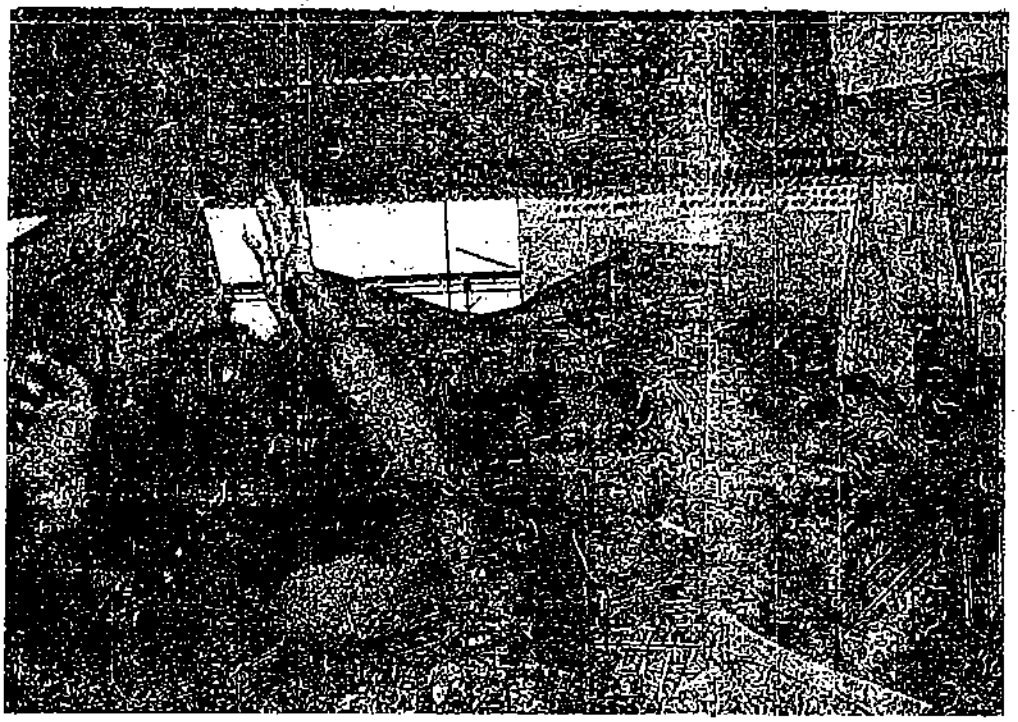

स्त्री-पुरुष न्याय के लिए आरक्षण

सौजन्य : सी.एस.आर., नई दिल्ली

विधेयक का उद्देश्य समाज में व्याप्त स्त्री-पुरुष समानता और भेदभाव को समाप्त करना तथा महिलाओं को न्याय दिलवाना है। इसे सबसे पहले 12 सितम्बर 1996 को संसद के पटल पर रखा गया था। इसके बाद देश में इसके खिलाफ प्रदर्शन या जन सभाएं नहीं हुईं। आमतौर पर लोग इसे अच्छा कदम मानते हैं। उनका मानना है कि संसद महिलाओं को राजनैतिक संस्थाओं में बराबर का भागीदार बनाकर एक छोटी सी शुरुआत कर सकता है।

5.5.3 संभावित परिणाम

महिलाओं को आरक्षण देने से बड़ी संख्या में महिलाएं सार्वजनिक जीवन में साथ-साथ शामिल हो सकीं। इससे निस्संदेह सामाजिक दृष्टिकोण में परिवर्तन होगा और लोग उसे पुरुष के पिछलग्गू के रूप में देखना बंद करेंगे। इससे स्वतंत्र नागरिक के रूप में महिलाओं के अधिकार को स्थापित करने में मदद मिलेगी।

हमारी राजनैतिक व्यवस्था की सभी बुराइयों को दूर करना महिला आरक्षण विधेयक का उद्देश्य नहीं है। इसका उद्देश्य विधायकों में महिलाओं और पुरुषों के बीच की बड़ी असमानता को कम करना है। इस असमानता को कम करने से जनतांत्रिक प्रक्रिया मजबूत होगी और पुरुषों तथा महिलाओं सबको इससे लाभ होगा।

33% आरक्षण का अर्थ यह है कि 170 से भी ज्यादा महिला संसदों को लोक सभा में स्थान देना होगा। आज महिला सदस्य मुखर नहीं हैं और पुरुषों की इच्छाओं के अनुसार उनको चलना पड़ता है। यदि अपवादों को छोड़ दें तो नीति के निर्माण में उनकी भूमिका नगण्य है। लेकिन जिस प्रकार कुछ महिलाएं एकजुट होकर महिला विधेयक लेकर सामने आई हैं उसी प्रकार 170 महिलाओं के सरोकारों, स्त्री-पुरुष भेदभाव से संबंधित न्याय, मानवाधिकार और अन्य ऐसे मुद्दों पर कुछ न कुछ करने के लिए होगा क्योंकि इन मुद्दों पर सामान्यत: महिलाएं पुरुष से ज्यादा संवेदनाशील होती हैं। धीरे-धीरे पुरुषों के संरक्षण के बिना काम करने वाली कुछ महिलाएं अपने दलों पर यह दबाव डालेंगी कि संसद और विधान सभाओं में प्रमुख भूमिका निभाने वाली और अपने चुनाव क्षेत्र में काम करने वाली महिलाओं को टिकट दिया जाए। इस संगठन पर कब्जा जमा वाले नि:स्वार्थी लोगों को निश्चित रूप से दीर्घावधि में चुनौती दी जाएगी, यह तुरंत नहीं हो सकता है परंतु जैसे ही महिलाओं को अपनी शक्ति का आभास होने लगेगा वैसे ही वे व्यवस्था को चुनौती देने लगेंगी।

ऐसा हो भी रहा है और यह उत्तर प्रदेश के दूर दराज के ऐसे गांवों में हो रहा है जहां महिलाओं के अधिकार का कोई अर्थ नहीं है। कई महिलाएं प्रधान पुरुषों की इच्छा के अनुसार काम करती हैं परंतु कुछ महिलाएं अपनी बात कहने और मनवाने की कोशिश भी करती हैं। चुनावों के दौरान उत्तर प्रदेश के गांव-गांव घूमने से यह पता चलता है कि वहां कई महिला प्रधान दृढ़ता से अपना कार्य कर रही हैं। एक गांव में एक बूढ़ी महिला का चुनाव हुआ था। उसका पति उसके आस पास था परंतु वह अपनी बात कह रही थी और प्राधिकार को दृढ़ता से सामने रख रही थी। अब ऐसा होना शुरू हो गया है। वह एक चुनाव गोष्ठी में एक चबूतरे पर बैठी थी। उसने एक उम्मीदवार के समर्थन में भाषण दिया और उस उम्मीदवार को पूरे गांव में घूमाने की बात जोर देकर कही। यह देखकर आश्चर्य हुआ कि आस पास का कोई भी व्यक्ति उसके अधिकार को चुनौती नहीं दे रहा था। वह एक बूढ़ी मुसलमान महिला थी जिसको अपने आप पर विश्वास था। दूसरे गांव में भी महिलाओं को यह कहते सुना गया कि उनकी प्रधान एक महिला है। गांव की महिलाएं बड़े गर्व के साथ कच्चे मिट्टी के रास्तों को दिखाते हुए कह रही थीं कि इन सड़कों की मरम्मत होगी और जल्द ही हमें एक पक्की सड़क मिल जाएगी। आप जानते हैं, हमारी प्रधान एक महिला है। यहां बात एक युवा सक्रिय हिन्दू महिला की बात हो रही थी जिसे खुद पर विश्वास था और जो अपनी प्रतिष्ठा और मान मर्यादा को मनवाना जानती थी। पुरुष राजनीतिज्ञ बनाए गए तिलिस्म को अन्तत: महिलाएं तोड़ देंगी। आरक्षण होने के बाद उनकी संख्या बढ़ेगी। अब वे पुरुष राजनीतिज्ञों की मोहताज नहीं होंगी जो नामांकन

करने के लिए व्यक्तिगत हाज़िरी पर बल देता है। आरक्षण से निश्चित रूप से एक बेहतर माहौल कायम होगा।

> ज़रा सोचिए 3
>
> आरक्षण के खिलाफ क्या तर्क दिए गए हैं ? क्या पंचायत में 30% आरक्षण करने से राजनैतिक भागीदारी के प्रति महिलाओं के दृष्टिकोण में कोई गुणात्मक परिवर्तन आया है ? अभी तक किए गए विचार-विमर्श और अपने अनुभव के आधार पर इन प्रश्नों का उत्तर दीजिए।

5.6 सारांश

इस इकाई में भारत में स्त्री-पुरुष समानता के उभरते क्षेत्रों और परिस्थितियों पर विचार किया गया है। संवैधानिक संशोधनों के द्वारा ये कार्य सम्पन्न किए गए। आरंभ में हमने इस इकाई में अपने संविधान में शामिल स्त्री-पुरुष संबंधी संवैधानिक प्रावधानों पर विचार किया। हमने भारत की विकासात्मक रणनीति का भी विवेचन किया है जिसमें न्याय के साथ विकास का स्थान शक्ति सम्पन्नता के साथ विकास ने लिया है। शक्ति अर्जित करने की प्रक्रिया स्वचालित नहीं होती। इसमें केवल नीचे से ही जोर लगाने की आवश्यकता नहीं होती बल्कि राज्य द्वारा भी इसमें महत्वपूर्ण कदम उठाने होते हैं। राज्य ने विभिन्न संवैधानिक प्रावधानों खासकर तीसरे और चौथे संवैधानिक संशोधनों के द्वारा इस दिशा में पहल की। संसद में 81वां संवैधानिक संशोधन विधेयक के पक्ष और विपक्ष में तर्क रखे जा चुके हैं और बहस हो चुकी है।

5.7 शब्दावली

अत्याचार : किसी के साथ क्रूर व्यवहार करना।

संशोधन : किसी दस्तावेज में सुधार, जोड़ या बदलाव।

5.8 कुछ उपयोगी पुस्तकें

टुवार्ड्स इक्वालिटी : रिपोर्ट ऑफ द कमिटी ऑन द स्टेटस ऑफ विमेन इन इंडिया, 1974, मिनिस्ट्री ऑफ एजुकेशन ऐंड सोशल वेल्फेयर, गवर्नमेंट ऑफ इंडिया.

कैनाबिरन, वसंत ऐंड कल्पना (1997) 'फ्रॉम सोशल ऐक्शन टू पोलिटिकल ऐक्शन विमेन ऐंड द 81वां एमेनडमेंट'. *इकोनोमिक ऐंड पोलिटिकल वीकली,* 32 (5) 17 फरवरी 1997: 196-197.

इकाई 6 राष्ट्रीय महिला आयोग

रूपरेखा

6.0 उद्देश्य

6.1 प्रस्तावना

6.2 राष्ट्रीय महिला आयोग: संघटन और कार्य

- 6.2.1 ऐतिहासिक परिप्रेक्ष्य
- 6.2.2 आयोग का संघटन
- 6.2.3 आयोग के कार्य

6.3 आयोग के आरंभिक मुद्दे

- 6.3.1 महिलाओं में कानूनी ज्ञान और जागरूकता का प्रसार
- 6.3.2 शराबबंदी आंदोलन
- 6.3.3 राजनैतिक शक्ति सम्पन्नता

6.4 शोषितों और उपेक्षितों से जुड़े कार्य क्षेत्र

- 6.4.1 वेश्यावृत्ति में लगी महिलाएं
- 6.4.2 अनुसूचित जाति और अनुसूचित जनजाति की महिलाएं
- 6.4.3 महिला कैदी
- 6.4.4 विधवाएं और परित्यक्ता महिलाएं
- 6.4.5 शारीरिक और मानसिक रूप से विकलांग महिलाएं

6.5 राष्ट्रीय महिला आयोग के कुछ महत्वपूर्ण सुझाव

- 6.5.1 कानूनी और विधाई उपाय
- 6.5.2 महिलाओं के खिलाफ हिंसा
- 6.5.3 महिलाओं की शक्ति सम्पन्नता के लिए प्रचारात्मक कार्य
- 6.5.4 महिलाओं के सामाजिक-आर्थिक विकास के लिए नियोजन प्रकिया
- 6.5.5 जनसंख्या नीति
- 6.5.6 शिक्षा नीति
- 6.5.7 विशेष समूहों से जुड़ी महिलाएं

6.6 राष्ट्रीय महिला आयोग का मूल्यांकन

6.7 सारांश

6.8 शब्दावली

6.9 कुछ उपयोगी पुस्तकें

6.0 उद्देश्य

इस इकाई में आप राष्ट्रीय महिला आयोग के संघटन, कार्य और प्राथमिक कार्यवाई क्षेत्रों की आधारभूत जानकारी प्राप्त कर सकेंगे। इस इकाई को पढ़ने के बाद आप:

- राष्ट्रीय महिला आयोग के संघटन और कार्य का वर्णन कर सकेंगे;
- इसकी विभिन्न गतिविधियों का परीक्षण कर सकेंगे;
- स्त्री-पुरुष समानता के मुद्दे पर राष्ट्रीय महिला आयोग के विभिन्न सुझावों को जान सकेंगे, और
- राष्ट्रीय महिला आयोग के कार्यों का मूल्यांकन कर सकेंगे।

6.1 प्रस्तावना

भारत में महिलाओं के ऐतिहासिक संघर्ष के गर्भ से राष्ट्रीय महिला आयोग का जन्म हुआ। आयोग का कार्य बड़ा ही दुरूह और कठिन रहा है। क्या आयोग इन कार्यों को पूरा कर पाया है ? इस इकाई में हम इस प्रश्न पर विचार करेंगे। इस परिप्रेक्ष्य में हम इस इकाई में आयोग के संघटन और कार्य पर भी विचार करेंगे। इसकी विभिन्न कार्य योजनाओं और प्राथमिकताओं पर भी विचार किया जाएगा। आयोग का सबसे महत्वपूर्ण कार्य सरकार को विभिन्न स्त्री-पुरुष मुद्दों की अनुशंसा आयोग को करनी थी। इन सुझावों पर भी यहां विचार किया गया है। इस इकाई के अन्तिम भाग में हमने आयोग की उपलब्धियों का विश्लेषण किया है।

6.2 राष्ट्रीय महिला आयोग: संघटन और कार्य

राष्ट्रीय महिला आयोग भारत में महिलाओं के लम्बे संघर्ष का परिणाम है। निश्चित रूप से राष्ट्रीय महिला आयोग एक आंदोलन का हिस्सा है। राष्ट्रीय महिला आयोग के संघटन और कार्य पर अनेक विचार प्रस्तुत किए गए हैं। कार्यकर्ताओं के एक समूह का यह मानना है कि राष्ट्रीय महिला आयोग का निर्माण राज्य द्वारा महिला आंदोलन को अपने हाथ में ले लेने के लिए किया है ताकि इस आंदोलन पर नियंत्रण स्थापित किया जा सके। उनका यह भी मानना है कि आयोग की संभावनाएं सीमित हैं क्योंकि वह राज्य की तरफ से बोलता है। लेकिन कुछ लोगों का यह भी मानना है कि आयोग के सुझावों का उपयोग महिलाओं की शक्ति सम्पन्नता के हथियार के रूप में की जा सकती है और इस दृष्टि से आयोग की भूमिका क्रांतिकारी है। इसलिए हमें इस बहस पर तटस्थता से विचार करना चाहिए और इसके लिए हमें राष्ट्रीय महिला आयोग के इतिहास, संगठन और कार्य की जानकारी प्राप्त करनी होगी।

6.2.1 ऐतिहासिक परिपेक्ष

90 का दशक अन्तरविरोधों और विपरीत स्थितियों का दशक था। 1971 के बाद लगभग दो दशकों तक सरकार के भीतर और बाहर महिला आंदोलन के नेतृत्व ने देश के राजनैतिक और विकासात्मक प्रकिया में मुख्य धारा की महिलाओं से संघर्ष किया। सरकार के भीतर बैठी महिला आंदोलन में शामिल वरिष्ठ महिलाओं ने विकास में महिलाओं की स्थिति और राष्ट्र के आधुनिकीकरण की प्रक्रिया का परीक्षण किया। 1975 में प्रथम अन्तरराष्ट्रीय महिला सम्मेलन से पहले भारत सरकार ने उच्च स्तरीय समिति बना दी जिसने 'महिलाओं की प्रस्थिति' के नाम से एक रिपोर्ट तैयार की। इस समिति ने महिलाओं के नजरिए से राष्ट्र निर्माण की प्रक्रिया का परीक्षण किया।

80 के दशक के मध्य तक न केवल महिलाओं के कल्याण या उनका स्तर ऊंचा उठाने के लिए अधिक प्रयास किए जाने लगे बल्कि उनके विकास और शक्ति सम्पन्नता की ओर भी कदम बढ़ाया गया। इस अवधि में तीन प्रमुख समितियां बनाई गईं: असंगठित क्षेत्र में काम कर रही महिलाओं के लिए आयोग; गिफ्तार की गई महिलाओं की देख रेख करने के लिए एक आयोग की स्थापना इसलिए

की गई कि वह महिलाओं से संबंधित कार्यों के महत्वपूर्ण क्षेत्रों की पहचान करे और एक राष्ट्रीय दृष्टिकोण योजना बनाए।

परंतु जब सरकारी स्तर पर ये प्रयास जारी थे उस समय जटिल सामाजिक-आर्थिक यथार्थ से उनका सीधा सामना हुआ। चाहे वह अनौपचारिक क्षेत्र में महिलाओं की स्थिति का मामला हो या शाहबानो, रूप कंवर, बालिका हत्या आदि जैसे मुद्दों से यह बात बिलकुल स्पष्ट हो जाती है।

महिलाओं के आंदोलन के कारण 1992 में राष्ट्रीय महिला आयोग की स्थापना की गई। इस मंच के माध्यम से लाखों महिलाएं अपनी आकांक्षाओं और इच्छाओं को व्यक्त कर सकती हैं। यह आयोग उन्हें देश की विकासात्मक प्रक्रिया में पुरुष से कंधे से कंधा मिलाकर चलने की शक्ति प्रदान करता है। एक स्वायत्त सांविधिक निकाय के रूप में अपने गठन के बाद से आयोग इस दिशा में प्रयासरत है। इसने महिलाओं की शक्ति सम्पन्नता के प्रति एक समग्र बहु आयामी दृष्टिकोण अपनाया है और उनके विकास में आनेवाली कानूनी, सामाजिक, सांस्कृतिक और यहां तक कि राजनैतिक बाधाओं को दूर करने का प्रयत्न किया है।

6.2.2 आयोग का संघटन

आयोग ने महिलाओं को प्रभावित करनें वाले विभिन्न कानूनों की समीक्षा की है और पूरे देश में महिलाओं की सामाजिक-आर्थिक स्थिति पर कई अध्ययन करवाएं हैं। उन्हेंने महसूस किया है कि जब तक महिलाओं को राजनैतिक शक्ति के बराबर की भागीदारी नहीं मिलती तब तक शक्ति सम्पन्नता, समानता और समता का लक्ष्य प्राप्त करना मुश्किल है। इसलिए महिलाओं की राजनैतिक शक्ति सम्पन्नता पर विशेष बल दिया गया। राष्ट्रीय महिला आयोग अधिनियम 1990 के अुनसार: केंद्र सरकार एक निकाय की स्थापना करेगी जिसका नाम राष्ट्रीय महिला आयोग होगा। इस अधिनियम के तहत यह आयोग कार्य करेगा।

इस आयोग में केंद्र सरकार 5 सदस्यों को नामजद करेगी। ये सम्मानीय, प्रतिष्ठित और निष्ठावान लोग होंगे जिनका अनुभव कानून या विधान, मजदूर संघ, किसी उद्योग के प्रबंधन या महिलाओं के लिए रोजगार पैदा करने वाले संगठन, महिला स्वयं सेवी संगठन (महिला कार्यकर्ताओं सहित), प्रशासन, आर्थिक विकास, स्वास्थ्य, शिक्षा या सामाजिक कल्याण से जुड़े लोगों को इसमें सदस्य बनाया जाएगा।

केंद्रीय सरकार एक सदस्य-सचिव को नामजद करेगा जो–

1) प्रबंधन, संगठनात्मक ढांचे या सामाजिक आंदोलन का विशेषज्ञ होगा, या
2) भारतीय प्रशासनिक सेवा का अधिकारी भी इसका सदस्य हो सकता/सकती है। केंद्र सरकार आयोग में ऐसे पदाधिकारियों और कर्मचारियों की भर्ती करेगा जो इस अधिनियम के अुनसार आयोग को सफलतापूर्वक काम करने में मदद कर सकेंगे।

आयोग समय-समय पर विशेष मुद्दों से निपटने के लिए समितियां बना सकता है।

क्या आप जानते हैं ? 1

इस अधिनियम को राष्ट्रपति ने 30-8-1990 को अपनी मंजूरी दे दी।
यह अधिनियम 31-1-1992 से लागू हुआ।
राष्ट्रीय महिला आयोग की स्थापना 31-1-1992 को हुई।

6.2.3 आयोग के कार्य

1) आयोग निम्नलिखित में से कोई एक कार्य या सभी कार्य करेगा :

क) संविधान और अन्य कानूनों के तहत महिलाओं को जो सुरक्षा प्रदान की गई है, उससे जुड़े सभी मुद्दों का परीक्षण और निरीक्षण करेगा;

ख) आयोग इन सुरक्षा उपायों के कार्यान्वयन पर वार्षिक या उपयुक्त अवधि पर केंद्रीय सरकार को रिपोर्ट प्रस्तुत करेगा;

ग) केंद्र या किसी भी राज्य सरकार द्वारा महिलाओं की स्थिति सुधारने के लिए इन सुरक्षा उपायों को प्रभावी कार्यान्वयन के लिए सुझाव देगा;

घ) समय-समय पर आयोग महिलाओं को प्रभावित करने वाले संविधान को मौजूदा प्रावधानों और अन्य कानूनों की समीक्षा करेगा और तदनुसार उसमें संशोधन का सुझाव देगा ताकि इसकी कमियों को दूर किया जा सके;

ड़) महिलाओं से जुड़े संविधान के प्रावधानों और अन्य कानूनों के प्रावधानों के उल्लघंन के मामलों पर उपयुक्त प्राधिकारियों से बातचीत करेगा;

च) निम्नलिखित शिकायतों पर विचार करेगा और उस पर तत्काल कदम उठाएगा:-

   i) महिलाओं के अधिकारों का उल्लंघन;

   ii) महिलाओं के संरक्षण के लिए उपलब्ध कानूनों को कार्यान्वित न किए जाने की स्थिति में तथा समानता और विकास का उद्देश्य हासिल किए जाने की दृष्टि;

   iii) महिलाओं को राहत पहुंचाने, उनके लिए कल्याणकारी कार्य करने और उनकी कठिनाइयों को कम करने हेतु, लिए गए नीति संबंधी निर्णयों, निर्देशों या आदेशों का पालन न किया जाना। आयोग इन मुद्दों पर उपयुक्त प्राधिकारियों से बातचीत करेगा;

छ) महिलाओं के खिलाफ हुए दमन, अत्याचार, शोषण और भेदभाव से जन्मी विशिष्ट समस्याओं या परिस्थितियों के संदर्भ में विशेष अध्ययन या खोजबीन करना और इसमें आनेवाली बाधाओं को पहचानना ताकि उन्हें दूर किए जाने के उपाय किए जा सकें।

क्या आप जानते हैं? 2

- राष्ट्रीय महिला आयोग एक संविधानिक निकाय है। इसकी स्थापना महिलाओं के लिए मौजूद संविधानिक और वैधानिक सुरक्षा उपायों का निरीक्षण करने, वैधानिक सुधार के उपाय बताने, महिलाओं की शिकायतों को दूर करने और महिलाओं को प्रभावित करने वाले सभी नीतियों पर सरकार को सलाह देने के लिए हुआ था।
- आयोग को दीवानी अदालत की शक्ति का अधिकार प्राप्त है। कानून के अन्तर्गत यह सुरक्षा उपायों के उल्लंघन के मामलों की जांच कर सकता है। यह महिलाओं के अध्ययन से जुड़ी शिकायतों की भी परीक्षा करता है।
- यह आयोग किसी भी व्यक्ति को बुला सकता है और शपथ लेकर उस व्यक्ति की जांच कर सकता है।
- यह कोई भी दस्तावेज मंगा सकता है और प्रमाण मांग सकता है।
- महिलाओं से संबंधित सभी मामलों पर भारत सरकार को राष्ट्रीय महिला आयोग से सलाह लेनी होगी।

- प्रोत्साहनमूलक और शैक्षिक अनुसंधान की शुरुआत करना ताकि महिलाओं को सभी क्षेत्रों में उपयुक्त प्रतिनिधित्व मिल सके तथा उन कारकों की पहचान करना जो महिलाओं की प्रगति में सहायक हो सकते हैं। उन बाधाओं का पता लगाना जो उनकी प्रगति में बाधक हैं जैसे आधारभूत सेवा, रहने की सुविधा का अभाव, अपर्याप्त सहयोगी सेवाएं और मेहनत वाले काम को आसान करने की तकनीक, रोजगार से होने वाला स्वास्थ्य संबंधी नुकसान तथा उनकी

उत्पादकता के लिए किया जाने वाला प्रयत्न। इन सब क्षेत्रों से अनुसंधान को जोड़ा जा सकता है;

- महिलाओं के सामाजिक- आर्थिक विकास की प्रकिया की योजना बनाने में हिस्सेदारी और परामर्श;
- संघ शासित राज्य या किसी राज्य में महिलाओं के विकास में प्रगति का मूल्यांकन;
- जहां महिलाओं को बंदी बनाकर रखा जाता है, उन स्थानों, कारागारों, सुधारालयों, महिलाओं की संस्था आदि की जांच करना और सुधार की जरूरत महसूस होने पर सम्बद्ध प्राधिकारियों से बातचीत करना;
- महिलाओं की किसी बड़ी संस्था में कोष संबंधी मुद्दों का फैसला;
- महिलाओं से जुड़े किसी भी मसले और खासकर महिलाओं की कठिनाई से भरी जिन्दगी की परेशानियों की रिपोर्ट सरकार के पास भेजना;
- कोई भी ऐसा मामला जिसे केंद्र सरकार ने अग्रसरित किया हो।

न्याय संबंधी कार्य : उसे निम्नलिखित अधिकार प्राप्त होंगे:

i) भारत के किसी भी कोने में किसी भी व्यक्ति को बुलाने और शपथ लेकर पूछताछ करने का अधिकार;

ii) किसी भी दस्तावेज़ को खोजने और मंगाने का अधिकार;

iii) शपथ पत्र पर प्रमाण प्राप्त करने का अधिकार;

iv) किसी भी अदालत या दफ्तर से कोई भी सार्वजनिक दस्तावेज की प्रति मांगने का अधिकार;

v) गवाह और दस्तावेज की जांच के लिए और,

vi) कोई अन्य मामले।

जरा सोचिए 1

राष्ट्रीय महिला आयोग का संगठन क्या है?

राष्ट्रीय महिला आयोग के प्रमुख कार्य क्या हैं?

6.3 आयोग के आरंभिक मुद्दे

आयोग ने कई कार्य किए हैं। आरंभ में इसने महत्वपूर्ण मसलों पर अपना ध्यान केंद्रित किया।

6.3.1 महिलाओं में कानूनी ज्ञान और जागरूकता का प्रसार

राष्ट्रीय महिला आयोग ने महिलाओं के अधिकारों की रक्षा करने वाले कानूनों को मजबूत बनाने का प्रयास किया। इसके लिए महिलाओं से जुड़े मौजूदा कानून की समीक्षा के लिए विशेषज्ञ समितियां बनाई और इन कानूनों में संशोधन का सुझाव दिया।

क) महिलाओं से संबंधित फौजदारी कानूनों का निर्माण

महिलाओं से संबंधित फौजदारी कानूनों पर विचार करने के लिए 27-7-96 को एक राष्ट्रीय गोष्ठी का आयोजन किया गया। इसमें महिलाओं से संबंधित फौजदारी कानूनों की परीक्षा की गई और सुझाव दिया गया कि किस प्रकार दूसरे कानूनों के परिप्रेक्ष्य में महिलाओं से संबंधित कानूनों को मजबूत बनाया जा सकता है और उन्हें समुचित न्याय दिलवाया जा सकता है। इस प्रकार एक सम्पूर्ण और संतुलित न्याय व्यवस्था की स्थापना का सुझाव दिया गया जो महिलाओं की सुरक्षा कर सके।

राष्ट्रीय महिला आयोग कानूनी जागरूकता कार्यक्रमों के प्रचार-प्रसार के लिए विश्वविद्यालयों और महाविद्यालयों की सहायता लेता है।

ग) महिला अदालतें

राष्ट्रीय महिला आयोग निचली और जिला अदालतों में लम्बे समय से पड़े मुकदमों पर भी ध्यान देती है जिसका संबंध अधिकांश महिलाओं के मुद्दों और दावों से होता है। आयोग इस बात को जानता है कि न्याय देर से मिलने का मतलब है न्याय न मिलना। इस स्थिति को परिवर्तित करने के लिए कुछ न कुछ करना होगा। इसे ध्यान में रखकर पारिवारिक महिला लोक अदालतें शुरू की गईं। कानून बनाकर महिला अदालतों के फैसले को कानूनी बना दिया गया। शहरी और ग्रामीण दोनों ही क्षेत्रों में महिला अदालतें लगती हैं।

6.3.2 शराबबंदी आंदोलन

पौड़ी गढ़वाल की 'तीनचीरी माई' की कथा से कौन अपरिचित है। 1980 के दशक के आरंभ में यह वृद्ध महिला अपने क्षेत्र में शराब से फैली बुराइयों को देखकर जिलाधिकारी के पास गई और उनसे शराब की सभी दुकानों को बंद करने का अनुरोध किया। जिलाधिकारी ने इसमें अपनी असमर्थता व्यक्त की। इसके बाद उसने अपने अकेले दम पर एक मोर्चे का गठन किया। उन्होंने सभी महिलाओं को इकट्ठा किया और हाथ में मिट्टी के तेल का बर्तन लिया। उन्होंने अपने क्षेत्र के सभी शराब की दुकानों को जला दिया। इसके बाद वह जिलाधिकारी के पास गई और कहा कि उसे गिरफ्तार कर लिया जाए। जिलाधिकारी ने कागजी कार्यवाई करके उसे छोड़ दिया।

राष्ट्रीय महिला आयोग ने इस क्षेत्र में शराब बंदी का अभियान शुरू किया और 14 दिसम्बर 1996 के थाल (पिथौड़ागढ़) में एक ताड़ी विरोधी सम्मेलन का आयोजन किया। राष्ट्रीय महिला आयोग ने आंध्र प्रदेश के ताड़ी विरोधी आंदोलन को भी अपना समर्थन दिया।

राष्ट्रीय महिला आयोग ने शराब बंदी के लिए राज्य सरकारों पर दबाव डाला। उन्होंने उन राज्यों के लिए एक नियमावली बनाई जहां शराब बंदी नहीं है और इस बुराई को खासकर बच्चों में फैलने से रोकने के उपाय सुझाए।

6.3.3 राजनैतिक शक्ति सम्पन्नता

चुनाव के पहले आयोग ने सभी दलों की महिलाओं को बुलाया और उनसे आह्वान किया कि संसद में महिला प्रतिनिधि भेजने को एक चुनावी मुद्दा बनाया जाए। इस प्रकार सभी राजनैतिक दलों ने इसे अपने चुनाव घोषणा पत्र में शामिल कर लिया और संभावित महिला उम्मीदवारों की सूची प्रस्तुत की। इस दौरान 6 राज्यों में चुनावों में महिलाओं के योगदान और उम्मीदवारों की समस्याओं को पहचानने के लिए एक अध्ययन किया गया।

चुनाव के बाद हालांकि राजनैतिक परिदृश्य बहुत बदला नहीं और महिलाओं को उपयुक्त प्रतिनिधित्व नहीं मिल पाया परंतु राष्ट्रीय महिला आयोग ने विभिन्न महिला समूहों के साथ मिलकर संसद के पटल पर विधेयक रखने में सफल हो गया और इसे पारित कराने के लिए वह लगातार प्रयत्नशील है।

जरा सोचिए 2

क्या आप भारत में होनेवाले महिला आंदोलन में राष्ट्रीय महिला आयोग की भूमिका का विवेचन कर सकते हैं? इस इकाई में दी गई पाठ सामग्री के अलावा आप अन्य स्रोतों का भी इस्तेमाल कर सकते हैं।

6.4 शोषितों और उपेक्षितों से जुड़े कार्य क्षेत्र

शोषितों और उपेक्षित महिलाओं से जुड़े कार्य क्षेत्रों की पहचान राष्ट्रीय महिला आयोग ने की है। इनमें से कुछ कार्य क्षेत्र इस प्रकार हैं :

6.4.1 वेश्यावृत्ति में लगी महिलाएं

आयोग ने वेश्याओं से संबंधित कुछ उद्देश्यों की पहचान की है:

1) महिलाओं और बच्चों को वेश्यावृत्ति कराने पर रोक और नियंत्रण लगाना;
2) वेश्यावृत्ति में संलग्न महिलाओं के साथ मानवीय, न्यायोचित और सहयोगात्मक व्यवहार करना; वे अपराधी नहीं हैं परंतु एक आपराधिक व्यवस्था का शिकार बन चुकी हैं;
3) महिलाओं और उनके बच्चों को स्वास्थ्य संबंधी न्यूनतम सुविधाएं उपलब्ध कराना;
4) महिलाओं और बच्चों पर होने वाली हिंसा को कम करना;
5) वेश्यावृत्ति में संलग्न महिलाओं के बच्चों को शिक्षा प्रदान करना;
6) राशन कार्ड, आवास आदि जैसी सुविधाएं मुहैया कराना;
7) कई क्षेत्रों और विभागों के साथ समझौता करना ताकि एक यथार्थवादी, संवेदनशील तथा प्रभावशाली कार्यक्रम बन सके;
8) वेश्यावृत्ति में शामिल महिलाओं का पुनर्वास और देखभाल;
9) बच्चों के अपहरण और बलात्कार को खत्म करना और इन तीनों के खिलाफ कानून बनाने का प्रयास करना।

6.4.2 अनुसूचित जाति और अनुसूचित जनजाति की महिलाएं

राष्ट्रीय महिला आयोग ने पूरे देश में विभिन्न मामलों का परीक्षण किया। इससे आयोग इस निष्कर्ष पर पहुंचा कि भारतीय समाज का कमजोर वर्ग विकासात्मक कार्यक्रमों से लाभान्वित नहीं हो पा रहा है। बड़ौदा जिले के रंगपुरा आश्रम में रहने वाली एक जनजाति महिला गीता राठवा का दुखद अनुभव एक ऐसा ही उदाहरण है। इसलिए राष्ट्रीय महिला आयोग ने अनुसूचित जातियों और अनुसूचित जनजातियों, अल्प संख्यकों और पिछड़े वर्ग की महिलाओं पर ध्यान देना शुरू किया। कुपोषण और अल्प पोषण के कारण से महिलाएं कई प्रकार के रोग से ग्रसित हैं। स्वास्थ्य का संबंध इनके काम करने की प्रकृति से होता है। राष्ट्रीय महिला आयोग ने रोजगार से जुड़ी बीमारियों को दूर करने के लिए आवश्यक कदम उठा रहा है। आयोग ने आजादी के 50वें साल को सामाजिक न्याय के साथ स्त्री पुरुष समानता वर्ष के रूप में आयोजित करने का निर्णय लिया।

जनजातियों के बीच राष्ट्रीय महिला आयोग निम्नलिखित कार्य कर रहा है:

- जनजातीय महिलाओं पर होने वाले जिन अत्याचारों की सूचना उन्हें मिलती है उसकी वे प्राथमिकी दर्ज कराते हैं;
- जनजातीय महिलाओं के लिए ग्रामीण महिला बैंकों की स्थापना; और
- गैर खेती कार्यों में स्वरोजगार योजनाएं।

6.4.3 महिला कैदी

राष्ट्रीय महिला आयोग जेल में बंद विचाराधीन कैदियों के मामले में भी हस्तक्षेप करता है। वे इस बात का ख्याल रखते हैं कि पुलिसकर्मी उन्हें अनावश्यक परेशान न करे। वे जहां आवश्यक होता है वहां कानूनी मदद भी करते हैं। राष्ट्रीय महिला आयोग ने कई नीतिगत परिवर्तन और उपायों का

सुझाव दिया है– महिलाओं के लिए अलग जेल होनी चाहिए। जहां कर्मचारी के रूप में महिलाएं हों और महिला विचाराधीन कैदियों के लिए जेल अदालतें लगाई जानी चाहिए ताकि उनके मामलों का तेजी से निपटारा हो सके।

6.4.4 विधवाएं और परित्यक्ता महिलाएं

राष्ट्रीय महिला आयोग वृंदावन और मथुरा में रहने वाली विधवाओं के पास गया। वे विधवाओं के कल्याण के लिए सक्रिय रूप से कार्य कर रहे हैं। विधवाओं की प्रतिष्ठा और उनकी हालत का अध्ययन करने पर पता चला कि उनमें कितनों के साथ सड़कों और आश्रमों में छेड़छाड़ की जाती है। इन निष्कर्षों के आधार पर राष्ट्रीय महिला आयोग ने वृंदावन में एक अस्थाई निवास की स्थापना का सुझाव दिया जहां महिलाओं को काम काज भी सिखाया जा सके।

6.4.5 शारीरिक और मानसिक रूप से विकलांग महिलाएं

हिमाचल प्रदेश के चम्बा जिले में प्लाही गांव की दृष्टिहीन लड़की नीलम कटोच की कथा पर ध्यान देने की जरूरत है। नीलम ने दृष्टिहीन व्यक्तियों के लिए विज्ञापित शिक्षक पद के लिए आवेदन किया था। शारीरिक तौर से अक्षम इन 16 पदों पर शिक्षकों के रूप में दृष्टिहीन पुरुष उम्मीदवारों का चयन किया गया।

राष्ट्रीय महिला आयोग के शिकायत कक्ष ने इस मामले को अपने हाथ में ले लिया और इसमें सफलता भी प्राप्त की। अनामिका (काल्पनिक नाम) की कहानी भी कुछ ऐसी ही है। वह एक स्वस्थ महिला थी परंतु उसके पति ने मानसिक स्वास्थ्य अधिनियम का उपयोग कर उसे पागलखाने में डाल दिया था। उसने राष्ट्रीय महिला आयोग के पास सहायता की अपील की। आयोग ने हस्तक्षेप किया और उसका घर बसाने में उनकी सहायता की। इस घटना के जरिए आयोग ने पागलखानों में रह रही स्वस्थ महिलाओं की कथा और कष्ट को दूर करने का प्रयत्न किया।

जरा सोचिए 3

महिला अदालत क्यों बनाई जाती हैं ? वे क्या भूमिका निभाती हैं ? अनुसूचित जाति, जनजाति, परित्यक्ता और अपंग महिलाओं के लिए राष्ट्रीय महिला आयोग द्वारा किए जाने वाले प्रयासों की जानकारी दे सकते हैं?

अनुभव से जानिए 1

अखबार से दो ऐसे समाचार निकालिए और उनका विवरण लिखिए जहां राष्ट्रीय महिला आयोग ने सफलतापूर्वक हस्तक्षेप किया हो और किसी निर्णय पर पहुचा हो।

इस कार्य को आप कई लोगों के साथ मिलकर कर सकते हैं। इसमें आप आयोग के सदस्य से मिलिए या फिर इसकी पूर्व अध्यक्ष श्रीमती मोहिनी गिरि से लिए गए कुछ साक्षात्कार को पढ़िए।

6.5 राष्ट्रीय महिला आयोग के कुछ महत्वपूर्ण सुझाव

राष्ट्रीय महिला आयोग ने भारत सरकार को 213 सुझाव दिए हैं। ये सुझाव भारत में रह रही औसत महिलाओं की सच्ची कहानी है। हालांकि इन सुझावों को मानने के लिए सरकार बाध्य नहीं है और यह सुझाव मात्र हैं। इसके बावजूद ये सुझाव भारत में महिला आंदोलन की दृष्टि से बहुत महत्वपूर्ण हैं। इन सुझावों के आधार पर हमारे समाज में महिलाओं की शक्ति सम्पन्नता के विकास की दिशा में प्रयत्न किए जा सकते हैं।

राष्ट्रीय महिला आयोग के कुछ महत्वपूर्ण सुझाव इस प्रकार हैं :

6.5.1 कानूनी और विधाई उपाय

- दहेज निषेध कानून के कुछ प्रावधान को भारतीय पेनल कोड और फौजदारी कानून में बदल देना चाहिए।
- दहेज देने वाले को दंडित नहीं किया जाना चाहिए क्योंकि उससे यह जबरदस्ती वसूला जाता है।
- दहेज की मांग करने वाले और लेने वाले के साथ-साथ दहेज दिलाने वाले मध्यस्थ व्यक्ति को भी कानून के गिरफ्त में लेना चाहिए। इसे दंडनीय अपराध बना देना चाहिए।
- भारतीय दंड संहिता में संशोधन कर एक महिला को प्रताड़ित करने वाले पति और उसके संबंधियों को 3 साल के बजाएं 7 साल की सजा होनी चाहिए।
- भारतीय प्रमाण अधिनियम 1982 में संशोधन किया जाना चाहिए और भारतीय दंड संहिता की अनुच्छेद 498 B के तहत प्रमाण प्रस्तुत करने का दायित्व अभियुक्त पर होना चाहिए।
- विवाह के समय अभिभावकों, संबंधियों या दोस्तों द्वारा दिए गए उपहार की सूची को पंजीकृत करा लेना चाहिए।
- हिन्दू विवाह करना, 1955 को संशोधित कर इस अधिनियम में विवाह के पंजीकरण को अनिवार्य बना देना चाहिए।
- विवाह का खर्च लड़की के माता-पिता/अभिभावक के वार्षिक आय से 20% ज्यादा नहीं होना चाहिए।

सती पर रोक

'सती' होनेवाली महिला पर अत्याचार किया जाता है, अत: सती (निषेध) कानून से अनुच्छेद 3 हटा देनी चाहिए। सती हत्या इसे महिमा दंडित करने के अपराध को भारतीय दंड संहिता, फौजदारी कानून और भारतीय प्रमाण कानून में शामिल कर लिया जाना चाहिए।

बच्चों की बिक्री और बाल विवाह

बच्चों को खरीदना या बेचना दंडनीय अपराध होना चाहिए। बाल विवाह विरोधी कानून को संशोधित कर अल्प वयस्कों को सुरक्षा प्रदान करनी चाहिए जिन्हें कानूनी अभिभावकों से वंचित कर दिया गया हो, बेच दिया गया हो या एक जगह से दूसरी जगह भटकने के लिए बाध्य किया जाता हो, विवाह के अनमेल बंधन में बांध दिया गया हो। इस प्रकार के विवाहों पर प्रतिबंध लगाया जाना चाहिए।

6.5.2 महिलाओं के खिलाफ हिंसा

- समीक्षा और निगरानी करने वाले निकायों को अधिक अधिकार, उपयुक्त हैसियत और वित्तीय तथा कर्मचारी सुविधा उपलब्ध कराकर मजबूत बनाया जाना चाहिए। जिन राज्यों में जिला स्तरीय निकाय नहीं है वहां समुचित निकायों की तुरंत स्थापना की जानी चाहिए।
- महिलाओं के खिलाफ हिंसा के मामलों की देख रेख कर रहे गैर सरकारी संगठनों को वित्तीय सहायता प्रदान करने के लिए केंद्र सरकार द्वारा विशेष योजनाएं चलाई जानी चाहिए।
- एक लाख से ऊपर वाले प्रत्येक शहर में महिला प्रकोष्ठ/महिला पुलिस थाना स्थापित किया जाना चाहिए और इन्हें पर्याप्त अधिकार, धन और कर्मचारी प्रदान किए जाने चाहिए।
- पुलिस, दंडाधिकारी, मजिस्ट्रेट, अदालती और चिकित्सा-कानूनी कार्मिकों और न्यायपालिकाओं से संबद्ध सभी प्रशिक्षण कार्यक्रमों में स्त्री-पुरुष समानता विषय को शामिल किया जाना चाहिए।

- दहेज के कारण हुई मौत में अभियुक्तों (पति), ससुराल वालों की सम्पत्ति जब्त करने का कानूनी प्रावधान बनाया जाना चाहिए।
- प्रखंड और पंचायत स्तरों पर सामाजिक कार्यवाई समूहों का निर्माण किया जाना चाहिए जिन्हें उस क्षेत्र विशेष में महिलाओं के खिलाफ हो रही हिंसा को पुलिस और अदालत तक पहुंचाने,
- और पीड़ितों को फिर से सही ढंग से बसाने का अधिकार हो।
- बिना दहेज लिए शादी करने वाले लड़के लडकियों को सामाजिक मान्यता दी जानी चाहिए और उन्हें उपयुक्त प्रोत्साहन, सुविधाएं और नौकरी प्रदान की जानी चाहिए।
- स्कूल और कॉलेज के पाठ्यक्रम में महिलाओं के खिलाफ हुए आपराधिक मामलों के संदर्भ में प्रमुख वैधानिक, संवैधानिक विशेषताओं और प्रावधानों का समावेश होना चाहिए।
- पीड़ित महिला द्वारा बलात्कार की शिकायत होने पर प्रमाण प्रस्तुत करने का जिम्मा अभियुक्त पर होना चाहिए।
- जब किसी महिला की अप्राकृतिक ढंग से मौत हो जाती है तब यह सिद्ध करना कि यह मौत अप्राकृतिक नहीं है का जिम्मा पति या सुसरालवालों का होना चाहिए जिसके साथ वह रह रही होती है।

6.5.3 महिलाओं की शक्ति सम्पन्नता के लिए प्रचारात्मक कार्य

क) राजनैतिक शक्ति सम्पन्नता

राज्य और केंद्र सरकार को लोक सभा और राज्य सभा में तथा राज्यों की विधान सभाओं में परिवार के लिए 1/3 स्थानों के आरक्षण के लिए उपयुक्त कार्यवाई की जानी चाहिए।

- संविधान के 73वें और 74वें संशोधन को कार्यान्वित करने के लिए जरूरी है कि (i) नेतृत्व क्षमता रखने वाली महिलाओं को चुनाव लड़ने के लिए प्रेरित किया जाए और (ii) इन चुनी हुई महिलाओं को योग्यतापूर्वक काम करने के लिए प्रशिक्षण दिया जाए। केंद्र और राज्य सरकारों को निम्नलिखित उद्देश्यों से विशेष योजनाएं बनानी चाहिए :
- पंचायतों और स्थानीय निकायों के लिए होने वाले चुनावों में महिलाओं के लिए स्थान आरक्षित करने की दिशा में जागरूकता फैलानी चाहिए और ग्रामीण क्षेत्रों में महिलाओं और समुदायों के बीच विशेष सूचना पहुंचाने की व्यवस्था की जानी चाहिए;
- पंचायतों और स्थानीय निकायों के संचालन में प्रभावशाली ढंग से भागीदारी लेने के लिए चुनी हुई महिलाओं को शक्ति सम्पन्न बनाने के लिए कार्यक्रम बनाया जाना चाहिए। इसमें समर्थ और गैर सरकारी संगठनों की सहायता लेनी चाहिए और इस योजना को पर्याप्त वित्त उपलब्ध कराया जाना चाहिए;
- पंचायत या स्थानीय निकायों के चुने हुए प्रतिनिधियों के लिए मौजूदा प्रशिक्षण योजना में स्त्री-पुरुष समानता विषय को ही शामिल किया जाना चाहिए ताकि उन्हें इस दिशा में जागरूक बनाया जा सके। उन्हें महिलाओं के मुद्दों और सरोकारों पर ध्यान देने के लिए उत्प्रेरित करना चाहिए।

ख) आर्थिक शक्ति सम्पन्नता

केंद्र सरकार, वित्त मंत्रालय, श्रम और उद्योग मंत्रालय तथा योजना आयोग को महिलाओं के निर्धन वर्ग पर संरचनात्मक समायोजन कार्यक्रमों के परिणाम का सर्वेक्षण/अध्ययन कराना चाहिए और इससे प्राप्त निष्कर्ष के आधार पर महिलाओं पर पड़ने वाले निषेधात्मक प्रभावों कम करने के सुधार उपाय करने चाहिए।

पंचायत में उभरती आवाजें : जमीनी राजनीति का अखाड़ा

सौजन्य : आशा मिश्रा, भोपाल

केंद्र सरकार और राज्य सरकारों की सेवाओं (पुलिस न्यायपालिका सहित) और सार्वजनिक उद्यमों के साथ-साथ विश्वविद्यालयों जैसे स्वायत्त निकायों में दस वर्षों के लिए महिलाओं के लिए 30% पद आरक्षित कर देनी चाहिए। कामकाजी महिलाओं को निम्नलिखित सुविधाएं प्रदान करना नियोक्ता के लिए आवश्यक बना देना चाहिए: (क) परिवहन (ख) शिशु गृह (ग) पृथक शौचालय (घ) जलपान गृह सुविधाएं (ड़) काम के बीच का अवकाश (च) कार्य स्थल पर परेशान किए जाने से सुरक्षा।

6.5.4 महिलाओं के सामाजिक-आर्थिक विकास के लिए नियोजन प्रक्रिया

क) रोजगार

- विकलांग महिलाओं के प्रशिक्षण और उनकी आर्थिक प्रगति पर विशेष ध्यान देना;
- किसानों को प्रशिक्षण देने वाली सभी संस्थाओं द्वारा महिलाओं के विशेष जरूरतों को ध्यान में रखते हुए उपयुक्त प्रशिक्षण कार्यक्रमों का आयोजन।
- खेत में काम करने वाली महिलाओं के बारे में उपयुक्त आंकड़े उपलब्ध कराना। इस उद्देश्य से हैदराबाद स्थित राष्ट्रीय कृषि अनुसंधान और प्रबंधन अकादमी या अन्य किसी स्थान पर महिला अध्ययन प्रकोष्ठ की स्थापना की जानी चाहिए।
- महिलाओं को खेत और घर में काम करने की देशी तकनीक की खूब जानकारी होती है। इस प्रकार की सूचनाएं इकट्ठी की जानी चाहिए। इनकी प्रभाव क्षमता बढ़ाने के लिए आधुनिक तकनीक का इस्तेमाल कर इनमें सुधार लाया जा सकता है।

- असंगठित क्षेत्र में काम कर रही महिलाओं के हितों की रक्षा करने के लिए एक व्यापक कानून बनाना चाहिए। इस कानून में स्वास्थ्य बीमा, दुर्घटना बीमा और प्राकृतिक दुर्घटनाओं के साथ-साथ सामान्य दिनों में भी रियायतों की व्यवस्था की जानी चाहिए।

ख) महिलाओं की लामबंदी

महिलाओं की सामाजिक-आर्थिक शक्ति सम्पन्नता को दो तरफी प्रक्रिया के रूप में देखा जाना चाहिए। महिलाओं की भूमिका को महत्व देने के साथ-साथ समुदाय में भी यह चेतना उत्पन्न की जानी चाहिए कि महिलाओं की प्रगति और विकास के लिए उन्हें सशक्त बनाना जरूरी है।

ग) झुग्गी झोपड़ी में रहने वली महिलाएं

- झुग्गी झोपड़ी में रहने वाली अधिकांश महिलाएं उत्पादन आधारित कार्यकलापों में संलग्न होती हैं। उन्हें स्व-रोजगार के लिए सहकारी संस्थाओं के निर्माण के लिए प्रोत्साहित किया जाना चाहिए।
- संभावित श्रम बल को आधुनिक रोजगारों में लगाया जाना चाहिए जैसे–आया, दाई, प्रसाधन जैसे कार्यों तथा इलेक्ट्रोनिक तथा बिजली के समान बनाने, खेल कूद की पोषाक या अन्य पोषाकों के निर्माण जैसे कार्यों में लगाना।
- लड़कियों के लिए ऐसे शिक्षा संस्थान खोलना जहां घरेलू काम सिखाया जा सके और अन्य दैनिक कार्यों में निपुण बनाया जा सके। जिन प्राथमिक विद्यालयों के निकट ये परियोजनाएं नहीं है उन्हें विद्यालयों के आस पास स्थापित करना।
- लड़कियों के लिए माध्यमिक स्तर तक मुफ्त और अनिवार्य शिक्षा की व्यवस्था करना क्योंकि यह मौलिक अधिकार है।
- महिलाओं को खासतौर पर ध्यान में रखकर सार्वजनिक स्वास्थ्य प्रणाली का विकास किया जाना चाहिए। प्रजनन संबंधी स्वास्थ्य अधिकारों को मानवाधिकार का एक हिस्सा बनाना चाहिए और उन्हें पूरा करना राज्य का जिम्मा होना चाहिए।

6.5.5 जनसंख्या नीति

भूमंडलीय विकास के फलस्वरूप गरीबों और अमीरों के आय के बीच बढ़ती खाई और जीवन समर्थन प्रणाली को हुए नुकसान के संदर्भ में न्यूनतम आवश्यकता कार्यक्रम को कार्यान्वित करने और इसे उपयुक्त बनाने की तुरंत जरूरत है। न्यूनतम आवश्यकता कार्यक्रमों में निम्नलिखित प्रावधान शामिल होना चाहिए :

i) शिशु देखभाल केंद्र;

ii) मुफ्त और अनिवार्य शिक्षा;

iii) सीखो और कमाओ अवसरों को ध्यान में रखते हुए लड़कियों के कौशल की वृद्धि का प्रावधान;

iv) स्कूल, प्रशिक्षण संस्थान आदि जाने में लड़कियों को पर्याप्त शारीरिक सुरक्षा प्रदान करना। पानी खासकर जमीन के अन्दर का पानी पीने और अन्य प्राकृतिक संसाधनों के उपयोग के बारे में स्पष्ट निर्देश दिए जाने चाहिए।

- व्यापक स्वास्थ्य कार्यक्रम बनाने का जिम्मा स्वास्थ्य और परिवार कल्याण मंत्रालय को नहीं दिया जाना चाहिए। योजना के निर्देशन में संभवत: एक स्वास्थ्य निकाय द्वारा इसे बनाया जाना चाहिए।
- प्राथमिक स्वास्थ्य देखभाल और प्रजनन स्वास्थ्य के क्षेत्रों में काम कर रही स्वयं सेवी संगठनों के प्रतिनिधियों, पेशेवरों, विशेषज्ञों से परामर्श।

- प्रजनन स्वास्थ्य देखभाल के लिए अधिसंरचना में सुधार लाने के लिए कई उपाय करने होंगे; भारत के पिछड़े इलाकों में प्राथमिकता के आधार पर एक व्यापक प्रजनन स्वास्थ्य देखभाल कार्यक्रम का निर्माण करना होगा।
- मलेरिया और अन्य किसी संक्रमण से ग्रसित गर्भवती महिलाओं की देखभाल तथा बच्चा और जच्चा की सुरक्षा के उपाय करना।
- स्वास्थ्य और परिवार कल्याण मंत्रालय द्वारा किशोरियों को ध्यान में रखकर एक व्यापक प्रजनन स्वास्थ्य देखभाल कार्यक्रम तैयार किया जाना चाहिए। इसके लिए शिक्षण संस्थाओं की सहायता ली जा सकती है।
- वैज्ञानिक रूप से जांची परखी गई और मंजूरी प्राप्त प्रविधियों का इस्तेमाल ही जनता के लिए करना चाहिए; दवाओं की जांच का काम दवा नियंत्रण विभाग के हाथों में होना चाहिए जो इनके विपणन पर कड़ा नियंत्रण लगा सके।
- पंचायती राज संस्थाओं और नगरपालिकाओं को प्रोत्साहनमूलक पुरस्कार दिए जाने चाहिए। विवाहों के अनिवार्य पंजीकरण, बाल विवाह, दहेज, महिला भ्रूण हत्या, बालिका वध, निरक्षरता आदि के उन्मूलन के लिए पंचायती राज संस्थाओं को विशेष पुरस्कार दिए जाने चाहिए।
- राज्य और केंद्रीय सरकार के कर्मचारियों को राष्ट्रीय जनसंख्या नीति में उल्लिखित दो बच्चों का नियम लागू होना चाहिए; जिन्होंने न्यूनतम उम्र से पहले शादी की हो उन्हें नौकरी नहीं दी जानी चाहिए और जिन्हें दो से ज्यादा बच्चे हों उन्हें तरक्की नहीं दी जानी चाहिए। इस संदर्भ में यह ध्यान रखना चाहिए कि यदि किसी की शादी बचपन में हो जाती है तो उसके बड़े हो जाने पर उसे दंडित नहीं किया जाना चाहिए; हालांकि बच्चों के माता पिता और परिवार के वयस्क सदस्यों, सरकारी कर्मचारी तथा जनता के प्रतिनिधियों को दंडित किया जाना चाहिए जो इस प्रकार की शादी करवाते हैं या उसमें शामिल होते हैं।
- जीवन बीमा निगम या समूह स्वास्थ्य बीमा की मौजूदा योजनाओं, गर्भावस्था से जुड़े खर्च और नवजात शिशु के हुए स्वास्थ्य पर खर्च की वापसी का प्रावधान नहीं है। यह सुरक्षित मातृत्व और बच्चे के अधिकार की कथित नीतिगत उद्देश्यों के खिलाफ है। भारत के संविधान और CEDAW बाल अधिकार सम्मेलन के प्ररिप्रेक्ष्य में मातृ रक्षा और शिशु कल्याण को शामिल करना चाहिए।
- अपेक्षित जागरूकता फैलाने के लिए जन संचार के सभी विज्ञापनों में सामाजिक रूप से प्रासंगिक सूचनाओं को शामिल करना होगा।
- जनन क्षमता को कम करने के लिए अपनाई जाने वाली जैव प्रौद्योगिकियों और नई प्रौद्योगिकियों के सामाजिक और नैतिक परिणामों की खोजबीन करने और जनन क्षमता के अभाव को दूर करने के लिए किए गए प्रौद्योगिकी परिवर्तनों के लिए महिला और बाल विकास विभाग के नेतृत्व में केंद्र में एक स्वतंत्र अन्तर-विभागीय विशेषज्ञ समिति का गठन किया जाना चाहिए।
- पेय जल जीवन के लिए बहुत ही महत्वपूर्ण हैं और अमूल्य हैं। इसके अलावा पौष्टिक भोजन, जल-मल निकास, स्वास्थ्य और सफाई पर भी पर्याप्त ध्यान दिया जाना चाहिए।
- आय और पारिवारिक खर्चे पर महिलाओं का नियंत्रण कम होता है। इसके साथ ही साथ जनसंख्या नियंत्रण के कार्यक्रमों तक महिलाओं की पहुंच नहीं होती और इसमें उनका वश नहीं चलता है। इसलिए इस कार्यक्रम में शामिल होने वाली महिलाओं से कोई शुल्क नहीं लिया जाना चाहिए।

6.5.6 शिक्षा नीति

खासतौर से गांव में रहने वाली लड़कियों के शिक्षा में सुधार के लिए निम्नलिखित उपाय सुझाए गए हैं:

क) जाग [illegible] म [illegible] जाने चाहिए;

ख) लड़ [illegible] लोगों की सामाजिक दृष्टि में परिवर्तन लाना चाहिए;

ग) लड़कियों [illegible] महिलाओं की विशेष जरूरतों और उनकी सामाजिक आर्थिक स्थिति को ध्यान में रखकर शिक्षा नीति बनाई जानी चाहिए;

घ) शिक्षा के अलावा दूसरे क्षेत्रों के नीतियों में भी परिवर्तन लाना चाहिए। पेय जल, जलावन की सामग्री, चारा और शिशु गृह संबंधी सुविधाएं प्रदान करने से लड़कियां पढ़ने के लिए स्कूल जा सकेंगी और सबसे महत्वपूर्ण बात यह है कि उन्हें घर के काम काज से मुक्त करना होगा;

ड.) महिलाओं के रोजगार और उनकी अर्जन क्षमता बढ़ाने के लिए इस प्रकार की आर्थिक नीतियां बनाई जानी चाहिए कि माता पिता तथा अभिभावक लड़कियों की शिक्षा का समर्थन करने लगें।

6.5.7 विशेष समूहों से जुड़ी महिलाएं

अनुसूचित जाति और अनुसूचित जनजाति

- अनुसूचित जाति और अनुसूचित जनजाति की महिलाओं के काम करने के परिवेश से स्वास्थ्य संबंधी जो समस्याएं पैदा होती हैं उन्हें दूर करने के लिए आवश्यक कार्यवाई की जानी चाहिए।
- जनजातीय उप योजनाओं और अनुसूचित जाति योजनाओं में स्वास्थ्य, शिक्षा, आर्थिक विकास और अन्य समाज सेवा क्षेत्रों के तहत महिलाओं पर विशेष रूप से ध्यान देना चाहिए।
- समन्वित ग्राम विकास कार्यक्रम और दूसरे गरीबी हटाओ कार्यक्रमों में (जिसमें अनुसूचित जाति और अनुसूचित जनजाति को भी शामिल किया गया है) अनुसूचित जाति और अनुसूचित जनजाति की महिलाओं को प्राथमिकता दी जानी चाहिए और पुरुषों तक इसे सीमित नहीं रखना चाहिए।
- जनजातीय महिलाओं के स्वास्थ्य से संबंधित आंकड़े इकट्ठे किए जाने चाहिए।
- जनजातीय लड़कियों को मिली शैक्षिक सुविधाओं के उपयोग और पढ़ाई बीच में छोड़ने वाली लड़कियों से संबंधित अनुसंधान किया जाना चाहिए। इसके साथ ही उपलब्ध अनुसंधान के आधार पर एक ठोस सैद्धांतिक आधार निर्मित किया जाना चाहिए।
- मंजूरी प्राप्त समन्वित जनजातीय विकास क्षेत्रों की उप योजनाओं में जनजातीय महिलाओं के रोजगार पर विशेष ध्यान देना चाहिए।
- सामान्य विकास योजनाओं में जनजातीय महिलाओं को होने वाले वास्तविक लाभ का विश्लेषण करने के लिए अध्ययन करना आवश्यक है।
- लड़कियों को शिक्षा प्रदान करना असंतुलन को सही करने का सबसे कारगर उपाय है और इसके लिए जो कुछ भी किया जाए थोड़ा है।
- प्रत्येक जनजातीय समुदाय के विशिष्ट सामाजिक-आर्थिक-राजनैतिक-सांस्कृतिक बनावट को ध्यान में रखना चाहिए। इसके अनुसार सभी जनजातीय समुदायों के लिए शिक्षा की अलग व्यवस्था की जानी चाहिए। इस बात का ध्यान रखा जाना चाहिए कि पाठ्य पुस्तकों में स्त्री पुरुष भेदभाव से संबंधित पूर्वाग्रह न झलके।
- स्पष्ट रूप से जिन कबीलों में महिलाओं की साक्षरता बहुत कम हो वहां की महिलाओं में साक्षरता स्तर को बढ़ाने के लिए अलग से कार्यक्रम बनाया जाना चाहिए।
- शिक्षा को लोकप्रिय बनाने के लिए और लड़कियों को स्कूल आने के लिए प्रेरित करने के लिए छात्रवृत्ति, पोशाक, किताबें आदि विद्यालय की तरफ से उपलब्ध कराए जाने चाहिए। जनजातीय लड़कियों को खासतौर पर सामाजिक सुरक्षा दी जानी चाहिए, उनकी भौतिक आवश्यकताओं की पूर्ति की जानी चाहिए और उनके मनोरंजन का इन्तजाम किया जाना चाहिए।

विकास प्रक्रिया से जोड़ना

सौजन्य : आशा मिश्रा, भोपाल

- जनजातीय लोगों में शिक्षा के प्रसार के लिए यह जरूरी है कि उनकी आरंभिक शिक्षा मातृभाषा में हो। जनजातीय महिलाओं और लड़कियों के संबंध में इसका विशेष महत्व है क्योंकि बाहर की दुनिया से उनका सम्पर्क काफी कम होता है।
- योग्य जनजातीय महिलाओं को शिक्षा अधिकारी, सेना अधिकारी, डाकपाल आदि के रूप में बहाल किया जाना चाहिए। इन पदों पर बहाली के लिए 33% पद ऐसी महिलाओं के लिए आरक्षित रहना चाहिए।
- स्थानीय जनजातीय महिलाओं को शिक्षिकाओं के रूप में बहाल की जानी चाहिए। उन्हें आवश्यक शिक्षिका प्रशिक्षण प्रदान किया जाना चाहिए।
- जनसंख्या क्षेत्रों में संबंध समुदायों के बीच संवाद का अभाव होता है। सरकारी तंत्र, गैर सरकारी संगठन और जनता के बीच निकट का संयोजन, सहयोग और विश्वास कायम करने की जरूरत है।

जरा सोचिए 3

महिलाओं के स्वास्थ्य, शिक्षा और रोजगार के संबंध में राष्ट्रीय महिला आयोग की प्रमुख संस्तुतियां क्या हैं। क्या आप भी अपनी ओर से कुछ संस्तुतियां प्रस्तुत करना चाहते हैं।

6.6 राष्ट्रीय महिला आयोग का मूल्यांकन

राष्ट्रीय महिला आयोग की स्थापना के 7 वर्ष हो चुके हैं। अपने इस छोटे कार्यकाल में राष्ट्रीय स्तर पर उसने अपनी उपस्थिति दर्ज कराई। इसने लगातार कार्यशालाओं, सम्मेलनों, वाद-विवादों और बैठकों का आयोजन किया है जिनमें कई मुद्दों पर विचार-विमर्श किया गया है :

- कारा आरक्षी निरीक्षकों का राष्ट्रीय सम्मेलन,
- समीक्षा और नेटवर्किंग गतिविधियों पर राज्य महिला आयोगों के साथ बैठक,
- वेश्याओं के पुनर्वास पर राष्ट्रीय बैठक,
- महिलाओं की बैंकिंग ऋण जरूरतों पर विचार-विमर्श, और,
- महिलाओं से संबंधित फौजदारी कानूनों के निर्माण पर राष्ट्रीय बहस।

राष्ट्रीय महिला आयोग ने अक्टूबर 1996 को जयपुर में 'महिलाओं की शक्ति सम्पन्नता-साथिनों' की भूमिका विषय पर एक गोष्ठी का आयोजन किया था। इस गोष्ठी का आयोजन राजस्थान में ज़मीनी स्तर पर काम कर रही महिला कार्यकर्ताओं या साथिनों के भविष्य पर विचार करने के लिए और महिला विकास तथा परिवर्तन के क्षेत्र में उनकी महत्वपूर्ण भूमिका के बारे में जागरूकता पैदा करने के लिए किया गया था। राष्ट्रीय महिला आयोग के सदस्यों ने कई राजनैतिक दलों से मुलाकात की। 1998 के चुनावों में महिलाओं की बढ़ती भूमिका पर बल देने के लिए राष्ट्रीय महिला आयोग ने कुछ गीत और नारे प्रस्तुत किए थे। जनभावना को जागृत करने के लिए ये बहुत प्रभावशाली सिद्ध हुए।

क्या आप जानते हैं ? 2

राष्ट्रीय महिला आयोग के पूर्व-मुकदमा प्रकोष्ठ द्वारा निपटाए गए मामलों की संख्या (अक्टूबर 1996 तक)

वैवाहिक अनबन	117
दहेज से संबंधित आत्महत्या	4
प्रताड़ना/क्रूरता/मारना पीटना	17
हत्या (दहेज से संबंधित नहीं)	1
द्विविवाह	5
शिशु हत्या	1
पति द्वारा दूसरों से शारीरिक संबंध रखना	2
तलाक और रखरखाव	77
दहेज उत्पीड़न	185
दहेज मृत्यु/हत्या	18
संदेहास्पद स्थितियों में मौत	3
बलात्कार/छेड़छाड़	26
कार्य स्थल पर परेशान किया जाना	35
पुलिस की उदासीनता	59
सम्पत्ति का अधिकार	20
अन्य मामले	105

राष्ट्रीय महिला आयोग अपनी गतिविधियों से महिलाओं के बीच जागरूकता पैदा करने में सफल रहा है। यह परिवर्तन का एक प्रमुख माध्यम बन गया है। लोग अब इस बात को जान गए हैं। इसके प्रयासों से महिलाओं को सामाजिक रूप से संगठित किया गया है और कई स्तरों पर प्रभावी समूह बनाए गए हैं। कई मामलों में इसने महिलाओं को तुरंत न्याय दिलवाया है। राष्ट्रीय महिला आयोग गैर सरकारी संगठन और सरकारी अधिकारियों से लगातार सम्पर्क में रहता है। परिणामस्वरूप सभी सामाजिक- आर्थिक स्तरों की महिलाओं तक इसकी पहुंच है। NHRC, अनुसूचित जाति और अनुसूचित जनजाति आयोग, जनसंचार में काम करने वाले लोग, गैर सरकारी संगठन, सरकारी विभाग, महिलाओं के मुद्दों के बारे में जानकारी और सूचना प्राप्त करने के लिए परिवर्तन की सहायता लेते हैं।

6.7 सारांश

राष्ट्रीय महिला आयोग की स्थापना एक स्वायत्त संवैधानिक निकाय के रूप में हुई थी। इसकी स्थापना एक स्वतंत्र आयोग के रूप में हुई थी जिसे महिलाओं की स्थिति जानने और उनके लिए काम करने के लिए सरकार, राज्य तथा समाज से बातचीत करने की पूरी स्वतंत्रता दी गई। एक समय यह बात भी सोची जा रही थी कि इसे लोक आयुक्त ढर्रे पर विकसित किया जाए ताकि यह खासतौर पर महिलाओं के खिलाफ होने वाले भेदभाव और स्त्री-पुरुष भेदभाव की दिशा में कार्य कर सकें।

महिलाओं के अधिकारों की रक्षक और अभिभावक के रूप में काम करने के लिए और महिलाओं के खिलाफ होने वाले अन्याय से लड़ने के लिए इसे कार्य करने की पूरी स्वतंत्रता दी जानी चाहिए। राष्ट्रीय महिला आयोग अधिनियम एक स्वागत योग्य कदम है। न्यायपालिका कार्यकारी और प्रजातंत्र के संसदीय बृहद ढांचे के अन्तर्गत इसे खोजबीन करने, दंड देने और अपने कार्यों को कार्यान्वित करने के लिए और भी अधिकार दिया तो इसे प्रभावशाली बनाया जा सकता है।

6.8 शब्दावली

(NGO)-गैर सरकारी संगठन।

(NHRC)-राष्ट्रीय मानवाधिकार आयोग।

(NSSO)-राष्ट्रीय नमूना सर्वेक्षण संगठन।

6.9 कुछ उपयोगी पुस्तकें

गवर्नमेंट ऑफ इंडिया, (1990) *नेशनल कमीशन फॉर विमेन: द नेशनल कमीशन फॉर विमेन ऐक्ट*. नई दिल्ली.

गवर्नमेंट ऑफ इंडिया, *नेशनल कमीशन फॉर विमेन: इन परसिस्ट ऑफ जस्टीस इम्पावरमेंट इक्वालिटी, रिकोमेंडेशन्स, इनशिएटिव ऑफ द एन सी डब्ल्यू 1995-1997*. नई दिल्ली.

नेशनल कमीशन फॉर वुमैन: रिचिंग आउट; प्रोसिडिंग्स ऑफ कॉन्फ्रेंस ऐंड सेमिनारर्स, 22-30 जुलाई, 1996.

संदर्भ

अल्तेकर, ए.एस. (1978) 'रिपोर्ट' दि पोजिशन ऑफ वूमैन इन हिंदू सिविलाइजेशन, दिल्ली : मोतीलाल बनारसीदास।

बाटलीवाला, श्रीलता (1995) दि कन्सेप्ट ऑफ वूमैन्स एम्पावरमेंट, ए फ्रैमवर्क "पंचायती राज में महिला, विभिन्न राज्यों का परिदृय" विषय पर आयोजित राष्ट्रिय संगोष्ठी में प्रस्तुत अभिपत्र, बेंगलूरः (आई एस एस टी, नई दिल्ली और बेंगलूर/ सी डी डब्ल्यू डी एस, नई दिल्ली)।

चक्रवर्ती, वी. और कुमकुम राय (1988), इन सर्च ऑफ अवर पोएट : ए रिव्यू ऑफ द लिमिटेशन्स एंड पॉसिब्लिटीज़ ऑफ द हिस्टोरियोग्राफी ऑफ वूमैन ऑफ अरली इंडिया, ई पी डब्ल्यू अप्रैल : डब्ल्यू एस-2-10.

सी एस डब्ल्यू आई (1974) रिपोर्ट ऑफ द कमेटी ऑन द स्टेट्स ऑफ वूमैन इन इंडिया (टूवर्डस इक्वालिटी), नई दिल्ली, भारत सरकार।

सी डब्ल्यू डी एस (1996) एन अपील टू नेशनल पॉलिटिकल पार्टीज ऑन बिहाफ आफ सेवन वूमैन्स आर्गेनाइजेशन। इंडियन जर्नल ऑफ जेंडर स्टडीज, 3 (2) जुलाई-दिसम्बर 1996, 265-268.

भारत सरकार (1990) राष्ट्रीय महिला आयोग अधिनियम, नई दिल्ली : एन सी डब्ल्यू।

गुप्ता, रुचिरा (1996) 'दि रॉकी रोड टू जेंडर इक्वालिटी', द टाइम्स ऑफ इंडिया, 23 सितम्बर।

जैन, देवकी (1996) "पंचायती राज - वूमैन चेंजिंग गवर्नेन्स", यू एन डी पी, जेंडर इन डेवलपमेंट मोनोग्राफ सीरीज़ नं. 5.

जैन, देवकी (1996) दि 33 परसेंट सोल्यूशन, दि आइडिया इज़ टू चेंज पावर इक्वेशन्स। टाइम्स ऑफ इंडिया, 22 सितम्बर।

कन्नाबिरन, वसंत और कल्पना कन्नाबिरव (1997) फ्रॉम सोशल एक्शन टू पालिटिकल एक्शन, वूमैन एंड द 81 अमेंडमेंट। इकॉनामिक एंड पॉलिटिकल वीकली, 32 (5), 1-7 फरवरी : 196-197

कारलेकर, हिरणमई (1996) "माइल्स टू गो फार ए फेयर रिपरजेन्टेशन" इंडियन जरनल ऑफ जेन्डर स्टडीज, 3(2), जुलाई-दिसम्बर : 275-281

कौशिक, सुभीला (1994) वूमैन इन लोकल सेल्फ गवर्नमेंट इन इंडिया, स्ट्रैटेजीज़ एंड अचीवमेंट्स। रीजनल वर्कशॉप ऑन "स्ट्रैटेजीज़ टू इनक्रीज़ वूमैन्स पार्टीसिपेशन इन लोकल गवर्नमेंट" बैंकॉक : अक्तूबर।

मैथ्यू, जार्ज (1995) वूमैन इन पंचायती राज, बिगनिंग ऑफ ए साइलैंट रिवोल्यूशन। नेशनल कांफ्रेंस ऑन वूमैन एंड पंचायती राज। नई दिल्ली, अप्रैल।

मैथ्यू, पी डी और पी एम वक्शी (1998) वूमैन एंड दि कंस्टीट्यूशन (लीगल एजुकेशन सीरीज़)। नई दिल्ली : इंडियन सोशल इंस्टीट्यूट।

मजूमदार, वीना (1989) रिजर्वेशन्स फॉर वूमैन। इकानामिक एंड पॉलिटिकल वीकली, 24 (50) : 16 दिसम्बर, 2795-2796.

राष्ट्रीय महिला आयोग (1999) राष्ट्रीय महिला आयोग : इन परश्यूट ऑफ जस्टिस, इम्पावरमेंट, इक्वालिटी : रिकमन्डेशन्स एंड इनीसिएटिव्स ऑफ द एन सी डब्ल्यू 1995-1997, नई दिल्ली।

पाणिकर, ललिता (1997) पॉलिटिकल पैट्रीआर्की, रिजर्वेशन्स एबाउट पावर फॉर वूमैन। दि टाइम्स ऑफ इंडिया।

शुक्ला, वी.एन. (1994) भारत का संविधान। लखनऊ : इस्टर्न बुक कंपनी।

वर्मा, एस.के. (1995) 'जेंडर इक्वालिटी : थ्योरी एंड प्रैक्टिस इन इंडिया' इन जे एल कौल (ईडी) मानव अधिकार। नई दिल्ली : रिजैन्सी पब्लिकेशन्स।

उत्तर प्रदेश
राजर्षि टण्डन मुक्त विश्वविद्यालय

खंड

3

भारत के स्त्री-पुरुष समानता के लिए बनाए गए कानून और कानूनी सुधार

खंड प्रस्तावना: भारत में स्त्री-पुरुष समानता के लिए बनाए गए कानून और कानूनी सुधार

इकाई 7

कानूनी सुधार और राजनीतिक प्रतिबद्धता : धर्म निरपेक्षता बनाम व्यक्तिगत कानून 5

इकाई 8

महिलाओं के खिलाफ हिंसा के लिए कानूनी सुधार 18

इकाई 9

श्रम कानून 33

इकाई 10

सामाजिक सुरक्षा 51

संदर्भ 68

प्रस्तावना : भारत में स्त्री-पुरुष समानता के लिए बनाए गए कानून और कानूनी सुधार

कानूनी सुधार और स्त्री-पुरुष समानता पर आधारित पिछले खंडों में आप स्त्री-पुरुष समानता से संबंधित संवैधानिक और वैधानिक प्रावधानों का अध्ययन कर चुके हैं। इसके अतिरिक्त खासतौर पर भारत के संबंध में स्त्री-पुरुष समानता के संवैधानिक प्रावधानों, संशोधनों, सुधारों और उनकी कमियों का भी अध्ययन किया जा रहा है। इस खंड में स्त्री-पुरुष समानता से संबंधित कानूनों और कानूनी सुधारों पर विचार किया जा रहा है। इस खंड में हम खासतौर पर विशेष विवाह अधिनियम के विभिन्न मुद्दों, महिलाओं के खिलाफ की जाने वाली विभिन्न प्रकार की हिंसाओं, श्रम कानूनों आदि की जानकारी प्राप्त करेंगे।

इकाई 7 में विवाह व्यवस्था, उत्तराधिकार, भारतीय महिलाओं के जीवन-यापन संबंधी अधिकार और इससे जुड़े कानूनी प्रावधानों तथा भारतीय महिलाओं की हैसियत पर पड़ने वाले इसके प्रभाव की चर्चा की गई है। इस इकाई में धार्मिक व्यक्तिगत कानूनों और धर्म निरपेक्ष कानूनों का तुलनात्मक अध्ययन किया गया है। इस इकाई को पढ़ने के बाद आप एकरूप नागरिक संहिता के कार्यान्वयन की जरूरत महसूस कर सकेंगे।

इकाई 8 में न केवल महिलाओं के खिलाफ की जाने वाली विभिन्न प्रकार की हिंसाओं का उल्लेख किया गया है बल्कि "महिलाओं के खिलाफ हिंसा" के अर्थ और क्षेत्र की भी आपको जानकारी हो सकेगी। इस प्रकार की हिंसा से संबंधित अनेक आंकड़े भी इस इकाई में दिए गए हैं। इसके अलावा खासतौर पर बालिकाओं पर होने वाली हिंसा का अलग से अध्ययन किया गया है। 'घरेलू हिंसा' के खिलाफ कड़े कानून बनाने की जरूरत है। अपराधों का पंजीकरण बढ़ा है (जो एक स्वागत योग्य कदम है) और इस प्रकार महिलाओं के अधिकारों के कानूनी प्रावधानों के प्रति जागरूकता बढ़ी है।

इकाई 9 में महिला मजदूरों के कार्य परिवेश के संदर्भ में विभिन्न श्रम कानूनों की चर्चा की गई है जो महिला मजदूरों के हितों की रक्षा करने के लिए अनिवार्य है। इस इकाई में भारत में महिला मजदूरों को प्राप्त संवैधानिक सुरक्षा की भी चर्चा की गई है। यह भी बताया गया है कि इन सुधारों से एक नागरिक और मजदूर के रूप में महिलाओं को पुरुषों के मुकाबले कितनी समानता प्राप्त हुई है। जैसा कि आप जानते हैं अधिकांश अल्प विकसित देशों में महिलाएं असंगठित क्षेत्रों में दमनात्मक और शोषित परिवेश में काम करती हैं। इसलिए समाज में उनके विकास और मजबूती के लिए उन्हें विशेष सुरक्षा की आवश्यकता है। इस इकाई में महिला मजदूरों की सामाजिक सुरक्षा, कल्याण, कार्यपरिवेश आदि से जुड़े श्रम कानूनों पर भी प्रकाश डाला गया है। इस इकाई के अंत में श्रम कानूनों के कार्यान्वयन से जुड़ी समस्याओं पर भी विचार किया गया है। इसमें यह बताया गया है कि महिलाओं को समान अधिकार दिलाने वाले और उनकी रक्षा करने वाले ये कानून कितने अप्रभावी हैं।

इकाई 10 में भारत में सामाजिक सुरक्षा प्रदान करने वाले कानूनों और योजनाओं का जिक्र किया गया है और स्त्री-पुरुष समानता प्राप्त करने में इनकी भूमिका पर विचार किया गया है। इसमें न केवल भारत में सामाजिक सुरक्षा आंदोलन पर प्रकाश डाला गया है बल्कि विभिन्न वैधानिक प्रावधानों और सामाजिक सुरक्षा प्रदान करने वाली सरकार समर्थित योजनाओं को भी रेखांकित किया गया है। वस्तुत: इस इकाई में अन्य इकाइयों में वर्णित मुद्दों पर ही चर्चा की गई है। इसमें स्त्री-पुरुष समानता के संदर्भ में व्यक्तिगत कानूनों, फौजदारी कानूनों, श्रम कानूनों और सामाजिक सुरक्षा प्रदान करने वाले कानूनों तथा राजनैतिक कानूनों की चर्चा की गई है।

इकाई 7 कानूनी सुधार और राजनैतिक प्रतिबद्धता : धर्म निरपेक्षता बनाम व्यक्तिगत कानून

रूपरेखा

7.0 उद्देश्य

7.1 प्रस्तावना

7.2 कानून और महिलाओं की हैसियत : ऐतिहासिक परिपेक्ष

7.3 विवाह प्रणालियां

7.3.1 विशेष विवाह अधिनियम 1954

7.3.2 विशेष विवाह से जुड़ी शर्तें

7.4 हिन्दू महिलाएं और उत्तराधिकार

7.4.1 1956 के पहले हिन्दू महिलाओं की स्थिति

7.4.2 1956 के बाद हिन्दू महिलाओं की स्थिति

7.5 मुसलमान महिलाएं और उत्तराधिकार

7.6 ईसाई महिलाओं में उत्तराधिकार

7.7 जीवन-यापन

7.7.1 हिंदू महिलाएं और जीवन-यापन

7.7.2 मुसलमान महिलाएं और जीवन यापन

7.7.3 ईसाई महिलाएं और जीवन-यापन

7.8 सारांश

7.9 शब्दावली

7.10 कुछ उपयोगी पुस्तकें

7.0 उद्देश्य

इस इकाई में भारत की महिलाओं की स्थिति को प्रभावित करने वाले कानूनी सुधारों के कुछ महत्वपूर्ण पक्षों पर विचार किया जाएगा। हमने यहां विवाह, सम्पत्ति और उत्तराधिकार संबंधी कानूनों का उल्लेख करते हुए धर्म निरपेक्षता बनाम कानून का भी मसला उठाया है। इस इकाई को पढ़ने के बाद आप:

- भारत में महिलाओं की कानूनी हैसियत का ऐतिहासिक विवरण प्राप्त कर सकेंगे;
- विभिन्न धार्मिक समुदायों में विवाह से संबंधित विविध कानूनों को जान सकेंगे;
- उत्तराधिकार संबंधी कानूनों के विभिन्न प्रावधानों का परीक्षण कर सकेंगे;
- भारत के विभिन्न धार्मिक समुदायों में रख रखाव से संबंधित कानूनों पर विचार कर सकेंगे।

7.1 प्रस्तावना

भारतीय समाज परम्परागत और आधुनिकता की दुविधा में जकड़ा हुआ है। एक ओर धार्मिक विश्वासों, मूल्यों और परम्पराओं से युक्त भारतीय संस्कृति है तो दूसरी ओर भारत का धर्म निरपेक्ष संविधान है। भारतीय संविधान धर्म निरपेक्षता के प्रति प्रतिबद्ध हैं परंतु भारत में अलग-अलग धर्मों के अलग-अलग व्यक्तिगत कानून हैं जो उनके सामाजिक-सांस्कृतिक दायरे में काम करते हैं। इस इकाई में धर्म निरपेक्षता के प्रति प्रतिबद्धता और हमारे देश के विभिन्न धार्मिक समुदायों के व्यक्तिगत कानूनों के अन्त: संबंधों पर विचार किया गया है। सबसे पहले इस इकाई में हमारे समाज में महिलाओं की कानूनी स्थिति के इतिहास पर विचार किया गया है। हमने खासतौर पर विवाह, उत्तराधिकार और जीवन यापन जैसे क्षेत्रों पर विशेष बल दिया है। आइए, ध्यान से इकाई पढ़ना शुरू करें।

7.2 कानून और महिलाओं की हैसियत : ऐतिहासिक परिपेक्ष

समाज, कानून और सरकार ने हमेशा से महिलाओं के साथ सौतेला व्यवहार किया है। इस भेदभाव की जड़ समाज के सामाजिक धार्मिक व्यवस्था में निहित है। अपने जन्म से ही लड़की को समाज की अवमानना और तिरस्कार झेलना पडता है। सबसे पहले तो लड़की का जन्म लेकर बच जाना ही बड़ी बात होती है। उसके बाद समाज उसकी क्षमताओं के पंख कतरना शुरू कर देता है। परिवार, समुदाय और समाज में उसकी भूमिका सीमित होती है और उसे आगे बढ़ने के कम अवसर प्रदान किए जाते हैं। भारतीय समाज का पितृसत्तात्मक ढांचा महिलाओं के निम्न स्तर के लिए जिम्मेदार है जिस पर विशेष ध्यान देने की जरूरत है। शास्त्रीय हिंदू विधि के अनुसार महिलाओं को समाज में निचला दर्जा दिया गया है। मनु के अुनसार महिलाओं का कोई स्वतंत्र अस्तित्व नहीं है। बचपन में माता-पिता उसकी रक्षा करते हैं, जवानी में पति उसका रक्षक होता है और बुढ़ापे में वह बेटे के संरक्षण में रहती है। बौद्धायन ने भी अपने सिद्धांत में महिलाओं में शक्ति और पराक्रम का अभाव बताया है। केवल कुछ विशेष परिस्थितियों में महिला उत्तराधिकारियों को एक सीमित संख्या में सीमित उत्तराधिकार प्रदान किया गया था। ऋगवेद सभ्यता में कुछ हद तक उच्च जाति और वर्ग की महिलाओं की स्थिति बाद के समाज से बेहतर थी और वे सम्पत्ति के अधिकारिणी भी हो सकती थीं। पत्नी को प्रतिष्ठा दी गई थी और वह धार्मिक अनुष्ठानों में अपने पति के साथ शामिल होती थी।

ऋगवैदिक युग में उच्च जाति और वर्ग की महिलाओं को प्रतिष्ठा प्राप्त थी; उत्तर वैदिक युग में सम्पत्ति प्राप्त करने के अधिकार उनसे छीन लिए गए। यहां तक कि महिलाओं की कमाई भी उसके बेटों और पति की सम्पत्ति मानी गई। हालांकि इस समय महिलाओं को शिक्षा दी जाती थी और वे शिक्षिका के रूप में अध्यापन कार्य भी करती हैं।

बौद्ध काल में भी महिलाओं के लिए शिक्षा पर प्रतिबंध नहीं लगाया गया। वे सार्वजनिक जीवन में हिस्सा लेती थीं परंतु वेद का अध्ययन करने का अधिकार उन्हें नहीं था। गुप्त काल में महिलाओं की स्थिति में काफी गिरावट आई और इसी समय एक संस्था के रूप में दहेज का चलन हुआ। विधवाओं को फिर से शादी करने का अधिकार नहीं था और महिलाएं सम्पत्ति की अधिकारिणी नहीं हो सकती थीं। परंतु इस युग में भी कुछ महिलाओं ने उच्च शिक्षा प्राप्त की थी। 7वीं शताब्दी ई- में सती प्रथा मौजूद थी। आगे आने वाले समय में महिलाओं की स्थिति और भी खराब हुई। लड़कियों का जन्म लेना दुर्भाग्य माना जाने लगा। महिलाएं घर की चारदीवारी में बंद हो गईं और शिक्षा के दरवाजे उनके लिए बंद कर दिए गए। इस युग में बालिका विवाह, बालिका शिशु इत्या, परदा, सती आदि

प्रमुख सामाजिक बुराइयां थीं जिन्होंने महिलाओं की स्थिति बदतर की परंतु मातृत्व का सम्मान होता था और पति, बच्चों तथा घर के प्रति महिलाओं के समर्पण को प्रशंसा की निगाह से देखा जाता था। ध्यान देने की बात है कि महिलाओं को पत्नी और माता का सम्मान देने के पीछे भी पितृसत्तात्मक समाज की एक चाल थी जिसके द्वारा उन्होंने महिलाओं को मातहत बनाकर रखा। उन्हें इन्हीं भूमिकाओं में कैद कर दिया गया और सार्वजनिक जीवन से काट दिया गया।

19वीं शताब्दी के अंत और 20वीं शताब्दी के आरंभ में सुधार आंदोलनों और राष्ट्रीय आंदोलनों के कारण महिलाओं में सामाजिक जागरूकता पैदा हुई। जनवरी 1927 में अखिल भारतीय महिला सम्मेलन की स्थापना हुई। इस सम्मेलन का मुख्य सरोकार महिलाओं के शैक्षिक और सामाजिक कार्य को आगे बढ़ाना था। महात्मा गांधी ने महिलाओं को सार्वजनिक जीवन में आने के लिए प्रोत्साहित किया। इसके परिणामस्वरूप 1930 और 1940 के दशक में मध्यवर्गीय महिलाएं घर से बाहर निकलीं और उन्होंने नौकरी की।

इसके अलावा 19वीं शताब्दी के ब्रिटिश प्रशासन के दौरान उस समय की कुछ सामाजिक बुराइयों को दूर करने का प्रयत्न किया गया। राजा राम मोहन राय जैसे भारतीय सुधारकों की सहायता से सती प्रथा को एक अपराध घोषित कर दिया गया। बालिका शिशु हत्या को भी गैर कानूनी घोषित किया गया। यहां एक बात ध्यान देने की है कि दोनों मामलों में इसे कानून द्वारा समाप्त करने का प्रयत्न किया गया। महिला उत्तराधिकार, विवाह और विवाहित महिलाओं के अधिकारों के संबंध में बनाए गए कानूनों में हिन्दू कानून और ब्रिटिश कानून दोनों को शामिल किया गया। उदाहरण के लिए हिन्दू कानून में पति की सम्पत्ति पर महिला का अधिकार नहीं होता था परंतु नए कानून में महिलाओं के उत्तराधिकार को शामिल किया गया जो आंग्ल सैक्सन से लिया गया था।

19वीं शताब्दी के उत्तरार्ध में भारतीय समाज में महिलाओं की स्थिति सुधारने के लिए कई सुधार किए गए। राजा राम मोहन राय और ईश्वरचंद्र विद्यासागर ने विधवा पुनर्विवाह के लिए आंदोलन छेड़ा और उनके प्रयत्न से 1856 में हिन्दू विवाह पुनर्विवाह अधिनियम पारित किया गया। बम्बई में 1861 में विधवा पुनर्विवाह संघ की स्थापना की गई। इस शताब्दी के आरंभ में सम्पत्ति के उत्तराधिकार और विवाह के संबंध में कई अधिनियम पारित किए गए। विवाह, अधिग्रहण और उत्तराधिकार के संबंध में हिन्दू महिलाओं की स्थिति सुधारने के लिए निम्नलिखित कानून पारित किए गए :

1) हिन्दू उत्तराधिकार कानून, 1929 (संशोधन अधिनियम)
2) हिन्दू महिला सम्पत्ति अधिकार अधिनियम, 1937
3) हिन्दू निर्योगिता निराकरण अधिनियम 1946

भारत के स्वाधीन होने के बाद महिलाओं को समानता प्रदान करने के लिए नए संघर्ष की शुरुआत हुई। संविधान ने कानून के समक्ष समानता और कानून द्वारा समान संरक्षण और अवसर की समानता तथा किसी भी प्रकार के अभेदभाव को मौलिक अधिकार में शामिल कर लिया गया। इसके अलावा 1955-56 में चार कानून बनाए गए जिसके द्वारा शास्त्रीय हिन्दू कानून में निहित महिलाओं के प्रति पूर्वाग्रह को काफी हद तक दूर करने का प्रयास किया गया। ये कानून हैं हिन्दू विवाह अधिनियम 1955, हिन्दू उत्तराधिकार अधिनियम 1956, हिन्दू अल्प संख्यक अभिभावकत्व अधिनियम 1956 और हिन्दू अधिग्रहण और रख रखाव अधिनियम 1956। इन कानूनों का उद्देश्य हिन्दू महिलाओं की हैसियत और भूमिका में परिवर्तन लाना है और उन्हें समानता का दर्जा प्राप्त करना है। परंतु इन प्रयासों की सफलता या असफलता कई बातों पर निर्भर करती है जैसे इस कानून के बारे में लोगों को कितनी जानकारी है और इसे लागू करने वाले अधिकारियों तक इनकी कितनी पहुंच है।

आजादी के बाद बनाए गए प्रमुख अधिनियम निम्नलिखित हैं :

1) विशेष महिला अधिनियम 1954;
2) हिन्दू विवाह अधिनियम 1955;
3) हिन्दू उत्तराधिकार अधिनियम और हिन्दू अधिग्रहण तथा रख रखाव अधिनियम 1956;
4) दहेज निरोधक अधिनियम 1961;
5) मातृत्व लाभ अधिनियम 1961;
6) समान वेतन अधिनियम 1976;
7) फौजदारी कानून संशोधन 1983।

व्यक्तिगत कानून

इस बात को जानना आवश्यक है कि न्यायिक प्रक्रिया से भारत में महिलाओं की सामाजिक हैसियत में कितना बदलाव आया। इधर हाल में कई घटनाएं ऐसी हुई हैं जिसमें महिलाओं के पूर्व प्राप्त अधिकारों को भी छीनने का प्रयास किया गया है। कट्टरपंथी मुसलमान नेताओं के दबाव में आकर एक कानून पारित कर निःसहाय मुसलमान महिलाओं से रख रखाव का अधिकार भी छीन लिया है। इससे राजनैतिक ताकतों और धार्मिक कट्टरपंथियों के बीच सांठगांठ का भी पता चलता है।

इसके अलावा समाज का विभाजन सार्वजनिक क्षेत्र और व्यक्तिगत क्षेत्र के रूप में किया गया है और इसे समाज की वैधता तथा मान्यता भी प्राप्त है। इसलिए परिवार से जुड़े सभी मामले 'व्यक्तिगत' मामले माने जाते हैं और ये व्यक्तिगत कानूनों से नियंत्रित होते हैं। प्रत्येक समुदाय अपने कानूनों द्वारा नियंत्रित होता है परंतु इन सभी कानूनों में एक समानता है कि इनके परिवारों में महिला और पुरुष के बीच असमानता होती है। इन सभी व्यक्तिगत कानूनों में पुरुष परिवार का प्रधान होता है (खासी परम्परागत कानून इसका अपवाद है), वह बच्चों का स्वाभाविक अभिभावक होता है, पुरुष ही उत्तराधिकार का अधिकारी होता है और कानून के तहत पुरुषों और महिलाओं को सम्पत्ति प्राप्त करने का समान अधिकार नहीं होता है। परिवार में व्याप्त इस असमानता के कारण तनाव पैदा होता है जिसे समायोजन की समस्या के रूप में देखा जाता है। विवाह और परिवार जैसी संस्थाओं के जरिए भारतीय महिलाओं का अभी भी शोषण किया जा रहा है जिसका प्रतिबिंबन समाज में उनकी हैसियत के रूप में होता है।

जरा सोचिए 1

व्यक्तिगत कानूनों में महिलाओं की हैसियत निम्नतर है। क्या इसमें कोई बदलाव आया है?

7.3 विवाह प्रणालियां

भारत में हिन्दू आचार संहिता के अनुसार विवाह को संस्कार माना गया है। इसके अनुसार विवाह एक धार्मिक और पवित्र बंधन था और यह हिन्दू आदर्श 'धर्म' को प्राप्त करने का सफल सोपान माना जाता था। धर्मनिष्ठ हिन्दू चार पुरुषार्थ करता था और मोक्ष की प्राप्ति करता था। दुल्हन का चुनाव अपनी जाति से किया जाता था परंतु अपने गोत्र में शादी नहीं की जाती थी। जाति धर्म के साथ जुड़ी थी और हिन्दू सामाजिक संरचना का संबंध जाति और संयुक्त परिवार से था।

1955 के हिन्दू विवाह अधिनियम से पूर्व विवाह का नियम केवल महिलाओं पर लागू होता था। हिन्दू पुरुष एक से अधिक पत्नियां रख सकता था। जिस सामाजिक व्यवस्था में बहु पत्नीत्व स्वीकृत हो वहां स्त्री पुरुष की समानता कैसे रह सकती है। हालांकि भारत में बहु पत्नीत्व की प्रथा थी परंतु अधिकांश स्थितियों में एक पत्नी का ही चलन था।

हालांकि आज की स्थिति में एक से ज्यादा विवाह करना अपराध है परंतु अभी भी हिन्दुओं में एक से

ज्यादा पत्नी रखने की प्रथा मौजूद है। उदाहरण के लिए मणिपुर में यहां तक कि सरकारी नौकर भी जो सरकारी सेवा आचार संहिता से परिचित होते हैं, भी एक से ज्यादा पत्नियां रखते हैं। आर्थिक रूप से स्वतंत्र होने के बावजूद मणिपुर की महिलाएं अपने सामाजिक और वैधानिक अधिकारों को लागू करवाने में सफल नहीं रही हैं। गोवा के राज्यों में निम्न परिस्थितियों में हिन्दुओं में एक से अधिक पत्नी रखने की अनुमति है।

1) यदि पहली पत्नी के 30 वर्ष तक होने तक उससे कोई संतान न हो;

2) यदि पहली पत्नी के 30 वर्ष तक होने तक उससे कोई संतान न हो या पहली पत्नी जो 30 वर्ष से कम हो या 10 वर्षों में उसने गर्भधारण न किया हो;

3) पत्नी से न्यायिक रूप से अलग होने और कोई संतान न होने की स्थिति में।

परंतु प्रथम दो स्थितियों में पहली पत्नी की अनुमति आवश्यक है।

इसी प्रकार इस्लाम में भी बहु पत्नीत्व की अनुमति है। तुर्की, इराक, इरान, सीरिया, इन्डोनेशिया जैसे अनेक मुसलमान देशों ने बहु पत्नीत्व के दुरूपयोग को नियंत्रित करने के कई सुधार लागू किए गए हैं। परंतु अभी तक भारत में मुसलमानों के व्यक्तिगत कानून में संशोधन का कानूनी प्रयत्न नहीं किया गया है जिसके कारण मुसलमान महिलाओं को काफी परेशानियों का सामना करना पड़ता है।

मुसलमान कानून के तहत विवाह एक अनुबंध है जिसका उद्देश्य बच्चे पैदा करना और उन्हें वैधता प्रदान करना है। यह विवाह तभी वैध है जबतक विवाह कानूनों की सभी शर्तों और औपचारिकताओं को पूरा किया गया हो। एक वैध विवाह द्वारा पत्नी को दहेज, रख रखाव आदि का अधिकार प्राप्त होता है और पति पत्नी के बीच परस्पर विरासत का अधिकार प्राप्त होता है। सुन्नियों में अवैध विवाह या तो अमान्य (बातिल) या अनियमित (फ्रासिद) होता है। अमान्य विवाह में किसी प्रकार का अधिकार या दायित्व नहीं होता, बच्चे अवैध माने जाते हैं। अनियमित विवाह का कोई कानूनी आधार नहीं होता और इसमें बोलकर तलाक लिया जा सकता है। बच्चे वैध माने जाते हैं परंतु अनियमित विवाह में पति और पत्नी के बीच परस्पर विरासत का अधिकार नहीं होता। परंतु वैध, अमान्य और अनियमित विवाहों के बीच का अन्तर समाप्त कर दिया गया था और कानून का उल्लघंन करना बड़ा आसान था।

स्वतंत्रता के बाद मुसलमान महिलाओं तक सामाजिक न्याय की थोड़ी बहुत रोशनी भी नहीं पहुंच पाती थी। समुदाय की ओर से कोई मांग न आने पर सरकार खुद मुसलमान कानून में छेड़छाड़ नहीं करती है। इसलिए मोहम्मद गौस के शब्दों में "विवाह और तलाक से संबंधित मुसलमान कानून और वक्फ 'अति मौलिक अधिकार' रहे हैं। (मोहम्मद गौस, "पर्सनल लॉ ऐंड द कांस्टिट्युशन इन इंडिया", इन ताहिर मुहम्मद (संपादन), इस्लामिक लॉ इन मॉडर्न इंडिया; 1972 से उद्धृत अपनी सभी कमियों और कानूनी सीमाओं के बावजूद विशेष विवाह अधिनियम 1964 एक विशेष प्रकार से विवाह करने की छूट देता है जिसका लाभ भारत का कोई भी नागरिक उठा सकता है।

7.3.1 विशेष विवाह अधिनियम 1954

सभी समुदायों के पुरुष और महिलाएं विशेष विवाह अधिनियम 1954 के तहत विवाह कर सकते/सकती हैं। यह अधिनियम 1 जनवरी 1955 में लागू हुआ। जम्मू और कश्मीर को छोड़कर इसे पूरे भारत में लागू किया गया। जम्मू कश्मीर को छोड़कर यह भारत में रहने वाले सभी नागरिकों पर लागू हुआ। इस अधिनियम के अनुसार भारत में रहने वाला कोई भी व्यक्ति और नागरिक और विदेशों में रह रहा भारतीय नागरिक इस अधिनियम के तहत विवाह कर सकता है। इसमें धर्म का कोई बंधन नहीं है। हिन्दू, मुसलमान, ईसाई या किसी भी धर्म का नागरिक इस अधिनियम के तहत विवाह कर सकता है।

इस अधिनियम के तहत विवाह करते समय दोनों पक्षों अर्थात पति पत्नी को इस नियमन के तहत

तलाक, न्यायिक अलगाव, वैवाहिक अधिकार आदि प्राप्त होते हैं। उदाहरण के लिए यदि कोई मुसलमान पुरुष और महिला इस अधिनियम के तहत विवाह करते हैं तो उनके व्यक्तिगत नियमों से उनके समस्या का समाधान नहीं हो सकता है बल्कि इस समस्या का निदान इस अधिनियम के द्वारा ही किया जा सकता है।

7.3.2 विशेष विवाह से जुड़ी शर्तें

इस अधिनियम के तहत निम्नलिखित शर्तों को पूरा करने पर ही विवाह किया जा सकता है :

1) किसी की भी पति या पत्नी जीवित न हो;
2) कोई भी पक्ष
   क) पागल या मस्तिष्क से असमान्य न हो,
   ख) अपनी सहमति देने के काबिल हो परंतु किसी मानसिक संताप से गुजर रहा हो या उसकी स्थिति विवाह करने और संतान प्राप्ति की दृष्टि से उपयुक्त न हो,
   ग) उन पर बार-बार पागलपन के दौरे पड़ते हों,
3) दोनों पक्षों का संबंध अवैध न हो
4) पुरुष की उम्र 21 वर्ष और महिला की उम्र 18 वर्ष होनी चाहिए।

विशेष विवाह अधिनियम 1954 के तहत यह धर्म निरपेक्ष और नागरिक विवाह रजिस्टार के समक्ष सम्पन्न होता है। यह अधिनियम उन सभी भारतीय नागरिकों पर लागू होता है जो अपने किसी भी धर्म के बावजूद इसके प्रावधानों को मानना स्वीकार करते हैं। इसके अलावा विशेष विवाह अधिनियम ने तलाक के नियम और आधार भी निर्धारित किए हैं। कोई भी भारतीय नागरिक इसके तहत विवाह कर सकता है।

जन्म और मृत्यु के पंजीकरण के समान विवाह के पंजीकरण को भी अनिवार्य बना देना चाहिए। इसके अलावा सरकार को तुरंत सामान्य नागरिक संहिता के निर्माण की प्रक्रिया शुरू कर देनी चाहिए जो परिवार में महिलाओं को सामान्य अधिकार दिला सके। इसके तहत महिलाओं को अपने वैवाहिक सम्पत्ति को प्राप्त करने का समान अधिकार प्राप्त होना चाहिए।

ज़रा सोचिए 2

विशेष विवाह अधिनियम की शर्तें क्या हैं?

क्यों भारत में हिन्दुओं के बीच बहु-पत्नीत्व की स्वीकृति है? उदाहरण सहित उत्तर दीजिए।

7.4 हिन्दू महिलाएं और उत्तराधिकार

संयुक्त परिवार के कानून को बिना समझे हुए उत्तराधिकार की समस्या को नहीं समझा जा सकता है। संयुक्त परिवार व्यवस्था खासकर हिन्दू संयुक्त परिवार व्यवस्था के बारे में काफी कुछ लिखा जा चुका है। एक साथ रहना, संयुक्त सम्पत्ति आदि संयुक्त परिवार के कुछ लक्षण हैं। एफ. जी. बैलि, टी. एन मदान जैसे अनुसंधानकर्ताओं ने कुछ संबंधियों के एक साथ रहने और सम्पत्ति-पर समान अधिकार रखने को संयुक्त परिवार के अन्तर्गत मानते हैं। एम.एस.गोरे के अनुसार संयुक्त परिवार में कई वयस्क पुरुष और उनके आश्रित रहा करते हैं इन पुरुष सदस्यों की पत्नियां और छोटे बच्चे इनके आश्रित होते हैं। महिला सदस्यों का कोई अधिकार नहीं होता। वे उत्तराधिकारी भी नहीं होती, उन्हें केवल परिवार में रहने और आश्रितों की तरह भरण-पोषण का अधिकार होता है।

प्रत्येक धर्म के व्यक्तिगत कानूनों के अनुसार महिलाओं के सम्पत्तिगत अधिकार तय किए जाते हैं।

अलग-अलग धर्मों में महिलाओं के उत्तराधिकार के अलग-अलग नियम हैं। यहां तक कि इंग्लैंड में इंग्लिश महिलाओं के सम्पत्ति में समान अधिकार प्राप्त नहीं था और समता अदालतों के पहले उन्हें उत्तराधिकार का अधिकार भी प्राप्त नहीं था।

भारत में महिलाओं को उत्तराधिकार के मामले में दोयम दर्जा प्राप्त है। हिन्दू महिला सम्पत्ति अधिकार अधिनियम 1937, हिन्दू सम्पत्ति वितरण अधिनियम 1916, हिन्दू विरासत अधिनियम 1928, हिन्दू उत्तराधिकार अधिनियम 1925 और कोचिन किश्चन उत्तराधिकार अधिनियम 1902 जैसे विभिन्न सरकारी अधिनियमों के द्वारा इस असमानता को समाप्त करने की कोशिश की गई है।

7.4.1 1956 के पहले हिन्दू महिलाओं की स्थिति

हिन्दू उत्तराधिकार अधिनियम 1956 के पारित होने से पूर्व हिन्दुओं में उत्तराधिकार की दो व्यवस्थाएं मौजूद थीं। एक व्यवस्था के अनुसार जन्म लेते ही बेटे का पिता की पैतृक सम्पत्ति पर अधिकार हो जाता था (मिताक्षर कानून)। पिता अपनी पैतृक सम्पत्ति को किसी दूसरे को नहीं दे सकता था। मिताक्षर कानून के अनुसार पुरुषों का ही सम्पत्ति पर अधिकार होता था। इसके अनुसार बेटे का बेटा और बेटे का पोता जन्म से ही सम्पत्ति के उत्तराधिकारी होते थे। इसमें केवल पुरुषों का ही पैतृक सम्पत्ति पर अधिकार था।

मिताक्षर उत्तराधिकार की एक प्रमुख विशेषता यह थी कि इसमें लोग एक साथ रहते थे, लोगों के हित एक साथ बंधे थे और सम्पत्ति पर सबका संयुक्त अधिकार होता था। जबतक परिवार अविभाजित रहता था तबतक कोई भी उत्तराधिकारी संयुक्त सम्पदा में से अपना व्यक्तिगत अधिकार नहीं मांग सकता था। परिवार में किसी की मृत्यु होने या परिवार में पुरुष सदस्यों के न बढ़ने से उसका हिस्सा बढ़ता जाता था। परिवार का सबसे बड़ा पुरुष कर्ता होता था जो सम्पत्ति की देखभाल करता है। सम्पत्ति का विभाजन कर ही उत्तराधिकारियों का हिस्सा तय किया जाता था। बंगाल और असम में दया भंग व्यवस्था कायम थी जिसमें पिता अपने हिस्से का पूरा मालिक होता था और अपनी सम्पत्ति से किसी को भी वंचित कर सकता था। इन व्यवस्थाओं के अलावा मातृसत्तात्मक व्यवस्था भी थी। यह व्यवस्था अधिकांशत: दक्षिण राज्यों में पाई जाती थी। इस प्रकार आजादी से पहले हिन्दुओं में उत्तराधिकार की कई व्यवस्थाएं मौजूद थीं और उनमें से अधिकांश व्यवस्थाओं में महिलाएं आश्रिता थीं और सम्पत्ति पर उनका अधिकार न के बराबर था। पितृसत्तात्मक हिन्दुओं में विवाह के समय स्त्रियों को स्त्री धन के नाम पर कुछ चल सम्पत्ति लड़कियों को दी जाती थी। ये दो प्रकार के होते थे:

क) स्त्रीधन

ख) महिलाओं की सम्पत्ति

स्त्रीधन का अर्थ होता है परिवार की सम्पत्ति। हिन्दू कानून के अनुसार संबंधियों द्वारा महिलाओं को दिए गए उपहार को स्त्रीधन कहा जाता था। स्त्रीधन पर हिन्दू महिलाओं का पूरा अधिकार होता था। वे इसे बेच सकती थीं, उपहार में दे सकती थीं, गिरवी रख सकती थीं यानि जिस तरह वे चाहें इसे खर्च कर सकती थीं। उनकी मृत्यु होने पर स्त्रीधन उसके उत्तराधिकारियों को मिल जाता था न कि उसके पति के उत्तराधिकारियों को। इसलिए जहां तक स्त्रीधन का सवाल है इस पर हिन्दू महिलाओं को पूरा अधिकार था।

हिन्दू महिलाओं की सम्पत्ति को महिला सम्पत्ति के नाम से भी जाना जाता था। इसे विधवा सम्पत्ति भी कहा जाता था। हिन्दू महिला सम्पत्ति की पूरी स्वामिनी होती थी परंतु इसकी दो सीमाएं थीं।

1) वह इस सम्पत्ति को बेच नहीं सकती थी, और

2) उसकी मृत्यु के बाद यह सम्पत्ति अगले उत्तराधिकारी के पास चली जाती थी।

दूसरे शब्दों में जहां तक सम्पत्ति का सवाल है उसके पास एक सीमित सम्पत्ति होती थी। सम्पत्ति रखने और उसकी देखभाल करने का उसे पूरा अधिकार होता था परंतु वह इसे किसी को दे नहीं सकती थी। अतएव सम्पत्ति और उत्तराधिकार के मामले में हिन्दू महिला की स्थिति संतोषजनक और एकरूप नहीं थी।

7.4.2 1956 के बाद हिन्दू महिलाओं की स्थिति

1956 के हिन्दू उत्तराधिकार अधिनियम के पारित होने के साथ उत्तराधिकार की एकरूप व्यवस्था कायम हुई। किसी हिन्दू पुरुष की मृत्यु होने पर और किसी प्रकार की वसियत न होने पर उसकी सम्पत्ति का बंटवारा बेटे, बेटी, विधवा ओर मां के बीच बराबर किया जाता है। उत्तराधिकार के मामले में पुरुष और महिलाओं का उत्तराधिकार पर समान अधिकार होता है।

मिताक्षर और दयाभंग कानूनों की कुछ प्रावधानों को समाप्त कर इस कानून को सरलीकृत किया गया। दक्षिण भारत में रहने वाले लोगों पर भी यह अधिनियम लागू होता है जिन पर मरूकमकट्टम कानून लागू होता था। इस अधिनियम की अन्य विशेषता यह थी कि हिन्दू महिला का अपनी सम्पत्ति पर पूरा अधिकार होता था और वह इसे अपनी मर्जी के अनुसार उपयोग कर सकती थीं। परंतु पुरुषों से तुलना करने पर महिलाओं का अधिकार अभी भी सीमित था क्योंकि पुरुषों को ही जन्म से उत्तराधिकार का अधिकार मिलता था। इसके कारण बेटे और बेटियों में फर्क किया जाने लगा। यह ध्यान देने की बात है कि हिन्दू कोड बिल 1948 में जन्म से उत्तराधिकार प्राप्ति की सिफारिश की गई। इस अधिनियम की एक खामी और है कि इसमें रिहायशी घर के उत्तराधिकार को लेकर भेदभाव बरता जाता है। इसके अुनसार यदि कोई हिन्दू बिना वसियत किए मर जाता है और उसके घर में परिवार के सदस्य रहते हैं तो जब तक उसके घर का बंटवारा न हो तब तक महिला उत्तराधिकारी अपने हिस्से की मांग नहीं कर सकती है। महिला उत्तराधिकारी को केवल उस घर में रहने का अधिकार है परंतु यह अधिकार अविवाहित, विधवा या परित्यक्ता स्त्री तक ही सीमित है। विवाहित लड़की को यह अधिकार प्राप्त नहीं है (अनुच्छेद 23)।

भारत में आंध्र प्रदेश, तमिलनाडु और महाराष्ट्र जैसे राज्यों में महिलाओं को संयुक्त सम्पत्ति से अलग रखने से कुछ समस्याएं सामने आईं। हिन्दू महिलाओं को समान अधिकार प्राप्त करने के लिए 1956 में हिन्दू उत्तराधिकार अधिनियम बनाया गया जिसने महिलाओं को पुरुषों के समान ही उत्तराधिकार का अधिकार दिया।

जरा सोचिए 3

आजादी से पहले महिलाओं के सम्पत्ति अधिकार की प्रमुख विशेषताएं क्या थीं?

क्या आजादी के बाद भारत की हिन्दू महिलाओं के उत्तराधिकार और सम्पत्ति से संबंधित अधिकार में कोई परिवर्तन हुआ है?

7.5 मुसलमान महिलाएं और उत्तराधिकार

मुसलमान उत्तराधिकार कानून भारत के अन्य देशी व्यवस्थाओं से अलग है। किसी भी महिला को उसके स्त्री होने के कारण उत्तराधिकार से वंचित नहीं किया गया है। महिलाओं को न केवल सम्पत्ति की देखभाल और रख रखाव का अधिकार है बल्कि पुरुषों के समान उसे स्वतंत्र रूप से सम्पत्ति रखने का भी अधिकार है। महिला पुरुषों के समान अपनी सम्पत्ति की पूर्ण स्वामिनी होती है। स्त्रीधन और महिला सम्पत्ति की कोई अवधारणा यहां नहीं है। मुसलमान महिलाओं के पास कुछ सम्पत्ति अधिकार होते हैं पर अपने भाइयों के समकक्ष अधिकार नहीं मिले होते। इस कानून के तहत बेटों को बेटियों की तुलना में दुगना हिस्सा मिलता है। इस प्रकार पुरुष उत्तराधिकारियों को दो

हिस्सा और महिला उत्तराधिकारियों को एक हिस्सा मिलता है। परंतु केवल स्त्री होने के कारण बेटी को सम्पत्ति से वंचित नही किया जाता है। उसका अपनी सम्पत्ति पर पूरा अधिकार होता है। यही नियम विधवा या मां पर लागू होता है। यहां हिन्दू कानून की तरह कोई महिला सम्पत्ति या पुराने इंगलिश कानून के तहत पत्नी की अपंगता जैसी कोई चीज नहीं होती।

भारत में अधिकांश मुसलमान सुन्नी कानून के हनफी सिद्धांत का पालन करते हैं जिसके अुनसार दिवंगत व्यक्ति के उत्तराधिकारियों को तीन समूहों में बांटा जाता है:

1) जव-इल-फुरूज (हिस्सेदार या कुरानी उत्तराधिकार) इसके अनुसार दिवंगत व्यक्ति की सम्पत्ति को 12 भागों में बांटा जाता है। ये हिस्सेदारियां स्थाई रूप से तय नहीं की गई हैं क्योंकि कभी-कभी अन्य हिस्सेदारी के कारण प्रत्येक उत्तराधिकारी पर इसका असर पड़ता है।
2) असब (एक वंश के पुरुष या बचे हुए लोग)- कुछ हिस्सेदार ऐसे भी होते हैं जिन्हें सम्पत्ति के हिस्से से वंचित रखा जाता है।
3) जव-इल-अरहम (नजदीकी संबंधी)-ऐसे उत्तराधिकारी जो न तो हिस्सेदार होते हैं और न ही सम्पत्ति के बचे हुए हिस्से पर उनका अधिकार होता है। ऐसे उत्तराधिकार तीसरी श्रेणी में आते हैं।

सबसे पहले सम्पत्ति पर हिस्सेदारों का दावा होता है। उनके न रहने पर पुरुष वंशजों के पास सम्पत्ति चली जाती है। यदि इनमें से कोई भी मौजूद न हो तो नजदीकी संबंधी का इस पर अधिकार होता है।

शिया उत्तराधिकार कानून के अनुसार उत्तराधिकारियों को दो समूहों में बांटा गया है।

1) रक्त संबंधों पर आधारित उत्तराधिकार, और
2) विवाह द्वारा पति और पत्नी को प्राप्त उत्तराधिकार

दिवंगत की सम्पत्ति पर रक्त संबंधों से जुड़ी महिलाएं अर्थात मां, बेटी, बहन, दादी, चाची और मामी का अधिकार होता है। उन्हें हिस्सेदार कहा जाता है। परिस्थिति के अुनसार उन्हें सम्पत्ति में हिस्सा दिया जाता है। यह इस बात पर निर्भर करता है कि संबंधियों और अन्य हिस्सेदारों की संख्या कितनी है। शियाओं में सुन्नी कानून के समान दूर के संबंधियों की अलग कोई कोटि नहीं है।

जरा सोचिए 4

भारत में मुसलमान महिलाओं के लिए उत्तराधिकार कानून की प्रमुख विशेषताएं क्या है ?

7.6 ईसाई महिलाओं में उत्तराधिकार

ईसाइयों का उत्तराधिकार कानून भारतीय उत्तराधिकार अधिनियम 1925 से परिचालित होता है जिसके अन्तर्गत दो योजनाएं शामिल हैं। एक योजना के तहत भारतीय ईसाइयों, यहूदियों और पारसियों के उत्तराधिकार तय किए जाते हैं।

पहली योजना के तहत विधवाओं और वंशजों को सम्पत्ति में से एक तिहाई हिस्सा मिलता है और लड़के तथा लड़कियों में भेद नहीं किया जाता है। यह कानून बनाया गया कि वंशज के अभाव में विधवा पूरी सम्पत्ति की उत्तराधिकारी होगी। परंतु सबको इस प्रावधान का लाभ नहीं मिल पाता। इसके अलावा केरल और उसके बाहर के ईसाइयों पर अलग-अलग कानून लागू होते हैं। त्रावणकोर और कोचिन ईसाई उत्तराधिकार कानून हिन्दू उत्तराधिकार कानून पर आधारित होता है जिसमें महिलाओं के साथ भेदभाव बरता जाता है। गोवा के ईसाइयों पर अभी भी पुर्तगाली नागरिक संहिता लागू होती है। इसमें महिला-पुरुष के बीच में तो कोई भेद नहीं किया जाता है परंतु विधवाओं को नीची निगाह से देखा जाता है।

हिन्दू कानून के समान पारसियों में भी बिना विरासत की सम्पत्ति के बंटवारे में महिलाओं और पुरुषों के लिए अलग-अलग नियम हैं। पुरुष उत्तराधिकार को महिला उत्तराधिकार से दोगुना हिस्सा मिलता है। मुस्लिम कानून के ही समान पारसी लड़कियों का हिस्सा लड़कों के मुकाबले आधा होता है परंतु इसके बदले में उसे किसी प्रकार की सुरक्षा नहीं प्रदान की जाती। विवाह के साथ-साथ तलाक और उत्तराधिकार व्यक्तिगत कानूनों के अनुसार महिलाओं के रख रखाव के अधिकार भी अलग-अलग हैं।

अनुभव से सीखिए 1

पड़ोस में रहने वाले अपने से दूसरे धर्म के लोगों से बातचीत कीजिए। उनसे पता लगाइए कि उनके यहां उत्तराधिकार के नियम क्या हैं और इसमें महिलाओं की स्थिति क्या है?

7.7 जीवन-यापन

फौजदारी कानून के अनुच्छेद 125 के अनुसार उन व्यक्तियों के खिलाफ तुरंत कार्यवाई की जाती है जो अपनी पत्नी, बच्चे और माता-पिता का जीवन-यापन करने में लापरवाही बरतते हैं या इससे इनकार करते हैं। कुछ परिस्थितियों में निम्न लोग जीवन-यापन का दावा कर सकते हैं :

1) पत्नी-अपना गुजर बसर खुद न कर पाने की स्थिति में अपना गुजर बसर करने के लिए मुआवजा मांग सकती है। यहां 'पत्नी' का तात्पर्य उस महिला से है जिसे या तो तलाक दे दिया गया हो या पति से तलाक़ ले लिया हो परंतु फिर से विवाह न किया हो।
2) बच्चे-वैध या अवैध बच्चे लड़का या लड़की के गुजर बसर के लिए भी मुआवजे का प्रावधान है।
3) मां-जो मां खुद गुजर बसर नहीं कर सकती है उसकी देखरेख का जिम्मा उसके पुत्र का है।

फौजदारी कानून के अनुच्छेद 125 (1) के अनुसार केवल एक पति, पिता, पुत्र या पुत्री क्रमशः अपनी पत्नी, बच्चे, पिता या मां की देखभाल कर सकता है। हिन्दू विवाह अधिनियम 1955 के अनुसार पति या पत्नी दोनों में से कोई यदि तलाक लेते हैं या अलग होते हैं तो निर्वाह के लिए धन की मांग नहीं कर सकता है।

7.7.1 हिन्दू महिलाएं और जीवन-यापन

प्राचीन हिन्दू कानून के अनुसार अपनी पत्नी, बूढ़े माता-पिता और छोटे बच्चों का पालन पोषण करना व्यक्ति का नैतिक दायित्व था। 1956 के हिन्दू अधिग्रहण और जीवन-यापन अधिनियम के अनुसार पत्नी, विधवा भाभी, बच्चे और बूढ़े माता-पिता की देखभाल करना अनिवार्य है।

इस अधिनियम के अनुसार अविवाहित लड़की के लिए भोजन, वस्त्र, आवास, शिक्षा और चिकित्सा तथा शादी का खर्च भी उठाया जाना चाहिए।

एक हिन्दू पति को आजीवन अपनी पत्नी का जीवन-यापन करनी होती है और किन्हीं परिस्थितियों में वह अलग रहती है तो भी वह अपने गुजर बसर के लिए मुआवजे का दावा कर सकती है। इस अधिनियम की धारा 18वें के तहत तलाकशुदा पत्नी को भी मुआवजा प्राप्त करने का अधिकार है। विधवा बहू को अपने ससुर से अपने गुजर बसर के लिए मुआवजा प्राप्त करने का अधिकार है।

7.7.2 मुसलमान महिलाएं और जीवन-यापन

मुआवजा कानून के अन्तर्गत पुरुष पर अपनी पत्नी बच्चों माता-पिता और सौतेले रिश्तेदारों की देखभाल करने का दायित्व है।

मुसलमान कानून के अनुसार यदि पति अपनी पत्नी की देखरेख में लापरवाही बरतता है तो पत्नी उस पर मुकदमा कर सकती है। वह फौजदारी कानून की धारा 125-128 के तहत कानून का दरवाजा खटखटा सकती है और अपने मासिक भत्ते के लिए अपील कर सकती है। परंतु यह विवाहित स्त्री पर ही लागू होता था। तलाकशुदा महिलाएं केवल इद्दत की अवधि अर्थात तीन महीनों तक या बच्चे की पैदाइश होने तक मुआवजे की मांग कर सकती है।

तलाकशुदा मुसलमान महिलाओं की देखरेख के लिए तीन प्रकार के कानून उपलब्ध हैं।

1) मुसलमान व्यक्तिगत कानून
2) फौजदारी कानून के अनुच्छेद 135, और मुसलमान महिला (तलाक के अधिकार संबंधी सुरक्षा) अधिनियम 1986। तलाकशुदा महिला अपने पूर्व पति से केवल इद्दत अवधि में ही गुजर करने का दावा कर सकती है। इद्दत की अवधि तीन महीने या बच्चे की पैदाइश तक माना जाता है।

फौजदारी कानून की धारा 125 के अनुसार पति पर अपनी पत्नी, जिसमें तलाकशुदा पत्नी भी शामिल होती है, के गुजर बसर का दायित्व होता है। सर्वोच्च न्यायालय के अनुसार मुसलमान पत्नी तभी तक गुजर-बसर की हकदार है जब तक उसे उसके व्यक्तिगत कानून के तहत पूरी राशि पहले न मिल चुकी हो। मुहम्मद अहमद खां बनाम शाहबानो मुकदमे में सर्वोच्च न्यायालय ने अपनी यह बात फिर से दुहराई थी और सर्वोच्च न्यायालय ने यह कहा था कि "धारा 125 के तहत प्राप्त अधिकार सांविधिक अधिकार है और यदि व्यक्तिगत कानून के प्रावधान इसके रास्ते में आते हैं तो इस धारा के प्रावधान ही लागू किए जाएंगे।" हालांकि इस अदालत ने यह भी कहा कि धारा 125 के प्रावधानों और पति द्वारा पत्नी के देखरेख करने संबंधी मुसलमान व्यक्तिगत कानून में कोई अन्तर नहीं है।

शाहबानो मुकदमे के इस निर्णय से उठे विवाद के मद्दे नजर मुसलमान महिला (तलाक के अधिकार का संरक्षण) अधिनियम 1986 पारित किया गया। इस अधिनियम के अनुसार एक मुसलमान महिला उसी स्थिति में अपने पूर्व पति से गुजर-बसर का दावा कर सकती है जब पति और पत्नी दोनों इद्दत अवधि के फौजदारी कानून की धारा 125 से लेकर 128 तक के प्रावधानों को मानने के लिए तैयार हो जाएं। अन्यथा पति इद्दत अवधि के बाद अपनी तलाकशुदा पत्नी के गुजर बसर के लिए उत्तरदायी नहीं होगा।

चूंकि धारा 25 में किसी भी धर्म को मानने का मौलिक अधिकार दिया गया है अतः यह तर्क दिया गया है कि व्यक्तिगत कानून ही धर्म के मामले में हस्तक्षेप कर सकते हैं चाहे इसके लिए महिलाओं के हित और अधिकारों की बलि चढ़ानी पड़े और चाहे इस प्रक्रिया में धारा 14 का उल्लंघन हो जाए। शहबानो का मुकदमा और मुसलमान महिला (तलाक के अधिकार का संरक्षण) अधिनियम 1986 को लागू करने में महिलाओं के मुद्दे पर राजनैतिक प्रतिबद्धता की कमी को दर्शाता है। दूसरी ओर इससे राजनैतिक ताकतों और कट्टरपंथियों के बीच साठ-गांठ का भी पता चलता है।

उपर्युक्त विश्लेषण और खासकर शाहबानो मुकदमे से यह स्पष्ट है कि संविधान ने भी पूरी तरह महिलाओं को न्याय और समानता नहीं प्रदान की है।

हिन्दू कानूनों को काफी हद तक परिवर्तित किया गया है। परंतु मुसलमानों और ईसाइयों के विवाह कानूनों को नहीं बदला गया है। मुसलमानों और पारसी महिलाओं को सम्पत्ति अधिकार तो हैं परंतु अपने भाइयों के समान बराबरी का अधिकार नहीं है। अपने अपने कानूनों के तहत लड़कों को लड़कियों की अपेक्षा दुगना हिस्सा मिलता है। हाल-हाल तक सिरियाई ईसाई महिलाएं त्रावणकोर और कोचिन उत्तराधिकार अधिनियम से परिचालित हुआ करती थीं परंतु अब वे भारतीय उत्तराधिकार अधिनियम 1956 से परिचालित होते हैं जिन्हें महिलाओं को सम्पत्ति का समान अधिकार प्रदान किया गया है।

7.7.3 ईसाई महिलाएं और जीवन-यापन

ईसाई कानून में "तलाकशुदा पत्नी को अपनी पति की आय का 25 से 30% धन प्राप्त करने का अधिकार है। तलाक के ठीक पहले के तीन वर्षों में पति की कमाई के आधार पर उसका हिस्सा निर्धारित किया जाता है।" (द लॉ ऐंड इंडियन वुमैन: ए स्टडी बाय द वाइ एम सी ए ऑफ इंडिया, पृष्ठ 20)।

धारा 15 (1) में यह स्पष्ट लिखा हुआ है कि "राज्य किसी भी नागरिक के खिलाफ धर्म, नस्ल, जाति, स्त्री-पुरुष होने, जन्म स्थल या किसी भी आधार पर किसी भी नागरिक के साथ भेदभाव नहीं करेगा" और इसी प्रकार धारा 51 ए (इ) में आश्वासन दिया गया है कि 'महिलाओं के सम्मान को आघात पहुंचाने वाली सभी प्रथाओं का बहिष्कार करना भारत के प्रत्येक नागरिक का कर्तव्य होगा। संवैधानिक वादों को पूरा करने के लिए 2000 ई. तक सभी नागरिकों के लिए एक समान नागरिक संहिता का निर्माण किया जाना चाहिए।

अनुभव से सीखिए 2

विभिन्न धार्मिक समुदायों की महिलाओं से आप बातचीत कर सकते हैं यदि संभव हो तो आप इन महिलाओं (प्रत्येक समुदाय से एक महिला) से उत्तराधिकार के कानून के बारे में पूछ सकते हैं। आप यह भी जानने का प्रयत्न कर सकते हैं कि क्या वे अपने इस अधिकार का प्रयोग कर सकती हैं। इन सूचनाओं के आधार पर आप 'मेरे क्षेत्र में महिलाओं के बीच उत्तराधिकार की स्थिति' शीर्षक लेख तैयार कीजिए। यह अभ्यास करते समय आपको अच्छा लगेगा।

7.8 सारांश

आजादी के बाद भारत में कई प्रकार के कानूनी सुधार किए गए। भारत का संविधान धर्म निरपेक्ष कानून की वकालत करता है और राज्य द्वारा राजनैतिक प्रतिबद्धता के लिए वृहद आधार प्रदान करता है। हमने इस इकाई में आपको बताया कि आजादी के बाद भारत में कई कानूनी सुधार किए गए । इनमें से अधिकांश सुधार विभिन्न धार्मिक समूहों की परम्परागत प्रथाओं से नहीं टकराते हैं परंतु अभी भी भारत सब पर लागू होने वाली नागरिक संहिता नहीं बना सका है। विभिन्न धार्मिक समुदायों के व्यक्तिगत कानून उनके सामाजिक और सांस्कृतिक प्रथाओं को निर्देशित और नियंत्रित करते हैं। विभिन्न धार्मिक समुदायों के बीच विवाह उत्तराधिकार और देख रेख से संबंधित कानूनों में किए गए सुधारों के संबंध में इस इकाई में इन मुद्दों पर विचार किया गया है।

सुधार सतत चलने वाली प्रकिया है। इससे यह पता चलता है कि अभी हमें बहुत आगे जाना है और व्यक्तिगत कानूनों से ऊपर उठने और धर्म निरपेक्ष कानून लागू करने के लिए अभी बहुत प्रयत्न करना होगा।

7.9 शब्दावली

जाति : पदानुक्रम, रोजगार, गरीबी और प्रदूषण के सिद्धांतों पर आधारित देशी सामाजिक समूह।

गोत्र : एक ही कुल के लोग।

संबंधी : एक ही पूर्वज के वंशज।

निर्वाह-धन : अलग होने पर पति द्वारा पत्नी को दिया जाने वाला धन।

एक विवाह प्रथा : एक पति या पत्नी की व्यवस्था।

मातृ संबंध : एक ही माँ के बच्चे।

7.10 कुछ उपयोगी पुस्तकें

गवर्नमेंट ऑफ इंडिया, *नेशनल पर्सपेक्टिव प्लान फॉर वीमेन (एनसीपी) (1988-2000).* नई दिल्ली : ह्यूमन रिसोर्स डेवलपमेंट मिनिस्ट्री.

इकाई 8 महिलाओं के खिलाफ हिंसा के लिए कानूनी सुधार

रूपरेखा

8.0 उद्देश्य

8.1 प्रस्तावना

8.2 महिलाओं के खिलाफ हिंसा: अर्थ और क्षेत्र

- 8.2.1 भारतीय दंड संहिता में अपराध
- 8.2.2 विशेष कानूनों में अपराध
- 8.2.3 महिलाओं के खिलाफ अपराध: कुछ महत्वपूर्ण आंकड़े

8.3 घरेलू हिंसा: कानूनी सुधार की जरूरत

- 8.3.1 कानून की अपर्याप्तता
- 8.3.2 घरेलू हिंसा के लिए कानून बनाए जाने की जरूरत

8.4 दहेज संबंधी समस्याएं

- 8.4.1 दहेज क्या है ?
- 8.4.2 दहेज के लिए दंड
- 8.4.3 फौजदारी कानून में संशोधन
- 8.4.4 दहेज के कारण हुई मृत्यु और भारतीय दंड संहिता
- 8.4.5 भारतीय अभिप्रमाण अधिनियम में संशोधन
- 8.4.6 भारत में दहेज के कारण होने वाली मौतों की स्थिति

8.5 बलात्कार संबंधी कानून

- 8.5.1 बलात्कार में स्वीकारोक्ति
- 8.5.2 दंड
- 8.5.3 फौजदारी कानून विधेयक में संशोधन और मथुरा कांड

8.6 महिलाओं में वेश्यावृत्ति और अवैध व्यापार

- 8.6.1 सिता (SITA)
- 8.6.2 पिता (PITA)
- 8.6.3 वैध बनाने के प्रयत्न
- 8.6.4 कुछ महत्वपूर्ण आंकड़े

8.7 यौन पीड़न और अन्य अपराध

- 8.7.1 यौन पीड़न और छेड़छाड़
- 8.7.2 अन्य अपराध

8.8 सारांश

8.9 शब्दावली

8.10 कुछ उपयोगी पुस्तकें

.0 उद्देश्य

ा इकाई में हम विद्यार्थियों को खासकर महिलाओं के खिलाफ़ किए जाने वाले अपराधों से परिचित राने जा रहे हैं। इसकी चर्चा महिलाओं के खिलाफ हिंसा शीर्षक के अन्तर्गत की जा रही है। ये राध दंडनीय हैं। इस इकाई को पढ़ने के बाद विद्यार्थी:

- "महिलाओं के खिलाफ होने वाली हिंसा" के अर्थ और क्षेत्र की व्याख्या कर सकेंगे;
- "घरेलू हिंसा" की अवधारणा और इसके लिए कानून की आवश्यकता पर विचार कर सकेंगे;
- भारतीय दंड संहिता की विभिन्न धाराओं के तहत विभिन्न दहेज संबंधी अपराधों का विवेचन कर सकेंगे और इनसे सम्बद्ध कानूनों और उनमें किए संशोधनों पर विचार कर सकेंगे;
- बलात्कार, वेश्यावृत्ति, यौनपीड़न और महिलाओं के खिलाफ होने वाली दूसरे प्रकार की हिंसा से संबंधित कानूनों, प्रावधानों और इन प्रावधानों को महिलाओं के पक्ष में करने के लिए उठाए जाने वाले कानूनी कदमों पर विचार कर सकेंगे।

.1 प्रस्तावना

ो दुनिया में हर समाज में महिलाओं के साथ भेदभाव बरता जाता है और उन पर तरह-तरह के याचार किए जाते हैं। इस इकाई में हम कुछ महत्वपूर्ण अपराधों की चर्चा करने जा रहे हैं जिसे हिला के खिलाफ़ हिंसा' के रूप में देख जाता है। इससे सम्बद्ध मौजूदा विधानों की भी चर्चा की एगी। महिलाओं पर केवल इसी प्रकार के अत्याचार नहीं किए जाते बल्कि उनकी हत्या भी की ती है और डाका पड़ने पर उन्हें ही सबसे ज्यादा नुकसान उठाना पड़ता है। इस इकाई में ेलाओं के खिलाफ हिंसा की चर्चा करते समय बालिकाओं के खिलाफ हिंसा पर विशेष ध्यान दिया ा है। भाग 8.2 में महिलाओं के खिलाफ हिंसा के अर्थ और क्षेत्र की व्याख्या की गई है और इसमें रतीय दंड संहिता और विशेष कानूनों के तहत आनेवाले अपराधों के चर्चा करने के साथ-साथ ारे देश में महिलाओं के खिलाफ हिंसा की मौजूदा स्थिति पर भी आंकड़े जुटाए गए हैं। भाग 8. में 'घरेलू हिंसा' की अवधारणा पर विचार किया गया है और इस क्षेत्र में तुरंत कानून बनाए जाने आवश्यकता पर बल दिया गया है। भाग 8.5 में बलात्कार संबंधी कानूनों और उनमें आए वर्तनों की चर्चा की गई है। भाग 8.6 में वेश्यावृत्ति और भारत में महिलाओं द्वारा किए जाने वाले ाध व्यापारों से संबंधित मौजूदा कानूनों की चर्चा की गई है। भाग 8.7 में यौन पीड़न, सती, महिला शु हत्या और भ्रूण हत्या जैसे अपराधों की चर्चा की गई है।

.2 महिलाओं के खिलाफ हिंसा: अर्थ और क्षेत्र

ी व्यक्ति या समूह के द्वारा किसी दूसरे व्यक्ति या समूह पर शारीरिक तौर पर आक्रमण ने को हिंसा कहते हैं। महिलाओं के खिलाफ हिंसा में वे सारी हिंसाएं शामिल होती हैं जिसके णामस्वरूप महिलाओं को शारीरिक, यौनात्मक या मनोवैज्ञानिक नुकसान उठाना पड़े। इस प्रकार कार्यों के लिए धमकाना भी एक अपराध है। सार्वजनिक या निजी जीवन में महिलाओं की स्वतंत्रता नना भी एक अपराध है और महिलाओं के खिलाफ हिंसा मानवीय अधिकारों का उल्लंघन है। ेलाओं के खिलाफ की जानेवाली भावनात्मक हिंसा और अन्य प्रकार की क्रूरताएं भी अपराध हैं सका अन्त आत्महत्या, स्वयं अंग विच्छेदन में होता है। इसके अलावा बीमार महिला की देख ा करना। यौन आधारित परीक्षण करवाना और पर्याप्त भोजन न देना भी कानून की नजरों में राध हैं (कंट्री रिपोर्ट 1995, पृष्ठ 98)।

भारत में महिलाओं को संविधान और अन्य कानूनों के जरिए समानता, स्वतंत्रता, अवसर और संरक्षण के अधिकार प्राप्त हैं। इसके बावजूद पुरुष वर्चस्व वाले समाज, जनसंचार माध्यमों पर हिंसा के प्रचार-प्रसार, गरीबी के परिणामस्वरूप समाज में बढ़ता अपराधीकरण, अज्ञानता और निरक्षरता, वैधानिक प्रावधानों को लागू करने में बरती जाने वाली लापरवाही, बढ़ता उपभोक्तावाद और परम्परागत मूल्यों के कारण महिलाओं के खिलाफ हिंसा की वारदातें बढ़ती जा रही हैं। पिछले दशकों में महिलाओं के खिलाफ हिंसा की घटनाएं तेज हुई हैं। 80 के दशक के अन्त में पूरी दुनिया में महिलाओं के खिलाफ होने वाली हिंसा को लेखन, शोध और बहस का विषय बनाया जा रहा है। अपराधों का पंजीकरण बढ़ा है और महिलाओं के अधिकारों के कानूनी प्रावधानों के प्रति जागरूकता भी फैली है।

पुलिस कर्मियों को स्त्री-पुरुष समानता की जानकारी देना : महिलाओं के खिलाफ होनेवाले अपराधों को रोकने का कारगर तरीका

सौजन्य : सी.एस.आर., नई दिल्ली

भारत में तीन प्रमुख कानूनों के तहत अदालती मुकदमे चलाए जाते हैं:

i) भारतीय दंड संहिता जिसमें विभिन्न प्रकार के अपराधों के लिए दंड देने का प्रावधान है।

ii) फौजदारी कार्य विधि संहिता जिसमें खोजबीन करने और मुकदमा चलाने के लिए कार्य विधि संबंधी नियमों का उल्लेख किया गया है।

iii) भारतीय अभिप्रमाणन कानून में मुकदमे के दौरान पेश किए जाने वाले सबूतों से संबंधित नियमों की चर्चा की गई है। केवल महिलाओं के खिलाफ जो हिंसा किए जाते हैं उन्हें 'महिलाओं के खिलाफ हिंसा' के अन्तर्गत रखा जाता है और इसके लिए विशेष कानून बनए गए हैं। 1989 से भारत सरकार ने राष्ट्रीय अपराध आंकड़ा ब्यूरो के जरिए आंकड़े इकट्ठे किए हैं।

8.2.1 भारतीय दंड संहिता में अपराध

i) बलात्कार (धारा 376 आई पी सी)
ii) अपहरण (धारा 363-373 आई पी सी)
iii) दहेज हत्या या उसके प्रयास (धारा 302/304 बी आई पी सी)
iv) शारीरिक और मानसिक अत्याचार (धारा 498-ए आई पी सी)
v) छेड़छाड़ (धारा 354 आई पी सी)
vi) यौनपीड़न (धारा 509-आई पी सी)
vii) लड़कियों को घंधों में लगाया जाना (21 वर्ष की उम्र तक) (धारा 366 बी आई पी सी)

8.2.2 विशेष कानूनों में अपराध

सती प्रथा, महिलाओं द्वारा अवैध-अनैतिक व्यापार जैसी सामाजिक प्रथाओं को बढ़ावा देना तथा उसमें सहायता पहुंचाना भी दंडनीय अपराध है।

निम्नलिखित धाराओं और कानूनों के तहत महिलाओं को सुरक्षा प्रदान की गई।

i) सती विरोधी अधिनियम (निषेध) 1987
ii) दहेज विरोधी अधिनियम 1961
iii) अनैतिक अवैध व्यापार (निषेध) अधिनियम 1986
iv) महिलाओं के साथ अभद्र प्रस्तुति (निषेध) अधिनियम 1986

(क्राइम इन इंडिया, 1995, नेशनल क्राइम रिकोर्ड ब्यूरो, (एन सी आर बी) मिनिस्ट्री ऑफ होम अफेयर्स, चैप्टर 7, क्राइम अगेन्स्ट विमेन, पृष्ठ 219-240)।

8.2.3 महिलाओं के खिलाफ अपराध: कुछ महत्वपूर्ण आंकड़े

नीचे दी गई तालिका में 1991 से लेकर 1995 तक के बीच में महिलाओं के खिलाफ हुए अपराधों का आंकड़ा प्रस्तुत किया गया है। इससे यह पता चलता है कि महिलाओं के खिलाफ हिंसा में लगातार बढ़ोत्तरी हो रही है और महिलाओं की स्थिति ज्यादा असुरक्षित होती जा रही है। हालांकि इसका कारण यह भी हो सकता है कि अब महिलाओं के खिलाफ हो रहे अपराधों को दर्ज करने की प्रवृत्ति बढ़ी है।

क्रम सं.	अपराध	वर्ष				
		1991	1992	1993	1994	1995
1.	बलात्कार	9,793	11,242	12,351	12,251	13,754
2.	अपहरण	12,300	12,077	11,837	12,998	14,063
3.	दहेज मृत्यु	5,157	4,962	5,817	4,935	5,092
4.	अत्याचार	15,949	19,750	22,064	25,946	31,127
5.	छेड़छाड	20,611	20,385	20,985	24,117	28,475
6.	यौनपीड़ा	10,283	10,751	12,009	10,496	4,754
7.	लड़कियों	167	191	को घंधों में लगाना		
8.	सती (निषेध)	2	27	अधिनियम		
9.	अनैतिक अवैध	7,547	8,447	व्यापार (निषेध) अधिनियम		
10.	महिलाओं का	389	539	अभद्र प्रदर्शन		
	कुल	74,093	79,037	83,954	98,948	1,06,47

स्रोत : क्राइम इन इंडिया, 1995, एन.सी.आर.बी., पृष्ठ 222

महिलाओं के खिलाफ इस प्रकार के दुर्घटनाओं और अपराधों में मध्यप्रदेश सबसे आगे है। इसके बाद राजस्थान, महाराष्ट्र और दिल्ली का स्थान आता है। दमन और दीव, नागालैंड में महिलाओं के खिलाफ अपराध की दर बहुत कम है।

(इस पाठ्यक्रम की इकाई 11 और 12 में दिए आंकड़े देखिए)

जरा सोचिए 1

हमारे समाज में कई प्रकार के अपराध होते हैं। महिलाओं के खिलाफ हिंसा से आप क्या समझते हैं? इनका अन्तर बताइए। क्या आप महिलाओं के खिलाफ हिंसा को वर्गीकृत कर सकते हैं?

8.3 घरेलू हिंसा–कानूनी सुधार की जरूरत

परिवार और घर में महिलाओं और बालिकाओं के लिए भेदभाव के अनेक साधन मौजूद होते हैं। कई बार इस प्रकार हिंसा के मामले दबा दिए जाते हैं और इसकी खबर किसी को नहीं होती। बालिकाओं को शारीरिक, भावनात्मक और यौनात्मक स्तर पर कष्ट झेलना पड़ता है। या तो भ्रूण में ही उनकी हत्या कर दी जाती है या जन्म लेने के बाद उन्हें मार दिया जाता है। कई लड़कियों की शादी छोटी उम्र में कर दी जाती है, उन्हें ससुराल में सताया जाता है। केवल उसका पति ही नहीं बल्कि पूरा परिवार उसे दासी बनाकर रखता है। सुबह बिस्तर छोड़ने से लेकर रात में बिस्तर पर जाने तक उसे लगातार परिश्रम करना पड़ता है। बीमार पड़ने पर सही इलाज नहीं होता और उसके पति से लेकर परिवार के अन्य सदस्य तक उसे गाली-गलौज और मार पीट करते हैं। महिलाओं को अकारण ही पीटा जाता है। छोटी-छोटी बातों पर उन्हें अपमानित किया जाता है जैसे यह बहुत बोलती है, दहेज लेकर नहीं आई आदि। घरेलू हिंसा का संबंध मुख्यत: वैवाहिक हिंसा से ही है और इसमें दहेज तथा दहेज से संबंधी हिंसा की वारदातें सबसे ज्यादा होती है। घर की पवित्रता और मान मर्यादा की रक्षा करने के लिए परिवार के सदस्य ऊंची आवाज में चीख या बोल भी नहीं सकते हैं। घर के भीतर होने वाली सभी घटनाओं को लोग निजी मामला मानते हैं और इस निजता में किसी तरह से हस्तक्षेप नहीं किया जाता (मार्ग "विदिन द फोर वाल्स – ए प्रोफाइल ऑफ डोमेस्टिक व्यालेंस", 1996)

1980 के दशक के आरंभ में भारत के सभी प्रमुख शहरों और नगरों में बलात्कार और दहेज के कारण हुई मौतों के खिलाफ जनता ने विरोध प्रकट किया। महिलाओं ने अपनी चुप्पी तोड़ी और खुद पर होने वाली हिंसा के खिलाफ आवाज उठाई। घरेलू हिंसा के मुद्दे से निपटने के लिए एक विशेष कानून बनाने की मांग उठी परंतु यह दहेज से संबंधित हिंसा तक सीमित रह गई।

8.3.1 कानून की अपर्याप्तता

अभी तक कानून की किताबों में घरेलू हिंसा के लिए कोई खास कानून मौजूद नहीं है। इसमें घरेलू हिंसा से जुड़े नियम और कानून विभिन्न व्यक्तिगत कानूनों के तहत इधर-उधर बिखरे पड़े हैं जैसे घरेलू हिंसा के आधार पर तलाक लिया जाता है या भारतीय दंड संहिता (धारा 498 ए) में स्त्री के खिलाफ उसके पति और संबंधियों की क्रूरता और दहेज के कारण होनेवाली मौतों (धारा 304 बी) का उल्लेख किया गया है। इसी प्रकार भारतीय दंड संहिता (धारा 151) में पीड़ितों को घरेलू हिंसा से सुरक्षा प्रदान की गई है।

इनके अलावा दहेज (निषेध) कानून (1964, 1984, 1986 में संशोधन), सती (निषेध) कानून (1987) और अनैतिक अवैध व्यापार (निषेध) कानून (1950) जैसे विशेष कानूनों के द्वारा महिलाओं को सुरक्षा प्रदान की गई है।

अत: प्रत्येक कानूनी समस्या को अलग-अलग निपटाने की जरूरत पड़ती है। उदाहरण के लिए यदि परिवार का कोई सदस्य किसी महिला से बलात्कार करता है तो इसे धारा 376 आई पी सी के

अन्तर्गत बलात्कार के अन्य मामलों के तरह ही निपटा जाएगा। चूंकि इसे घरेलू हिंसा नहीं माना जाता इसलिए उसे भी अन्य बलात्कारियों के समान दंड दिया जाता है। इसके अलावा शादी के बाद बालिका वधू को कष्ट देने, उसे आत्महत्या करने पर मजबूर करने या बच्चियों का नाम स्कूल से हटा लेने जैसे अपराध से निपटने के लिए कोई कानून नहीं है। इसी प्रकार पति द्वारा किए गए वैवाहिक बलात्कार से निपटने के लिए कोई कानून नहीं है (मार्ग वही, पृष्ठ 56)। कुछ वकीलों ने यह सुझाव दिया कि घरेलू हिंसा से निपटने के लिए कोई कानून न होने की स्थिति में एक महिला इसे दीवानी अदालत में ले जा सकती है परंतु उसके लिए दीवानी अदालत में जाना ज्यादा बेहतर होगा क्योंकि वह अपने हिंस्र पति से तलाक ले सकती है, अपने लिए खर्चे की मांग कर सकती है, अपने लिए खर्चे की मांग कर सकती है, बच्चे को अपने साथ रखने की अपील कर सकती है और अपने उत्पीड़न के खिलाफ निषेधाज्ञा आदेश प्राप्त कर सकती है। "लीगल एंड हैंड बुक I", लावर्स कलेक्टिव, 1992)

अनुभव से सीखिए 1

आपको अपने समाज में होने वाली विभिन्न प्रकार की घरेलू हिंसाओं की अवश्य जानकारी होगी। अपने आस-पास घटी किसी एक प्रत्यक्ष घटना के आधार पर आप हमारे समाज में महिलाओं पर होने वाली घरेलू हिंसा पर एक टिप्पणी लिखिए।

8.3.2 घरेलू हिंसा के लिए कानून बनाए जाने की जरूरत

इस प्रकार घरेलू हिंसा पर खासतौर से कानून बनाने की जरूरत है और कुछ संगठन इस प्रकार के कानून निर्मित करने का प्रयास कर रहे हैं। भारतीय अधिवक्ता समूह ने बहस की शुरुआत करवाने के लिए घरेलू हिंसा पर एक नमूने के तौर पर कानून बनाया है। राष्ट्रीय महिला आयोग ने भी "महिलाओं पर घरेलू हिंसा (निषेध) 1994" विधेयक बनाने का प्रयास किया है ताकि महिलाओं पर होने वाली घरेलू हिंसा को रोका जा सके और उनमें जुड़े विषयों पर कार्यवाई की जा सके (मार्ग वही पृष्ठ 61)।

8.4 दहेज संबंधी समस्याएं

दहेज प्रथा से लड़ने के लिए 1961 में दहेज निषेध कानून बनाया गया पर इसमें काफी खामियां हैं। परंतु इससे दहेज से जुड़े अपराधों को कम नहीं किया जा सकेता।

8.4.1 दहेज क्या है ?

दहेज कानून में दहेज की परिभाषा इस प्रकार दी गई है। (क) विवाह करने वाले किसी भी एक पक्ष से दूसरे पक्ष को प्रत्यक्ष या अप्रत्यक्ष रूप से दी जाने वाली सम्पत्ति या मूल्यवान वस्तुएं या (ख) विवाह के दोनों पक्षों के माता-पिताओं या शादी में शामिल अन्य व्यक्ति द्वारा शादी के बाद या शादी के पहले दी गई मूल्यवान वस्तु।

8.4.2 दहेज के लिए दंड

इस कानून में इस बात का प्रावधान है कि यदि कोई दहेज लेता है या देता है तो उसे अधिकतम छः महीने की कैद या जुर्माना या दोनों दिया जा सकता है। लड़की की माता-पिता से प्रत्यक्ष या अप्रत्यक्ष रूप से दहेज की मांग करना भी अपराध है। इसके लिए भी उपर्युक्त दंड का प्रावधान है; एम. जे. एनोनी लैंडमार्क जजमेंट्स ऑन डाउरी रिलेटेड डेथ्स, इंडियन सोशल इंस्टिट्यूट, 1998 पृष्ठ 1)।

नगद, गहने, कपड़े और अन्य उपहार इस कानून की परिधि में नहीं आते हैं परंतु इन अपराधों को बहुत संगीन नहीं माना जाता है और इसमें आसानी से जमानत मिल जाने से इसका खास महत्व नहीं

रहता (ए. लाविया, वायलेंस अगेनस्ट वुमैन: रिव्यू ऑफ रिसेंट इनऐक्टमेंट्स,इन मुखोपध्याय (संपादन) 1998, पृष्ठ 81-116)।

8.4.3 फौजदारी कानून में संशोधन

80 के दशक के आरंभ में भारत के अधिकांश शहरों में दहेज से हो रही मौतों की बढ़ती वारदातों के खिलाफ जनता ने अपना विरोध दर्ज किया। यह रोग उन क्षेत्रों और समुदायों में भी अपने पैर फैलाने लगा है जहां इसका नामो निशान नहीं था। दहेज से जुड़ी हत्याओं, आत्महत्याओं या मृत्यु के अलावा पत्नी को पीटे जाने उसके साथ क्रूर व्यवहार करने, पीड़ा पहुंचाने और अपमान करने की घटनाएं भी तेजी से बढ़ रही हैं। इसके कारण महिलाओं के समूह ने यह मांग की है कि पत्नी को पीड़ा पहुंचाने को भी अपराध मानना चाहिए। इस मांग को ध्यान में रखते हुए संसद ने फौजदारी कानून (दूसरा संशोधन) अधिनियम 1983 पारित किया जिसमें पहली बार पति या उसके संबंधियों द्वारा किए गए क्रूरतापूर्ण व्यवहार और घरेलू हिंसा को कानून के हद में लाया गया।

इस संशोधित अधिनियम में दंड की अवधि बढ़ाकर पांच वर्ष और जुर्माना 10,000 रुपए तक कर दिया गया। यदि दहेज का मूल्य 10,000 से ज्यादा है तो अपराधी को दहेज का मूल्य लौटाना होगा। इस अपराध को दंडनीय अपराध बना दिया गया और लड़की के माता-पिता, संबंधियों या सामाजिक कार्यकर्ता को लड़की की तरफ से शिकायत दर्ज कराने का प्रावधान रखा गया।

8.4.4 दहेज के कारण हुई मृत्यु और भारतीय दंड संहिता

भारतीय दंड संहिता को संशोधित किया गया और दहेज से हुई मौतों को भारतीय दंड संहिता (एस. 304-बी) में शामिल कर दिया गया। इसके तहत जुर्माना बढ़ाकर 15, 000 रुपए कर दिया गया और अपने को निर्दोष प्रमाणित करना आरोपी का दायित्व हो गया। दहेज लेने या देने को गैर जमानती अपराध बना दिया गया। इस प्रकार के विज्ञापनों पर रोक लगा दी गई। महिलाओं की सम्पत्ति का उत्तराधिकारी उसके बच्चों तथा उसके मां बाप को बनाया गया (लाविना एगनेस, वही पृष्ठ 104-105)।

भारतीय दंड संहिता में संशोधन के साथ-साथ फौजदारी कानून में भी संशोधन किया गया। नई धारा 198 सी आर पी सी के अनुसार यदि कोई महिला या उसके संबंधी कोई शिकायत (पति की क्रूरता के बारे में) दर्ज कराते हैं तो ऐसी स्थिति में धारा 498 आई पी सी के अन्तर्गत फौजदारी अदालत में ये मुकदमा दर्ज किया जाता है तो उसके लिए जुर्माने के साथ-साथ 3 वर्षों की कैद की सजा सुनाई जा सकती है और यह अपराध अदालत की सीमा में आता है। किसी भी महिला की संदिग्ध अवस्था में मृत्यु होने पर पुलिस उसके शरीर को परीक्षण के लिए भेजेगी और खासतौर पर यह तब किया जाता है जब विवाह के सात वर्षों के भीतर कोई महिला आत्महत्या कर लेती है या उसकी मौत अस्वाभाविक ढंग से हो जाती है। महिला के संबंधियों के अनुरोध पर भी या मत्यु के कारण के संबंध में संदेह होने पर पुलिस छानबीन के अलावा मजिस्ट्रेट अपने स्तर पर छानबीन कर सकता है।

8.4.5 भारतीय अभिप्रमाण अधिनियम में संशोधन

भारतीय अभिप्रमाणन अधिनियम (1872) का संशोधन किया गया। यदि अपने विवाह के सात वर्षों के भीतर यदि कोई महिला आत्महत्या करती है तो कानून यह मानकर चलेगा कि इस आत्महत्या के पीछे उसके पति या संबंधियों का हाथ है (धारा 113 ए) या दूसरे शब्दों में आरोपी को यह सिद्ध करना होगा कि वह निर्दोष है। महिलाओं पर होने वाली घरेलू हिंसा के बढ़ते मामलों को रोकने के लिए परिवार अदालत अधिनियम 1984 बनाया गया। इन नए प्रावधानों के अन्तर्गत शिकायतों को निपटाने के लिए 12 राज्यों और संघशासित प्रदेशों में विशेष पुलिस प्रकोष्ठ और महिला पुलिस

स्टेशनों की स्थापना की गई। हालांकि ये अधिकांशत: परामर्श केंद्रों के रूप में काम करते हैं (एन पी पी, 1988, पृष्ठ 101)।

8.4.6 भारत में दहेज के कारण होनेवाली मौतों की स्थिति

दुर्भाग्यवश इन सभी प्रयासों के बावजूद पिछले वर्षों में दहेज से हुइ मौतों और दहेज से संबंधित अन्य अपराधों में लगातार वृद्धि हुई है। 1995 में पूरे देश में हालांकि दहेज से होने वाली मौतों में मात्र (0.6) की वृद्धि हुई थी परंतु कई राज्यों की स्थिति बहुत विकट थी। 1995 में दिल्ली में 1.5, उत्तर प्रदेश में 1.3 और हरियाणा में भी 1.3 की वृद्धि हुई थी। (एन.सी.आर.बी., 1995, पृष्ठ 227) साक्षरता में बढ़ती साक्षरता रोजगार और कानूनी प्रावधानों के बारे में जागरूकता, कठोर कानून, उनके प्रभावी कार्यान्वयन, सामाजिक आंदोलन और महिलाओं के सम्पत्ति अधिकारों को मजबूत बनाने में दहेज से जुड़े अपराधों को कम किया जा सकता है।

इस पाठ्यक्रम की इकाई 12 में इन मुद्दों की और भी जानकारी प्राप्त करेंगे।

> अनुभव से सीखिए 2
>
> दहेज संबधी कानूनों को ध्यानपूर्वक पढ़िए। कुछ लोगों से बातचीत कीजिए और दहेज प्रथा के बारे में उनके विचार जानिए। इसके जारी रहने के कारणों का विश्लेषण कीजिए और यह भी बताइए कि इस प्रथा को कैसे दूर किया जा सकता है।

8.5 बलात्कार संबंधी कानून

बलात्कार महिलाओं के खिलाफ किया जाने वाला एक जघन्य अपराध है। भारतीय दंड संहिता के तहत यह एक संगीन और जमानती जुर्म है जिसमें कड़ी से कड़ी सजा देने का प्रावधान है (धारा 375-376)।

8.5.1 बलात्कार में स्वीकारोक्ति

धारा 375 में बलात्कार की व्याख्या की गई है। जब कोई पुरुष किसी महिला के साथ उसकी इच्छा के विरूद्ध या उसकी सहमति के बिना यौन सम्पर्क स्थापित करता है तो उसे बलात्कार माना जाता है। दबाव और धोखे से प्राप्त सहमति भी सहमति नहीं मानी जाएगी। इसके अलावा यदि किसी की मानसिक स्थिति सही नहीं हो या उसे नशीली दवा खिलाई गई हो तो भी सहमति नहीं मानी जाएगी। 16 वर्ष से कम उम्र की लड़की के साथ सहमति/असहमति से किया गया यौन सम्पर्क बलात्कार कहा जाएगा।

हालांकि 'सहमति' को सिद्ध करना बहुत ही कठिन काम है। बलात्कार के मुकदमों में इसी को आधार बनाया जाता है। कई बार महिलाओं को समर्पण करने के लिए मजबूर किया जाता है और उनके शरीर पर किसी प्रकार के खरोंच या विरोध के निशान नहीं होते जिसे देखकर यह बताया जा सके कि उसमें उनकी 'सहमति' नहीं थी। हम मथुरा मामले का उल्लेख कर चुके हैं। इसी कारण से यह मामला इतना समस्यापूर्ण और विवादास्पद हो गया था। 1860 के कानून में सहमति की उम्र 10 थी जिसे बढ़ाकर 12 वर्ष कर दिया गया था। हालांकि महिलाएं इस उम्र को बढ़ाकर 18 वर्ष करना चाहती थीं। यदि बलात्कार के समय लड़की ने चीख-पुकार नहीं मचाई तो इसका मतलब यह कि वह उसमें शामिल है और यदि लड़की के शरीर पर चोट के निशान नहीं हैं तो 'सहमति' आधार पर आरोपी को मुकदमा जीतने में मदद मिलती है। 'सहमति' के अलावा एक समस्या यह भी है कि अदालत गवाह खोजती है। यह बड़ी ही अजीब बात है क्योंकि आमतौर पर बलात्कार दूसरों की उपस्थिति में नहीं किया जाता है। इसके अलावा पीड़ित महिला और उसके संबंधियों के मार्ग में

समाज और कानून इस प्रकार की बाधाएं उत्पन्न करता है जिससे वे कुंठित महसूस करने लगती हैं। अधिकांश मामलों में लड़की के पिता लड़की की इज्जत बचाने और उसके भविष्य को ध्यान में रखकर शिकायत दर्ज नहीं करवाते।

8.5.2 दंड

भारतीय दंड संहिता की धारा-375 और 376 का संबंध बलात्कार और दंड से है जबकि भारतीय दंड संहिता 376 ए और 378 बी का संबंध अन्य प्रकार के बलात्कारों से है। यदि कोई सरकारी कर्मचारी जैसे जेल अधीक्षक हिरासत में आई किसी महिला के साथ यौन संबंध स्थापित करता है। धारा 376 सी उन प्रबंधकों या चिकित्सकों पर लागू होती है जो अस्पताल में आए रोगियों के साथ अवैध रूप से यौन संबंध स्थापित करते हैं। भारतीय फौजदारी संहिता में वैवाहिक बलात्कार को मान्यता प्रदान नहीं की गई है। 15 साल से कम उम्र की पत्नी के साथ पति द्वारा किया जाने वाला संभोग भी बलात्कार है। 12 से 15 साल की पत्नी के साथ संभोग करने पर 2 वर्ष की सजा का प्रावधान है। बलात्कार के अपराध के लिए कम से कम 7 वर्ष और अधिक से अधिक 10 वर्ष की सजा का प्रावधान है। जबरदस्ती घर में बंद करके सामूहिक रूप से बलात्कार करने के लिए कम से कम 10 वर्ष की सजा का प्रावधान है। यदि कोई पुरुष यह मानता है कि जिसके साथ वह बलात्कार कर रहा है और वह लड़की गर्भवती है या उसकी उम्र 12 वर्ष से कम है तो भी कम से कम उसे 10 वर्ष की सजा हो सकती है (मार्ग 1996 पृष्ठ 95-8)।

इन सभी प्रयासों के बावजूद देश में बलात्कार के मामले लगातार बढ़ते जा रहे हैं। 1991 में 9,793 मामले सामने आए थे, 1995 में यह बढ़कर 13,754 हो गई (देखिए भाग 8.2)। मध्य प्रदेश में यह दुर्घटना सबसे ज्यादा हुई। पूरे भारत में हुए बलात्कारों में से 22.7 प्रतिशत बलात्कार की घटनाएं मध्य प्रदेश में घटित हुई हैं। उत्तर प्रदेश, महाराष्ट्र और बिहार की बारी उसके बाद आती है (एन सी आर बी, 1995, अध्याय 7, 'क्राइम अगेंस्ट वुमैन', पृष्ठ 229)।

8.5.3 फौजदारी कानून विधेयक में संशोधन और मथुरा कांड

1860 के बाद बलात्कार से संबंधित कानूनी किताब में लिखे कानून लगभग अपरिवर्तित रहे हैं। विधि आयोग ने बलात्कार और इससे जुड़े अपराधों पर प्रदत्त अपने 84वें रिपोर्ट में भारतीय दंड संहिता, फौजदारी कार्यवाई और भारतीय अभिप्रमाणन अधिनियम में बदलाव लाने का प्रावधान रखा था। इसके सुझाव के आधार पर सरकार ने बलात्कार से संबंधित कानून में संशोधन किया और फौजदारी कानून (संशोधन) विधेयक 1980 पेश किया जो 1983 में पारित होकर कानून बना (एन पी पी, वही पृष्ठ 136-137)।

मथुरा मुकदमे में सर्वोच्च न्यायालय के विवादास्पद फैसले के फलस्वरूप इन कानूनों के खिलाफ लगातार अभियान के परिणामस्वरूप यह संशोधन हुआ। मथुरा एक 16 वर्षीय जनजातीय लड़की थी जिसके साथ दो पुलिसकर्मियों ने पुलिस अहाते में बलात्कार किया। निचली अदालत ने पुलिसकर्मी को इस आधार पर छोड़ दिया कि मथुरा को यौन संम्पर्क स्थापित करने की आदत लग गई थी। अत: उसके साथ बलात्कार हो ही नहीं सकता था। उच्च न्यायालय ने पुलिसकर्मियों को सजा सुनाई और यह दलील दी कि धमकी से प्राप्त मूक सहमति को सहमति नहीं माना जा सकता। उच्चतम न्यायालय ने उच्च न्यायालय के फैसले को इस आधार पर दरकिनार कर दिया कि मथुरा ने शोर नहीं मचाया और उसके शरीर पर चोट के निशान नहीं थे। इस फैसले के कारण बलात्कार के कानून में बदलाव के लिए आंदोलन शुरू हो गया। उससे यह बात सामने आई कि एक महिला के लिए यह सिद्ध करना बहुत कठिन है कि बलात्कार में उसकी सहमति नहीं थी। आंदोलनकर्ताओं की मांग यह थी कि आरोपी को यह प्रमाणित करना पड़ेगा कि उसने महिला की सहमति से संभोग किया था। महिला के पहले के यौन संबंधों और उसके चरित्र को प्रमाण के रूप में पेश नहीं किया जा सकता (एगनेस एफ, वही पृष्ठ 84-85)।

हालांकि इस विधेयक में पुलिस की ताकत को नियंत्रित करने वाले या महिलाओं के पिछले यौन इतिहास से संबंधित विधि आयोग के सुझावों को शामिल नहीं किया गया। इस मांग को भी आंशिक रूप में और केवल हिरासत में हुए बलात्कार के संबंध में स्वीकार किया गया कि सहमति से संबंधित प्रमाण देने का जिम्मा आरोपी का होना चाहिए। इस संशोधन की प्रमुख विशेषता यह थी कि इसमें एक ऐसी धारा जोड़ी गई जिसमें महिला की सहमति होने के बावजूद हिरासत की स्थिति में उससे स्थापित किए गए यौन संबंधों को दंडनीय अपराध माना गया। हिरासत की स्थिति में किए गए बलात्कार, सामूहिक बलात्कार, गर्भवती महिला के साथ बलात्कार और 12 वर्ष के कम उम्र की लड़की के साथ बलात्कार करने पर कम से कम 10 वर्षों की सजा का प्रावधान रखा गया। इसके अलावा अन्य मामलों में 7 वर्ष की सजा का प्रावधान है।

हालांकि यह पर्याप्त नहीं था परंतु एक प्रगतिशील शुरुआत के रूप में महिला समूहों ने इसका स्वागत किया। परंतु 1989 में सुमन रानी मुकदमे में जो कि हिरासत में किए एक बलात्कार का मुकदमा था, में सर्वोच्च न्यायालय ने जो फैसला सुनाया उससे महिला समूहों को धक्का पहुंचा। सर्वोच्च न्यायालय ने सजा की अवधि 10 से हटाकर 5 वर्ष कर दी और महिला समूहों द्वारा सजा की अवधि कम किए जाने के खिलाफ दायर की गई पुनर्वालोकन याचिका को भी अस्वीकार कर दिया। इसके कारण बलात्कार के मुकदमो में न्यायालय में किए गए फैसलों की प्रवृत्तियों के पुनार्वलोकन की जरूरत महसूस की गई और बलात्कार कानूनों में छूटी कमियों को संशोधित करने और इन कानूनों का कड़ाई से पालन करने की बात सामने आई (एगनेस एफ. वही पृष्ठ 85-6)। इस बात पर विचार करना आवश्यक है कि इस संशोधित विधेयक का प्रभाव क्या पड़ा ? जहां तक दिल्ली का सवाल है यहां बलात्कार के मामलों में ज्यादा फर्क नहीं पड़ा। हिरासत में हुए बलात्कार के मामले प्रमाण के अभाव में या तो वापस ले लिए गए या खारिज कर दिए गए (पिपुल्स युनियन फॉर डेमोक्रेटिक राइट्स, 1994 "कस्टोडियल रेप")।

जरा सोचिए 2

बलात्कार के मामलों से निपटने के लिए क्या मौजूदा कानून पर्याप्त और सक्षम है? चर्चा करें।

8.6 महिलाओं में वेश्यावृत्ति और अवैध व्यापार

वेश्यावृत्ति, देह व्यापार या महिलाओं द्वारा किया जाने वाला अवैध व्यापार महिलाओं के खिलाफ की जाने वाली हिंसा का सबसे खराब रूप है। स्त्री-पुरुष समानता और महिलाओं के विरूद्ध अपराध से संबंधित अनेक कानूनी और संवैधानिक प्रावधानों के बावजूद वेश्यावृत्ति अवैध नहीं है। 64वें विधि आयोग रिपोर्ट में यह कहा गया था कि वेश्यावृत्ति पर पूर्णतः पाबंदी नही लगाई जा सकती है। संभवतः इसलिए क्योंकि भारत में अनादि काल से यह प्रचलित है और कुछ समुदायों में इसे सामाजिक मान्यता प्राप्त है।

8.6.1 सिता (SITA)

1956 में सिता अधिनियम पारित हुआ जिसका उद्देश्य महिलाओं और लड़कियों में अनैतिक, अवैध व्यापार रोकने के लिए वेश्यावृत्ति जैसी सामाजिक बुराई को रोकने का यह पहला प्रयास था। इस अधिनियम का उद्देश्य वेश्यावृत्ति के अड्डे चलाने वाले, संरक्षण देने वाले और दलालों को दंडित करना तथा सार्वजनिक मामलों के आसपास वेश्यावृत्ति को रोकना था। यह अधिनियम पुरुष और महिलाओं पर समान रूप से लागू है। सिता अधिनियम में यौन कार्यकर्ताओं (वेश्याओं) द्वारा ग्राहकों को लुभाने और रिझाने पर दंड देने का प्रावधान है। परंतु ग्राहकों और यौन कार्यकर्ताओं दोनों को वेश्यावृत्ति के लिए व्यक्तिगत रूप से दंड देने का प्रावधान नहीं है। यदि यह कार्य स्वेच्छा से किया जा रहा हो तो भी यह दंडनीय नहीं है। इस अधिनियम का मुख्य उद्देश्य वेश्यावृत्ति को फैलने से रोकना तथा लड़कियों के अवैध व्यापार पर नियंत्रण लगाना है।

हालांकि इस अधिनियम की जो कमजोरियां हैं ये यौन कार्यकर्ताओं पर कुछ ऐसे प्रतिबंध लगाती हैं जिनके कारण वे अस्वास्थ्यकर और गंदे माहौल में रहने के लिए बाध्य होती हैं। सिता की धारा 7 (1) यौन कार्यकर्ताओं के हित के खिलाफ है जबकि इसमें पुरुष पर कोई दंड नहीं लगाया गया है। धारा 8 (ए) के आधार पर पुलिस इन्हें काफी परेशान करती है (एस. सक्सेना, 1995, क्राइम अगेंस्ट वुमैन ऐंड प्रोटेक्टिव लॉ पृष्ठ 259)।

8.6.2 पिता (PITA)

यह अधिनियम अनैतिक अवैध व्यापार के नियंत्रण से संबंधित है। इस अधिनियम में 1978 और 1986 में संशोधन हुआ था। यह महिलाओं और पुरुषों दोनों पर लागू होता है। इसका उद्देश्य पुराने अधिनियम की कमजोरियों को दूर करना था परंतु इसमें भी वेश्यावृत्ति को अवैध घोषित नहीं किया गया। इसकी धारा 2 में वेश्यालय की परिभाषा दी गई है कि ऐसा कोई भी स्थान जहां यौन व्यापार होता हो उसे वेश्यालय माना जाए। इस व्यापक परिभाषा के कारण इस अधिनियम की धारा 3 के कारण वेश्यालयों के मालिकों को दंडित किया जा सकता था। यदि किसी अल्प वयस्क या बच्चे के खिलाफ अपराध किया जाता है तो आजीवन कारावास तक का दंड दिया जा सकता है। इस अधिनियम की धारा 9 में उन लोगों के लिए भी दंड का प्रावधान है जो अपने अभिभावकत्व में रहने वाली महिलाओं या लड़कियों से वेश्यावृत्ति कराते हैं। इस अधिनियम में इस प्रकार के मामले को तेजी से निपटाने के लिए संरक्षणात्मक और विशेष अदालतों की सिफारिश की गई है। इस अधिनियम की धारा 5 के तहत पुलिस और मजिस्ट्रेट को अन्तर-राज्यीय स्तर पर काम करने का अधिकार दिया गया हैं। इस प्रकार के अपराध के लिए न्यूनतम 7 वर्ष और अधिकतम आजीवन कारावास का प्रावधान है (एस. सक्सेना, वही, पृष्ठ 261-64)।

इस अधिनियम में बालिका यौन कार्यकर्ताओं का जिक्र नहीं है। हालांकि वेश्यावृत्ति में लगी लड़कियों के खिलाफ अपराध को रोकने के लिए इसमें कुछ कानूनी प्रावधान हैं। धारा 366 – ए में अवयस्क लड़कियों से शरीर का व्यापार करवाना अवैध माना गया है और धारा 366 बी में उनको इस धंधे में लगाना भी अपराध माना गया है। धारा 372 और 373 में वेश्यावृत्ति के लिए लड़कियों को खरीदना या बेचना जघन्य अपराध माना गया है और इसके लिए 10 वर्ष की सजा और जुर्माना लगाने का प्रावधान है। इस धारा के तहत अल्प वयस्क लड़कियों को अनैतिक धंधों में लगाने वाले, उनके साथ यौन संबंध स्थापित करने वालों को भी दंडित करने का प्रावधान है। धारा 372 अपने माता-पिता और अन्य कानूनी अभिभावकों के खिलाफ भी अल्पवयस्कों को सुरक्षा प्रदान करता है। धारा 373 वेश्यालयों के मालिकों और इससे मुनाफा कमाने वालों के खिलाफ बनाया गया है।

8.6.3 वैध बनाने के प्रयत्न

हाल के वर्षों में पूरी दुनिया में वेश्यावृत्ति को वैध बनाने की मुहिम चल पड़ी। 1997 में कलकत्ता में यौन कार्यकर्ताओं का एक अन्तरराष्ट्रीय सम्मेलन आयोजित किया गया था जहां इस दिशा में प्रयास किया गया था। एक पेशे के रूप में वेश्यावृत्ति को कानूनी बना देने से और वेश्यालयों को यौन कार्यकर्ताओं का दर्जा दे देने से समस्या का कुछ समाधान निकल सकता है। खासतौर पर कानून के बहाने उन पर जो अत्याचार होते हैं उससे मुक्ति मिल जाएगी। परंतु अधिकांश महिला समूह और अन्य सचेत नागरिक इस प्रकार के कदम का विरोध करते हैं क्योंकि उनका मानना है कि इससे असमानता, भेदभाव और महिलाओं के खिलाफ अत्याचार को एक व्यवस्थित रूप दे दिया जाएगा और इसमें और भी वृद्धि होगी।

8.6.4 कुछ महत्वपूर्ण आंकड़े

1994 से लेकर 1995 के बीच "लड़कियों के आयात" में 14.4 प्रतिशत की वृद्धि हुई है। केवल आंध्र प्रदेश और पंजाब में ही पूरे भारत का 47.6 प्रतिशत अपराध (लड़कियों का आयात) होता है।

इसके अलावा जहां तक अनैतिक अवैध व्यापार का संबंध है पूरे भारत का 82.24 प्रतिशत अपराध तमिलनाडु और कर्नाटक में होता है। इस प्रकार के कार्यकलापों को कड़ाई से दंडित करना और यौन कार्यों में लगे बच्चों को जीवन की मुख्य धारा से जोड़ना महत्वपूर्ण है।

जरा सोचिए 3

क्या भारत में वेश्यावृत्ति अपराध है? यह अपराध कैसे बनता है? महिलाओं में अवैध व्यापार को रोकने के लिए कौन से अधिनियम पारित किए गए हैं? लड़कियों के अवैध व्यापार के खिलाफ विशेष वैधानिक प्रावधान क्या है?

8.7 यौन पीड़न और अन्य अपराध

इस भाग में हम यौन पीड़न, छेड़ छाड़ और सती, भ्रूण हत्या तथा महिलाओं के साथ अभद्र व्यवहार जैसे अपराधों की चर्चा करेंगे।

8.7.1 यौन पीड़न और छेड़छाड़

यौन पीड़न और छेड़ छाड़ छोटे अपराध माने जाते हैं परंतु महिलाओं को रोज इसका सामना करना पड़ता है। हालांकि 1994 और 1995 के बीच अखिल भारतीय स्तर पर यौन पीड़न में -7 की दर से गिरावट दर्ज की गई है। परंतु 7 राज्यों और संघ शासित क्षेत्रों में राष्ट्रीय औसत की तुलना में अधिक अपराध दर दर्ज किया गया है। 1994-1995 के बीच भारत में कुल दर्ज हुए यौन पीड़न के मामले में से 55 प्रतिशत मामले तमिलनाडु, महाराष्ट्र और आंध्र प्रदेश से संबंधित थे। इसी अवधि में छेड़छाड़ में 0.4 प्रतिशत की वृद्धि हुई। सबसे ज्यादा बढ़ोत्तरी मध्य प्रदेश तथा उसके बाद सिक्किम, महाराष्ट्र, उत्तर प्रदेश और आंध्र प्रदेश का स्थान आता है जहां 55 प्रतिशत मामले दर्ज किए गए (एन सी आर बी, 1995, पृष्ठ 227-28)

भारतीय दंड संहिता की धारा 509, 294 और 554 में यौन पीड़न से निपटने का प्रावधान है। भारतीय दंड संहिता की धारा 509 के अनुसार महिलाओं को अपमानित करने, अश्लील शब्दों का प्रयोग करने, अश्लील प्रदर्शन करने, अप्रत्यक्ष रूप से फिकरा कसने, महिलाओं की निजता में हस्तक्षेप करने को अपराध माना जाता है और इसके लिए 1 वर्ष की साधारण कैद हो सकती है या जुर्माना लगाया जा सकता है या दोनों सजाएं दी जा सकती हैं। भारतीय दंड संहिता की धारा 294 के अनुसार यदि कोई किसी स्त्री को देखकर अश्लील प्रदर्शन करता है, भद्दे गाने गाता है या सार्वजनिक स्थल पर अभद्र गाने गाता है तो ऐसा करने वाले को 3 महीने की कैद, जुर्माना या दोनों दिए जा सकते हैं। भारतीय दंड संहिता की धारा 354 में शारीरिक रूप से छेड़छाड़ करने वालों को दंड देने का प्रावधान है। धारा 354 के अन्तर्गत यौन पीड़न के लिए दंड देने के लिए दो चीजें प्रमाणित होनी चाहिए : (i) सबसे पहले यह कि यह सिद्ध होना चाहिए कि अपराधी ने महिला का अपमान किया है या उससे जोर जबरदस्ती की है। (ii) यह बदतमीजी जानबूझकर की गई है और इसका उद्देश्य महिला को अपमानित करना है। जबतक यह सिद्ध नहीं हो जाता कि जानबूझकर उस व्यक्ति ने महिला की इज्जत से खिलवाड़ करने की कोशिश की है तबतक महिला अपराध नहीं बनता।

सड़कों, कॉलेजों, बसों और सार्वजनिक स्थलों पर महिलाओं से छेड़छाड़ और शारीरिक दुर्व्यवहार करना आम बात है। इस प्रकार की घटनाएं रोज घटती हैं परंतु बहुत कम घटनाओं की रिपोर्ट दर्ज की जाती हैं और इसमें दंड तो और भी कम लोगों को मिलता है। इसका सबसे बड़ा कारण यह है कि यौन पीड़न और शारीरिक छेड़छाड़ को सिद्ध करना बहुत मुश्किल है।

कुछ स्थितियों में जैसे कार्य स्थल पर होने वाले यौन पीड़न से निपटने के लिए पर्याप्त कानून उपलब्ध नहीं हैं। अभी हाल में ही सर्वोच्च न्यायालय ने अपने एक फैसले में सरकार को कार्य स्थल

पर यौन पीड़न रोकने के लिए कुछ दिशा निर्देश दिए हैं। सर्वोच्च न्यायालय ने सरकार को यह आदेश दिया है कि जब तक संसद इस संबंध में कोई समुचित कानून पारित न कर ले तब तक इसका पालन किया जाए। सर्वोच्च न्यायालय का यह कदम स्वागत योग्य है। राजस्थान में एक सामाजिक कार्यकर्ता के खिलाफ हुए बलात्कार का मुकदमा महिलाओं के एक संगठन ने सर्वोच्च न्यायालय में दायर किया था। सर्वोच्च न्यायालय ने इसी संदर्भ में यह फैसला दिया था। हालांकि कानून अपने आप में समस्याओं का समाधान नहीं है फिर भी महिलाओं को इससे बल तो अवश्य मिलेगा।

8.7.2 अन्य अपराध

नीचे महिलाओं के खिलाफ किए जाने वाले अपराधों का उल्लेख किया जा रहा है।

क) बाल विवाह: 1929 में बाल विवाह पर रोक लगा दी गई थी। इससे बाल विवाह निषेध अधिनियम या शारदा कानून के रूप में जाना जाता है। परंतु भारत के ग्रामीण इलाकों में अभी भी यह प्रथा प्रचलित है। इसी के कारण कम उम्र में ही लड़कियां विधवा हो जाती हैं जिसके फलस्वरूप या तो वे आत्महत्या कर लेती हैं या उन्हें सती होने पर मजबूर किया जाता है और इस घटना को महिमा मंडित किया जाता है।

ख) सती: सती प्रथा में विधवा को पति के साथ जिन्दा जला दिया जाता था। 1829 में इस प्रथा पर प्रतिबंध लगा दिया गया। 1987 में रूप कंवर की हत्या से यह मुद्दा फिर उभर कर सामने आया। उस समय की राजस्थान सरकार और उसके मंत्रियों ने इस घटना को उचित ठहराया और प्रशासन द्वारा इसे समर्थन देना तो बहुत ही खतरनाक था। रूप कंवर की हत्या और उसे सती के रूप में महिमा मंडित करने के खिलाफ पूरे देश में महिला संगठनों ने बड़े पैमाने पर विरोध प्रकट किया। इसके परिणामस्वरूप दिसम्बर 1987 में संसद ने सती (निषेध) कार्यान्वयन विधेयक पारित किया परंतु इस विधेयक में संबंधित महिला समूहों द्वारा किए गए कुछ जरूरी सुझावों को नहीं माना गया, इसमें लिखा गया है कि जो महिला सती होने का प्रयास करेगी उसे धारा 309 के तहत 6 महीने की सजा दी जाएगी। इस विधेयक में इस बात पर ध्यान दिया गया कि आमतौर पर महिलाओं के पास कोई विकल्प नहीं होता और दूसरी बात 'सती' शब्द महिमा मंडित करने वाला शब्द है। अतः इसके लिए ऐसे शब्द का प्रयोग होना चाहिए जिससे यह पता चल सके कि यह जानबूझकर महिला की की गई हत्या है।

ग) स्त्री भ्रूण हत्या: 1970 के दशक में गर्भ में लड़का या लड़की का पता लगाने के लिए एक परीक्षण विधि की खोज हुई। इस विधि की जानकारी होते ही हजारों क्लिनिक खुले जिसमें गर्भ में लड़का है या लड़की यह बताया जाने लगा। यह जानकारी होते ही गर्भ में स्त्री भ्रूण पल रहा है दम्पति गर्भपात करवा लेते थे। गर्भपात को कानूनी मान्यता मिलने के बाद यह और भी आसान हो गया और इसे आधिकारिक तौर पर जन्म नियंत्रण में सहयोगी माना जाने लगा। 1978 और 1984 के बीच गर्भ जांच के बाद लगभग 79,000 स्त्री भ्रूणों का गर्भपात कराया गया।

पूरे देश में कई महिला संगठनों ने इसके खिलाफ आवाज उठाई। सबसे पहले महाराष्ट्र ने इस परीक्षण को अवैध घोषित किया बाद में केंद्र ने भी इसका अनुमोदन किया। इस निर्णय को लेकर काफी विवाद हुआ। एक तरफ अजन्मी बालिका को मारना एक अपराध था तो दूसरी ओर यह व्यक्ति के अधिकार और स्वतंत्रता का हनन था। इस अधिनियम में भी कई कमजोरियां हैं जैसे इसमें यह नहीं लिखा गया है कि किस खास असमानता के लिए यह परीक्षण कराया जाएगा। अतः व्यावहारिक स्तर पर इसका खुला उल्लंघन होता है।

घ) महिलाओं का अपहरण: धारा 366 में महिलाओं के अपहरण तथा जबरदस्ती उससे विवाह करने या अवैध यौन संबंध स्थापित करने वालों से निपटता है। इस धारा के तहत उन व्यक्तियों के खिलाफ भी कानूनी कार्यवाई की जा सकती है जो अपने अधिकार का दुरूपयोग कर महिलाओं

को यौन संबंध स्थापित करने के लिए मजबूर करते हैं। धारा 366 ए और 366 बी में लड़कियों को वेश्यावृत्ति में लगाने को अपराध घोषित किया गया है। 1994-95 के बीच इसमें 14.4 प्रतिशत की वृद्धि हुई। पूरे भारत में जितने मामले दर्ज होते हैं उसमें 47.6 प्रतिशत मामले आंध्र प्रदेश और पंजाब के होते हैं (एन सी आर बी, 1995, पृष्ठ 278)। धारा 373 और 374 में अल्प वयस्क लड़कियों की खरीद बिक्री से ताल्लुक रखता है। 1995 में राष्ट्रीय स्तर पर अपहरण की अपराध दर 1.5 थी जो 1994 की तुलना में .1 प्रतिशत ज्यादा थी। सबसे ऊंची दर राजस्थान में थी जिसके बाद असम, उत्तर प्रदेश और राजस्थान की बारी थी जहां 1995 में 35.2 प्रतिशत मामले सामने आए थे (एन सी आर बी, 1995, पृष्ठ 227-228)।

ड़) महिलाओं की अभद्र प्रस्तुति: धारा 292, 293 और 294 में अश्लीलता के खिलाफ कानूनी कार्यवाई की जा सकती है। इन प्रावधानों के बावजूद विभिन्न प्रकाशनों खासकर विज्ञापनों में महिलाओं की अश्लील प्रस्तुति की प्रवृत्ति बढती जा रही है। 1984 में सरकार द्वारा शुरू की गई योजना के तहत एक अप्रवासी भारतीय सरकारी मिल्कियत वाली राष्ट्रीय फिल्म विकास निगम को भुगतान कर विदेशी फीचर फिल्म का आयात कर सकता है। दो-दो सेंसर नियंत्रण के बावजूद इसके जरिए सेक्स और हिंसा आयातित की गई और जल्द ही यह व्यवस्थित तिकड़म बन गया। अश्लील फिल्में, कैबरे, नृत्य, अश्लील साहित्य से संबंधित पत्रिकाएं धड़ल्ले से बिकने लगीं।

च) इन परिस्थितियों का सामना करने के लिए 1986 में महिलाओं के अभद्र प्रदर्शन (निषेध) अधिनियम के नाम से एक नया कानून बनाया गया। इस अधिनियम से सरकार को इस बुराई को हटाने के लिए बृहद शक्ति प्राप्त हो गई। जैसा कि भाग 8.2 में दिखाया गया है 1994 में महिलाओं के अभद्र प्रदर्शन के 389 मामले दर्ज किए गए थे जो 1995 में बढ़कर 539 हो गए। अर्थात इसमें 38.6 प्रतिशत की वृद्धि हुई। 1995 में आंध्र प्रदेश और महाराष्ट्र में 86.5 प्रतिशत मामले दर्ज हुए (एन सी आर बी, 1995, पृष्ठ 228)।

जरा सोचिए 4

महिलाओं के खिलाफ निम्नलिखित अपराधों पर भारतीय दंड संहिता की कौन सी धाराएं लागू होती हैं ?

क) यौन उत्पीड़न
ख) शारीरिक छेड़छाड़
ग) महिला द्वारा सती होना
घ) महिलाओं का अपहरण
ङ) लड़कियों को धंधे में लगाना
च) वेश्यावृत्ति के लिए अल्प वयस्क लड़कियों की खरीद और बिक्री
छ) अश्लीलता

2) महिलाओं के खिलाफ निम्न अपराधों से संबंधित कानूनों का उल्लेख कीजिए

क) बाल विवाह
ख) महिलाओं में अवैध व्यापार
ग) महिलाओं का अभद्र प्रदर्शन
घ) सती

3) बलात्कार, दहेज से हुई मौत, पति और उसके संबंधियों की क्रूरता/प्रताड़ना, शारीरिक छेड़छाड़, यौन उत्पीड़न, अपहरण, लड़कियों को धंधे में लगाना, अनैतिक अवैध व्यापार और महिलाओं का अभद्र प्रदर्शन जैसे अपराधों में भारत के कौन कौन से राज्य सबसे आगे हैं।

8.8 सारांश

इस इकाई में हमने महिलाओं के खिलाफ होने वाले कई प्रकार के अपराधों का अध्ययन किया। सबसे पहले हिंसा के अर्थ और उसकी व्यापकता पर विचार किया गया (भाग 8.2)। इस इकाई में घरेलू हिंसा (8.3), बलात्कार (8.5), वेश्यावृत्ति (8.6), यौन उत्पीड़न, शारीरिक छेड़छाड़ (8.7.1) और अन्य अपराधों (8.7.2) जैसे बाल विवाह, सती, स्त्री भ्रूण हत्या, अपहरण और महिलाओं की अभद्र प्रस्तुति, की चर्चा की गई। इसके अलावा महिलाओं के खिलाफ होने वाले अपराधों या इससे जुड़े मुद्दों से संबंधित कानूनों की चर्चा की गई है।

8.9 शब्दावली

फौजदारी कानून	:	जांच और मुकदमा के लिए बनाई गई फौजदारी प्रक्रिया।
दंडनीय अपराध	:	वह अपराध जिसके लिए दंड का प्रावधान हो।
स्त्री, शिशु हत्या	:	बच्चियों को मारने की प्रथा। भारत में इस पर प्रतिबंध लगा हुआ है परंतु अभी भी कुछ क्षेत्रों में यह प्रथा प्रचलित है।
भ्रूण हत्या	:	माता के गर्भ में ही शिशु हत्या अर्थात बेटी होने की आशंका होने की स्थिति में गर्भपात आदि।
भारतीय दंड संहिता	:	इसके तहत अपराधों के दंड का प्रावधान किया गया है।
महिला देह व्यापार	:	शारीरिक व्यापार के लिए महिलाओं की खरीद बिक्री।
महिलाओं के खिलाफ हिंसा	:	बलात्कार और दहेज संबंधी आपराधों को खासतौर पर महिलाओं के खिलाफ हिंसा के तौर पर जाना जाता है।

8.10 कुछ उपयोगी पुस्तकें

गवर्नमेंट ऑफ इंडिया, *कन्ट्री रिपोर्ट वर्ल्ड कॉन्फ्रेंस ऑन विमेन*. नई दिल्ली : ह्यूमन रिसोर्स डेवेलप्मेंट मिनिस्ट्री.

मुखोपध्याय, स्वपना (1998) *इन द नेचर ऑफ़ जस्टिस: विमेन ऐंड लॉ इन सोसाइटी*. नई दिल्ली: मनोहर.

मल्टीपल ऐक्शन रिसर्च ग्रुप (मार्ग) (1996) *विदिन द फोर वाल्स: ए प्रोफाइल ऑफ डेवेलप्मेंट वायलेंस*. नई दिल्ली.

गवर्नमेंट ऑफ इंडिया, *नेशनल प्रेस्पेक्टिव प्लान फॉर विमेन (एन पी पी) (1988-2000 ए.डी.)*. नई दिल्ली : ह्यूमन रिसोर्स डेवेलप्मेंट मिनिस्ट्री.

इकाई 9 श्रम कानून

रूपरेखा

9.0 उद्देश्य

9.1 प्रस्तावना

9.2 महिलाओं की काम में भागीदारी और संवैधानिक आश्वासन

- 9.2.1 असंगठित क्षेत्रों में संकेंद्रण
- 9.2.2 दमनात्मक कार्य परिवेश
- 9.2.3 स्त्री-पुरुष समानता के लिए संवैधानिक प्रावधान

9.3 श्रम विधान का विकास

- 9.3.1 आरंभिक औद्योगिक कानून 1891-1911
- 9.3.2 1919 के बाद अन्तरराष्ट्रीय श्रम संगठन के प्रयास

9.4 महिला मजदूर और भारत में नियोजन

9.5 मजदूरी से संबंधित श्रम कानून

9.6 सामाजिक सुरक्षा और कल्याण

- 9.6.1 सामाजिक सुरक्षा और अधिनियम
- 9.6.2 सामाजिक कल्याण के कार्य

9.7 कार्य परिवेश

9.8 श्रम कानूनों के कार्यान्वयन की समस्याएं

- 9.8.1 अप्रभावी सरकारी अधिकारी
- 9.8.2 कानूनी जागरूकता का अभाव

9.9 सारांश

9.10 शब्दावली

9.11 कुछ उपयोगी पुस्तकें

9.0 उद्देश्य

इस इकाई में कुछ ऐसे महत्वपूर्ण श्रम कानूनों की चर्चा की गई है जो कामगार के रूप में भी महिलाओं के हित की सुरक्षा के लिए जरूरी है। इस इकाई को पढ़ने के बाद आप

- महिलाओं की काम में भागीदारी के संदर्भ में कामगार के रूप में महिलाओं के स्त्री-पुरुष समानता के संवैधानिक आश्वासनों को समझ सकेंगे,
- आरंभिक कानूनों और महिला कामगारों के हित में अन्तरराष्ट्रीय श्रम संगठन द्वारा किए गए प्रयासों की व्याख्या कर सकेंगे,
- विभिन्न पंचवर्षीय योजनाओं में महिला कामगारों के लिए अपनाए गए विभिन्न दृष्टिकोणों की परीक्षा कर सकेंगे,

- महिला कामगारों की सामाजिक सुरक्षा, कल्याण, कार्य परिवेश आदि से संबंधित विभिन्न श्रम कानूनों का विश्लेषण कर सकेंगे, और
- इन कानूनों के कार्यान्वयन से जुड़ी समस्याओं की व्याख्या कर सकेंगे।

9.1 प्रस्तावना

इस इकाई में महिला कामगारों के कार्य परिवेश के संदर्भ में विभिन्न श्रम कानूनों और भारत में महिला कामगारों के लिए उपलब्ध संवैधानिक सुरक्षा की जानकारी दी गई है। भारत की महिलाओं को एक नागरिक के रूप में न केवल समान अधिकार प्राप्त हैं बल्कि उनके विकास और शक्ति सम्पन्न होने के लिए उन्हें समाज में विशेष सुरक्षा प्रदान की गई है। परंतु यह आदर्शत: ही सही है व्यवहार में हम यह नहीं पाते हैं। विकास और शक्ति सम्पन्नता के लिए कई संवैधानिक प्रावधान उपलब्ध हैं और इसी के अनुसार कई श्रम कानून भी बनाए गए हैं ताकि महिलाओं के हितों की रक्षा हो सके। इस इकाई में हम इन कानूनों के प्रावधानों पर विचार-विमर्श करेंगे।

हम ऐतिहासिक परिपेक्ष में भारत में श्रम कानूनों के विकास की प्रक्रिया का अध्ययन करेंगे। इस इकाई में अन्तरराष्ट्रीय श्रम संगठन द्वारा महिलाओं की सुरक्षा के लिए किए गए विभिन्न प्रयत्नों की जानकारी दी जाएगी। भारत के विभिन्न पंचवर्षीय योजनाओं में श्रम कल्याण के लिए दिशा निर्देश दिए गए हैं। इस इकाई में इन पर भी संक्षेप में विचार किया गया है। इसके बाद के भागों में विशेषकर विभिन्न श्रम कानूनों और संवैधानिक निर्देशों और प्रावधानों का उल्लेख किया गया है। इस इकाई के अन्तिम भाग में भारत में श्रम कानूनों के कार्यान्वयन की समस्याओं पर विचार किया गया है।

9.2 महिलाओं की काम में भागीदारी और संवैधानिक आश्वासन

जनसंख्या के किसी भी हिस्से का अध्ययन करते समय उसकी आर्थिक स्थिति का अध्ययन करना जरूरी होता है क्योंकि उसी पर उनका अधिकार, भूमिकाएं और आर्थिक गतिविधि में उनकी भागीदारी का अवसर आश्रित होता है'' (भारतीय महिला प्रतिष्ठा समिति : पृष्ठ 148)।

विकसित और विकासशील सभी देशों में महिलाएं आर्थिक गतिविधियों में हिस्सा लेती हैं। शिक्षा, विज्ञान और प्रौद्योगिकी में निरंतर विकास होने के कारण महिलाएं रोजगार के लिए घर से बाहर निकल रही हैं। अभी दुनिया की एक तिहाई श्रम शक्ति महिलाओं की है। यूरोप और उत्तरी अमेरिका में उनका अनुपात सबसे ज्यादा है और एशिया में इनका अनुपात कम है। यहां तक कि खेतिहरों, शिल्पियों और दासोचित सेवाओं से युक्त परम्परागत गांवों में भी परिवार के भरण पोषण में महिलाओं की विशिष्ट भूमिका है। उद्योग में भी उनकी भूमिका महत्वपूर्ण है और औद्योगिक श्रम शक्ति में उनकी पर्याप्त संख्या मौजूद है। इस इकाई में मुख्यत: कारखानों में काम करने वाली महिला मजूदरों की चर्चा की गई है क्योंकि श्रम कानून मुख्य रूप से औद्योगिक श्रम शक्ति के लिए ही बनाए गए हैं।

राष्ट्रीय दृष्टिकोण योजना के अनुसार 'कई वर्षों से भारत में महिलाओं की रोजगार संरचना में कोई परिवर्तन नहीं हुआ।'

1) केवल 14% महिलाओं को पूर्णकालिक रोजगार प्राप्त हैं।
2) इनमें से 90% महिलाएं असंगठित क्षेत्र में हैं और उनमें से 43% महिला मजदूर कृषि और निर्माण कार्य में लगी हैं।
3) 10% से भी कम महिलाएं संगठित क्षेत्र में हैं।

क्या यही आर्थिक गतिविधि है? बस यही!

सौजन्य : प्रो. कपिल कुमार, इग्नू

4) काम करने वाली महिलाओं का अनुपात लगातार घट रहा है और पिछले दो दशकों में यह लगभग स्थिर है। यह भी ध्यान रखा जाना चाहिए कि संगठित क्षेत्र में भी 90% महिलाएं अकुशल या अर्धकुशल कार्यों में लगी हैं। भारत में संगठित क्षेत्र जिसमें सार्वजनिक क्षेत्र और गैर कृषीय निजी प्रतिष्ठान शामिल हैं में, देश के 1/8वें हिस्से से भी कम मजदूर काम करते हैं।

9.2.1 असंगठित क्षेत्रों में संकेंद्रण

जैसा कि पहले बताया जा चुका है ज्यादातर महिलाएं असंगठित क्षेत्र में काम करती हैं और उनमें से अधिकांश दिहाड़ी पर काम करती हैं। इमारत निर्माण के कार्यों में भी पर्याप्त संख्या में महिलाएं दिहाड़ी मजदूरी करती हैं। राष्ट्रीय स्व-रोजगार महिला आयोग के अनुसार 94% महिलाएं ऐसे क्षेत्रों में काम करती हैं जहां उनका काफी शोषण किया जाता है। श्रम बाज़ार परिस्थितियों और मौजूदा सामाजिक - आर्थिक परिवेश में अधिकांश महिलाएं अनौपचारिक, असंगठित क्षेत्र में कार्यरत हैं। यहां उन्हें कम वेतन मिलता है, ज्यादा देर तक काम करना पड़ता है। निम्न कौशल और रोजगार सुरक्षा का अभाव इस क्षेत्र के रोजगार की विशेषता है। उत्पादकता का स्तर निम्न है। महिलाओं को संगठित करना और उन्हें जागरूक श्रम शक्ति के रूप में एकजुट करने वाले मजदूर संगठनों की कमी है।

असंगठित क्षेत्र में श्रम शक्ति की इस नाजुक क्षेत्र का फायदा संगठित क्षेत्र उठाता है। बड़े उद्योग अपने उत्पादन को छोटे स्तर पर उत्पादन करने वाली पंजीकृत इकाइयों को सौंप देते हैं। इससे उन्हें मुनाफा होता है। बिजली से चलने वाले करघा उद्योग इसका एक उत्तम उदाहरण है जहां शिल्पी और कामगार स्वतंत्र उत्पादक नहीं हैं परंतु उन्हें प्रति टुकड़े की दर के हिसाब से रोजगार मिला हुआ है या अग्रिम राशि द्वारा इन्हें नियंत्रित किया जाता है या बड़ी औद्योगिक इकाइयों के आदेश की आपूर्ति के लिए काम करते हैं (श्रम शक्ति : पृष्ठ 8-9)।

संगठित या असंगठित दोनों क्षेत्रों में महिला मजदूरों को कई प्रकार की कठिनाइयों का सामना करना पड़ता है जिसके कारण कामगार के रूप में उनकी हैसियत निम्न हो जाती है। सामाजिक और श्रम विधानों की अनुपस्थिति या उन्हें लागू किए जाने की कमी के कारण महिलाओं को आधारभूत रोजगार लाभ नहीं प्राप्त हो पाता।

9.2.2 दमनात्मक कार्य परिवेश

पर्याप्त सुरक्षात्मक कानूनों के अभाव और मौजूदा कानूनों को लागू किए जाने की अपर्याप्तता के कारण महिला मजदूरों को असंगठित क्षेत्र में दमनात्मक कार्य परिवेश में काम करना पड़ता है। हालांकि नौकरियों में महिलाओं के शोषण को समाज में हो रहे शोषण से अलग करके नहीं देखा जा सकता। मई 1979 में विकास में महिलाओं की भूमिका पर गुटनिरपेक्ष और अन्य विकासशील देशों के सम्मेलन में यह बात उभर कर सामने आई कि:

"महिलाओं के दमन और असमान स्थिति की जड़ें गहरी जमी हुई हैं। गरीबी, संसाधनों और शक्ति का असमान वितरण और उपयोग इसका प्रमुख कारण है। इसके अलावा दमनात्मक सामाजिक ढांचा और रूढ़िवादी विचार जो सभी प्रकार की असमानताओं को बढ़ावा देता है काफी हद तक जिम्मेदार है।"

भारत में महिलाओं की समस्याएं कई प्रकार की हैं। इनमें 85% महिलाएं ग्रामीण क्षेत्र में रहती हैं। उनका जीवन, आजीविका और हैसियत काफी हद तक कृषि, जल, संसाधन, वन, भूमि वितरण और उपयोग से संबंधित नीतियों और कृषीय, औद्योगिक और प्रौद्योगिकी नीतियों के परिणामस्वरूप पैदा होने वाले रोजगारों पर निर्भर है। गरीब ग्रामीण महिलाएं खासकर अनुसूचित जाति और अनुसूचित जनजाति की महिलाओं पर यह विशेष तौर पर लागू होता है।

सरकार की मौजूदा औद्योगिक और आर्थिक नीतियों से जनता के समक्ष आर्थिक संकट पैदा हो रहा है और इसमें भी महिलाएं सबसे ज्यादा प्रभावित हो रही हैं। अध्ययनों से पता चलता है कि आधुनिकीकरण और मशीनीकरण से कई क्षेत्रों में महिलाओं को दरकिनार किया जा रहा है। इस बात के भी प्रमाण मिलते हैं कि कृषीय आधुनिकीकरण, औद्योगिक विकास की नीतियों में भी स्त्री-पुरुष असमानता को बढ़ाने वाले तत्व शामिल हैं।

सरकार द्वारा रस्सी, बीड़ी, माचिस, वस्त्र, तम्बाकू, कोयला खानों और अन्य उद्योगों के आधुनिकीकरण किए जाने से बड़ी मात्रा में महिला मजदूर बेरोजगार हो रही हैं। 1974 और 1981 के बीच बिजली से चलने वाले करघों के लगने से 28.64 लाख मजदूर बेरोजगार हुए जिसमें 14 लाख महिलाएं थीं। कपड़ा उद्योग जूट और खनन उद्योगों में महिलाओं का रोजगार 60% से घटकर 30% हो गया। इलेक्ट्रोनिक, फर्मासूटिकल और भारी उद्योगों के क्षेत्र में इसमें लगभग 50% की कमी आई। छंटाई की प्रवृत्ति रेलवे, बैंक, बीमा और डाक तथा तार विभाग में भी उभर कर सामनें आ रही है (रोजगार कार्य दल : पृष्ठ 58)।

इसलिए सम्पूर्ण राष्ट्रीय विकास की योजना बनाते समय महिलाओं के विकास पर ध्यान देना जरूरी है। यदि इन दोनों में अन्तरविरोध होगा तो विकास संभव नहीं है। इसलिए विभिन्न मौजूदा श्रम कानूनों और उनमें किए जाने वाले संशोधनों को इसी बृहद उद्देश्य और हमारे संविधान के उद्देश्य के परिप्रेक्ष्य में देखा जाना चाहिए जो सभी नागरिकों को सामाजिक-आर्थिक, राजनैतिक न्याय और अवसर की समानता प्रदान करता है। भारत में महिला मजदूरों से संबंधित श्रम विधानों को समझने के लिए भारतीय संविधान में उल्लिखित विभिन्न प्रावधानों को समझने का प्रयास करना चाहिए।

9.2.3 स्त्री-पुरुष समानता के लिए संवैधानिक प्रावधान

जैसा कि इकाई 4 और 5 में बताया जा चुका है कि हमारे समाज में महिलाओं के खिलाफ बरते जाने वाले भेदभाव को देखते हुए भारत के संविधान में महिलाओं के हित की रक्षा के लिए कई प्रकार के

प्रावधान किए गए हैं और इसके साथ-साथ कार्य स्थल पर स्त्री-पुरुष भेदभाव पर भी प्रतिबंध लगाया गया है। महिलाओं की विशिष्ट सामाजिक और जैविक उत्तरदायित्वों के कारण और कानून में विशेष स्थान दिया गया है।

संविधान के उद्देश्य में यह स्पष्ट रूप से लिखा गया है कि संविधान सभी नागरिकों (स्त्री-पुरुष) को सामाजिक, आर्थिक और राजनैतिक न्याय दिलवाने के साथ-साथ समानता की स्थिति और अवसर प्रदान करने का वचन देता है। राज्य के नीति निर्देशक सिद्धांतों के निम्नलिखित पक्ष उल्लेखनीय हैं।

क) नागरिकों (पुरुषों और स्त्रियों) को आजीविका के साधनों पर समान अधिकार

ख) पुरुषों और महिलाओं के लिए समान कार्य के लिए समान वेतन

ग) पुरुषों और महिला मज़दूरों के स्वास्थ्य और सामर्थ्य के अनुसार काम करवाना, कच्ची उम्र के बच्चों से काम न करवाना और, नागरिकों की आर्थिक जरूरत का फायदा उठाकर उनके उम्र और शक्ति से ज्यादा काम न लेना।

घ) बेरोजगारी, बुढ़ापे, बीमारी, अपंगता और अन्य किसी भी अनपेक्षित मामलों में राज्य अपनी आर्थिक क्षमता और विकास की सीमा पहचानते हुए कार्य, शिक्षा और जन सहयोग का अधिकार मुहैया करवाने का प्रयत्न करेगा।

ङ) राज्य महिलाओं के लिए उपयुक्त और मानवीय माहौल बनाने का प्रयत्न करेगा और गर्भवती महिलाओं का विशेष ध्यान रखा जाएगा।

च) राज्य उपयुक्त विधान, आर्थिक संगठन या अन्य किसी तरीके से सभी प्रकार के मजूदरों जैसे कृषीय, अद्योगिक या दिहाड़ी पर काम करने वाले मजदूरों के कार्य परिवेश, जीवन स्तर, मनोरंजन के स्तर और सामाजिक तथा सांस्कृतिक स्तर उपलब्ध करांने का प्रयत्न करेगा।

राष्ट्रीय जीवन और विकास के सभी क्षेत्रों में महिलाओं की भागीदारी और अवसर की समानता का अधिकार भारतीय राजनैतिक परम्परा का आधारभूत सिद्धांत है। राष्ट्रीय स्वतंत्रता आंदोलन के नेताओं ने 1931 में मौलिक अधिकारों के ऐतिहासिक प्रस्तावों में इसे स्वीकार किया था और भारत सरकार ने 1974 में भरतीय महिला प्रतिष्ठा समिति की नियुक्ति करते समय यही प्रस्ताव दुहराया था। देश के बदलते सामाजिक और आर्थिक परिवेश और महिलाओं के विकास से जुड़ी नई समस्याओं के संदर्भ में महिलाओं के अधिकारों की स्थिति की समीक्षा करने के अलावा समिति से यह आग्रह किया गया कि वह इस प्रकार के उपाय बताएं जिससे महिलाएं राष्ट्र निर्माण में पूर्ण और समुचित भूमिका निभा सके।

जरा सोचिए 1

आपने उन दमनात्मक परिस्थितियों का अध्ययन किया जिसके अन्तर्गत समाज की आर्थिक गतिविधियों में महिलाओं को शामिल होना होता है। यह भी महसूस किया गया कि महिला मजदूरों को सुरक्षा प्रदान करने के लिए कुछ कानून बनाए जाने चाहिए। इस दिशा में संवैधानिक निर्देश क्या है?

1.3 श्रम विधान का विकास

हालांकि अधिकांश श्रम कानून आजादी के बाद बनाए गए हैं परंतु इसकी शुरुआत 1833 में हो गई थी। 1833 में दास प्रथा के उन्मूलन के बाद ब्रिटिश उपनिवेशों में विभिन्न प्रकार के अनुबंधों के तहत भारतीय मजदूरों को लाया गया। इसके बाद ही 1837 में पहला श्रम कानून बना।

9.3.1 आरंभिक औद्योगिक कानून: 1891-1911

भारत के आरंभिक श्रम कल्याण कानूनों का संबंध मुख्य रूप से बच्चों और महिलाओं के रोजगारों को नियमित करने से है। कार्य परिवेश, स्वास्थ्य और कल्याण की स्थिति सुधारने की अपेक्षा सुरक्षा पर उनका ज्यादा जोर है। 1890 में बर्लिन में आयोजित प्रथम अन्तरराष्ट्रीय श्रम सम्मेलन ने अन्य सुझावों के अलावा महिला और बाल श्रम के नियमन का भी सुझाव दिया। ब्रिटिश नियोक्ताओं के बल देने पर कि बर्लिन सम्मेलन के सुझावों को भारत में अमल में लाया जाए, भारत सरकार ने कारखाना आयोग स्थापित किया जिनके सुझावों पर 1891 में भारतीय कारखाना (संशोधन) अधिनियम पारित हुआ। इस संशोधन अधिनियम में सभी मजदूरों के लिए साप्ताहिक छुट्टी और काम के बीच में आराम का प्रावधान रखा गया।

औद्योगिक क्रांति के साथ आधुनिक औद्योगिक युग का आरंभ हुआ जिसके फलस्वरूप महिलाओं के दिए जाने वाले कार्यों में पूर्णत: परिवर्तन हो गया। औद्योगिक क्रांति के प्रौद्योगिकी परिवर्तनों के फलस्वरूप उत्पादन की प्रक्रिया पूरी तरह रूपांतरित हो गई। इसके फलस्वरूप भारतीय अर्थव्यवस्था के आधार कुटीर और ग्रामीण उद्योग नष्ट हो गए। बेरोजगार ग्रामीण शिल्पी शहरों को चले गए। वे शहरी मजदूर वर्ग में शामिल हो गए। आर्थिक मजबूरी के कारण शहरी मजदूर वर्गों और कारीगरों की महिलाएं कारखानों, मिलों और, खानों में अकुशल मजदूरों के रूप में काम करने लगीं। आर्थिक परिदृश्य परिवर्तित होने से अधिकांश महिलाएं अपने परिवार की आय बढ़ाने के लिए घर से बाहर काम करने लगीं।

छोटी इकाइयों में काम करती हुई – क्या ये आर्थिक दृष्टि से सुरक्षित हैं?

सौजन्य : सी.एस.आर., नई दिल्ली

भारत में औद्योगिक विकास के आरंभिक चरण में महिला और बाल मजदूरों को अस्वास्थ्यकर माहौल में लंबे समय तक काम करना पड़ता था और उन्हें मजदूरी भी कम मिलती थीं। 1891 में पहला कारखाना अधिनियम बना। इसके बाद 1911 में इसमें संशोधन किया गया। इसमें महिलाओं और बच्चों के काम करने के घंटे और कार्य परिवेश को कानून के घेरे में लिया गया। उद्योग में महिलाओं की रुचि को देखते हुए काम दिया जाता था जैसे कपड़ा उद्योग में बुनाई और कताई तथा जूट उद्योग में रस्सी बनाने में लगाया जाता था।

1905 में, अन्तरराष्ट्रीय श्रम संगठन के अग्रदूत श्रम कानून संघ ने बर्न में सम्मेलन का आयोजन किया और काम के घंटे तथा कारखाना मजदूरों के कार्य परिवेश के संबंध में कई सुझाव दिए। इन सुझावों के परिपेक्ष में ब्रिटेन में कई लोगों ने भारत में कारखाना कानून को विस्तारित करने के लिए आंदोलन किया। 1906 में भारतीय कपड़ा समिति और 1907 में कारखाना आयोग स्थापित किया जिनके सुझावों पर 1911 में कारखाना अधिनियम पारित किया गया। इस नए संशोधित अधिनियम द्वारा काम करने के घंटे का निर्धारण कर दिया गया जिसका उल्लेख नीचे किया जा रहा है:

पुरुषों, महिलाओं और बच्चों की कार्य-अवधि

मजदूरों के प्रकार	कपड़ा कारखाने	अन्य कारखाने
पुरुष	12 घंटे प्रतिदिन	कोई बंधन नहीं
महिलाएं	12 घंटे प्रतिदिन	11 घंटे प्रतिदिन
बच्चे	6 घंटे प्रतिदिन	7 घंटे प्रतिदिन

(इम्पीरियल गजट ऑफ इंडिया 1908, वॉल्यूम 3, पृष्ठ 197)

इस संशोधित अधिनियम में महिलाओं और बच्चों के लिए रात में काम करने और कुछ खतरनाक कार्य करने पर रोक लगा दी गई।

9.3.2 1919 के बाद अन्तरराष्ट्रीय श्रम संगठन के प्रयास

1919 में अन्तरराष्ट्रीय श्रम संगठन की स्थापना की गई जो श्रम के क्षेत्र में एक विशेषीकृत अभिकरण था। अन्तरराष्ट्रीय स्तर पर संगठन ने 'कानून और महिलाओं के कार्य' शीर्षक से अध्ययन किया जिसमें महिलाओं के रोजगार संबंधी कुछ विशेष समस्याओं का जिक्र किया गया था।

क) जब कोई महिला शारीरिक श्रम करती है तो न केवल उसे बल्कि उसके भावी पीढ़ी को एक खास खतरे का सामना करना पड़ता है।

ख) नौकरी करने के अलावा उसे घर के सैकड़ों काम करने पड़ते हैं जैसे घर के काम काज, बच्चों की देखभाल, परिवार के सदस्यों के कपड़े की मरम्मत आदि।

अन्तरराष्ट्रीय श्रम संगठन की इस रिपोर्ट में यह भी बताया गया है कि यदि सामाजिक सुरक्षा के कुछ उपाय नहीं किए गए तो कामकाजी महिलाओं पर काफी बुरा असर पड़ेगा। कुछ हद तक उसका ध्यान मजदूरों के सामूहिक हित से भटक जाएगा और वह मजदूर संघ के आंदोलन में सक्रिय भूमिका नहीं निभा सकेगी। मौजूदा परिस्थिति उसके रोजगार संबंधी मूल्य को कम कर देगी और एक मजदूर के रूप में अपने हितों की रक्षा करने की इसकी क्षमता भी कम हो जाएगी (प्रस्तावना पृष्ठ VIII और IX)।

रॉयल कमीशन ऑफ लेबर ने 1931 में अपनी रिपोर्ट में मौजूदा कानून में कई कमियां गिनाईं थीं और इनमें संशोधन का सुझाव दिया था। तदनुसार कारखाना अधिनियम 1934 बनाया गया जो कल्याण कानून के विकास के इतिहास में मील का पत्थर साबित हुआ। द्वितीय विश्व युद्ध और उसके

बाद इस अधिनियम में जरूरत पड़ने पर संशोधन किया गया। बाद में 1948 में इसके स्थान पर एक नया कारखाना अधिनियम बनाया गया।

महिलाओं के काम और उनके रोजगार से महिला श्रमिकों की अनेक सामाजिक-आर्थिक समस्याएं सामने आईं। अन्तरराष्ट्रीय श्रम संगठन ने महिला और पुरुष मजदूरों के लिए अन्तरराष्ट्रीय मानदंड बनाए परंतु कुछ कानून केवल महिला मजदूरों की सुरक्षा के लिए बनाए गए। जैसे अन्तरराष्ट्रीय श्रम संगठन ने यह सुझाव दिया कि महिलाएं रात में कारखानों में काम नहीं करेंगी। वे 10 बजे रात से लेकर 3 बजे सुबह तक काम पर नहीं लगाई जाएगीं।

सुझाव संख्या 13 (1921) में यह कहा गया है कि महिलाएं रात में खेती का काम भी नही करेंगी। उन्हें कम से कम रात में 9 घंटे आराम मिलना चाहिए।

सुझाव संख्या 4 (1919) में खदानों में काम करने वाली महिलाओं का उल्लेख किया गया है और कहा गया है कि कोई भी महिला खदान के अन्दर जाकर काम नहीं करेगी।

इसी तरह महिलाओं की सुरक्षा के लिए अनेक सुझाव दिए गए हैं जैसे सुझाव संख्या 4 (1919) में महिलाओं और बच्चों को सीसा उद्योग में काम में लगाने के प्रतिबंध पर सुझाव दिया गया है। इसी प्रकार सुझाव संख्या 114 और सुझाव संख्या 127 में महिलाओं को ऐसी जगह पर काम पर लगाने की सिफारिश की गई है जहां विकिरण का खतरा हो और जहां काम का बोझ सबसे ज्यादा हो।

जरा सोचिए 2

1891 और 1911 के कारखाना अधिनियम की प्रमुख विशेषताएं क्या है? इस अधिनियम में महिलाओं को किस प्रकार की सुरक्षा प्रदान की गई है?

9.4 महिला मजदूर और भारत में नियोजन

1948 के औद्योगिक समझौता प्रस्ताव में यह घोषणा की गई कि अच्छे औद्योगिक संबंध बनाए रखने से ही उत्पादन संभव हो सकता है। मजदूरों के कल्याण पर ध्यान देने से इसे प्राप्त किया जा सकता है। इस प्रस्ताव पर बल दिया गया कि औद्योगिक मजदूरों की आवास की समस्या पर तुरंत ध्यान दिया जाना चाहिए।

प्रथम पंचवर्षीय योजना में यह सुझाव दिया गया कि मजदूर की समस्याओं को दो दृष्टियों से देखा जाना चाहिए जैसे मजदूर वर्गों का कल्याण और देश की आर्थिक स्थिरता तथा प्रगति। इसने सुझाव दिया कि भोजन, वस्त्र और आवास की आधारभूत आवश्यकताएं अवश्य पूरी होनी चाहिए। मजदूरों को स्वास्थ्य, सामाजिक सुरक्षा, शिक्षा, मनोरंजन और सांस्कृतिक सुविधाएं उपलब्ध कराई जानी चाहिए। कार्य का परिवेश इस प्रकार का होना चाहिए कि उसका स्वास्थ्य खराब न हो और काम करते वक्त उसका शारीरिक और मानसिक स्वास्थ्य खराब न हो। इस योजना में यह भी सुझाव दिया गया कि कर्मचारियों को कारखानों और बागानों में काम करने वाले मजदूरों के समान सांविधिक लाभ प्रदान किए जाएं।

प्रथम पंचवर्षीय योजना में महिलाओं के लिए कल्याणकारी कार्य सुझाए गए। इस कार्य को आगे बढ़ाने के लिए 1953 में केंद्रीय सामाजिक कल्याण बोर्ड की स्थापना की गई जो महिलाओं की सामाजिक समस्याओं के प्रति जागरूकता का परिचायक है। यह बोर्ड सामुदायिक विकास दृष्टिकोण का भी परिचायक है। इसमें पहली बार महिलाओं को महिला मंडलों या महिला संगठनों में संगठित होने का सुझाव दिया था।

दूसरी पंचवर्षीय योजना में यह स्वीकार किया गया था कि कई क्षेत्रों, जैसे औद्योगिक आवास व्यवस्था, में अभी काफी काम शेष है और यह प्रगति धीरे-धीरे हो सकती है। इस योजना में महिला कामगारों

के लिए कल्याणकारी कार्यों पर विस्तार से चर्चा की गई है। इसमें यह भी उल्लेख किया गया है कि महिलाओं को खतरनाक कामों में न लगाया जाए, मातृत्व सुविधाएं प्रदान की जाएं और बच्चों के लिए शिशु गृह बनाए जाएं। दूसरी पंचवर्षीय योजना में महिलाओं के मुद्दों पर इसी दृष्टिकोण से काम किया गया। इस योजना में महिलाओं को मजदूरों के रूप में संगठित होने की आवश्यकता को भी स्वीकार किया गया। इसमें महिलाओं के प्रति सामाजिक पूर्वाग्रहों और उनकी सीमाओं का भी उल्लेख किया गया। इसमें समान काम के लिए समान वेतन को तेजी से लागू करने और ऊंचे पदों के लिए प्रतिस्पर्द्धा करने के लिए महिलाओं को अपेक्षित प्रशिक्षण देने पर बल दिया गया।

तीसरी योजना में सांविधिक कल्याण प्रावधानों के प्रभावी कार्यान्वयन पर बल दिया गया और प्रतिरोधात्मक उपायों की जरूरतों और कार्य की प्रकृति से जुड़ी बीमारियों का नियमित सर्वेक्षण कराने पर बल दिया गया।

तीसरी योजना में कृषि और असंगठित उद्योग में बेहतर जीवन स्तर और काम करने के माहौल की आवश्यकता पर भी प्रकाश डाला गया। तीसरी योजना में महिला शिक्षा पर विशेष बल दिया गया। सामाजिक कल्याण में, ग्रामीण कल्याण सेवाओं और शिक्षा के प्रसार को विशेष महत्व दिया गया। स्वास्थ्य कार्यक्रम के अन्तर्गत मातृत्व और शिशु कल्याण, स्वास्थ्य शिक्षा और परिवार नियोजन पर खासतौर पर बल दिया गया।

चौथी पंचवर्षीय योजना में भी महिलाओं की शिक्षा पर बल दिया गया। इसमें परिवार को आधार बनाकर महिलाओं के कल्याण की नीति अपनाई गई।

पांचवी पंचवर्षीय योजना में इस बात पर बल दिया गया कि महिलाओं को इस तरह प्रशिक्षित किया जाए कि जरूरत पड़ने पर वे अपनी रोजी रोटी कमा सकें और अपनी सुरक्षा कर सकें। इसी योजना की अवधि में अन्तरराष्ट्रीय महिला दशक की शुरुआत हुई और भारतीय महिला प्रतिष्ठा समिति की रिपोर्ट पेश की गई। इस समिति को महिलाओं के विकास से जुड़ी समस्याओं और देश की बदलते सामाजिक और आर्थिक परिस्थितियों में महिलाओं की हैसियत और अधिकारों से संबंधित प्रश्नों पर विस्तार से विचार करना था।

छठी पंचवर्षीय योजना का युग सामाजिक न्याय का युग था। इससे प्रभावित होकर इस योजना में यह बात उजागर की गई कि संसाधनों तक महिलाओं की पहुंच न होना उनके विकास में सबसे बड़ी बाधा है। इसी योजना के दौरान पुरुष और महिला दोनों को संयुक्त पट्टा देने का कार्यक्रम चलाया गया। हालांकि इस योजना में महिलाओं की समस्याओं को विस्तार से देखा गया और विकासात्मक रणनीतियां सुझाई गईं, परंतु महिलाओं के बजाए 'परिवार' विकास कार्यक्रम निर्माण की आधारभूत इकाई बना रहा।

सातवीं पंचवर्षीय योजना में अन्तरराष्ट्रीय महिला दशक के प्रमुख सरोकार : समानता और शक्ति सम्पन्नता को कार्यान्वित करने के प्रति उत्सुकता दिखाई गई। पहली बार महिलाओं में आत्मविश्वास पैदा करने की बात की गई और इस बात पर जोर दिया गया कि आर्थिक कार्यों और रोजगारों के लिए उन्हें प्रशिक्षित किया जाए। इस महिला दशक में महिलाओं को राष्ट्रीय विकास की प्रमुख धारा में शामिल करने की बात की गई। इसे ध्यान में रखते हुए इस योजना में महिलाओं के लिए काम के नए अवसर तलाशने पर बल दिया गया और उन्हें देश के विकास का एक प्रमुख स्रोत माना गया। इस योजना में इस बात का उल्लेख किया गया कि महिलाओं को घरेलू कामकाज में काफी समय देना पड़ता है। उन्हें जलावन की लकड़ी, चारा, पानी आदि का तो इन्तजाम करना ही पड़ता है साथ ही साथ खेतों या परिवार द्वारा किए जा रहे व्यापार में भी शामिल होना पड़ता है। अभी भारत सरकार ने महिलाओं के लिए 27 योजनाएं चला रखी हैं। इनमें से कुछ योजनाएं महिलाओं के लिए है और कुछ महिलाओं और पुरुषों दोनों के लिए हैं। ये योजनाएं भारत सरकार के विभिन्न विभागों और मंत्रालयों द्वारा चलाई जा रही हैं।

ज़रा सोचिए 3

क्या भारत की नियोजन प्रक्रिया में महिला मजदूरों के मुद्दों पर पर्याप्त बल दिया गया है ? क्या इसमें कोई परिवर्तन भी हुआ है ?

9.5 मजदूरी से संबंधित श्रम कानून

अब आइए, श्रम कानूनों और हमारे देश में महिला श्रम के संदर्भ में उसे लागू करने पर विचार किया जाए। इन्हें मुख्य रूप से निम्न समूहों में वर्गीकृत किया जा सकता है:

1) मजदूरी से संबंधित कानून
2) सामाजिक सुरक्षा से संबंधित क़ानून
3) कल्याण से संबंधित कानून
4) कार्य परिवेश से संबंधित कानून
5) औद्योगिक संबंध से संबंधित कानून

इस भाग में हम मजदूरी कानूनों की चर्चा करने जा रहे हैं।

मजदूरों की आर्थिक स्थिति उन्हें मिलने वाली मजदूरी या पगार पर निर्भर करती है। इसी से उनकी रोजी-रोटी चलती है और यही उनका आर्थिक आधार भी होता है परंतु जीवन यापन की लागत की अपेक्षा मजदूरी कम है। 1961 में टाटा लौह और इस्पात कम्पनी में 45 से 49 प्रतिशत मजदूरों की मजदूरी इतनी ही थी कि वे अपनी न्यूनतम आवश्यकताओं की पूर्ति कर सकें। अखिल भारतीय मजदूर संघ के अनुसार 29 से 31 प्रतिशत मजदूरों को इतना ही वेतन मिलता था कि वे न्यूनतम आवश्यकताओं की पूर्ति कर पाते थे परंतु कमाई और उत्पादकता के बीच का अनुपात और उत्पादन विकास के बीच कोई तालमेल नहीं था। औद्योगिक उत्पादन और उत्पादकता में तेजी से वृद्धि होने के बावजूद मजदूरी में कम वृद्धि हुई। इसलिए इससे जुड़े कानूनों खासकर श्रम कानूनों में परिवर्तन की ज़रूरत महसूस की गई। परंतु सरकार ने इस दिशा में कोई खास प्रयत्न नहीं किया।

श्रम बाजार में मुख्य रूप से दो प्रकार के भेदभाव अपनाए जाते हैं :

1) पुरुषों और महिलाओं के बीच मजदूरी में अन्तर
2) महिलाओं से किसी खास क्षेत्र में ही काम करवाना। उदाहरण के लिए कृषि में अधिकांश महिलाओं को कम मजदूरी देकर काम करवाया जाता है। अनौपचारिक क्षेत्र में महिलाओं को पुरुषों से कम वेतन दिया जाता है। संगठित क्षेत्र में लगभग 90 प्रतिशत महिलाओं को अकुशल या अर्धकुशल रोजगार दिए जाते हैं।

महिलाओं की मजदूरी कम होने का एक मूलभूत आर्थिक कारण यह है कि मजदूरों की जरूरत कम है और काम करने वाले मजदूर ज्यादा हैं, पिछले दो दशकों में भारत की विकास दर 3.5 प्रतिशत प्रतिवर्ष रही है। इसके मुकाबले श्रमिक (खासकर महिला श्रमिक) की संख्या बहुत ज्यादा है। इतने विकास दर से ज्यादा रोजगार पैदा नहीं किया जा सकता। दूसरी ओर मज़दूरों की संख्या में प्रतिवर्ष 25% की दर से वृद्धि हो रही है। इसके अलावा पूंजी आधारित संगठित क्षेत्रों में पुरुषों का बोलबाला है। आधुनिक क्षेत्रों में भी पुरुष ही भरे पड़े हैं। केवल परम्परागत कार्यों में महिला मजदूरों से ही काम लिया जाता है।

इन सभी सामाजिक और आर्थिक कारकों के साथ-साथ महिलाओं की शारीरिक और मानसिक विशेषताओं के संदर्भ में उन पर अलग से विचार करना जरूरी है। भारत के संविधान में महिलाओं के हित की सुरक्षा और स्त्री-पुरुष भेदभाव को रोकने के लिए कई प्रावधान बनाए गए हैं। मजदूरों

के हितों की रक्षा करने के लिए सरकार ने कई अधिनियम और कानून बनाए हैं। इनमें समान वेतन अधिनियम 1976 एक महत्वपूर्ण कानून है जिसमें महिला मजदूरों के हितों का ख्याल रखा गया है।

कुछ मजदूरी कानून इस प्रकार हैं :

1) मजदूरी भुगतान अधिनियम 1936
2) न्यूनतम मजदूरी भुगतान अधिनियम 1948
3) लाभांश भुगतान अधिनियम 1965
4) समान वेतन अधिनियम 1976

भारतीय संविधान के अनुच्छेद 39 में राज्यों को खासतौर पर यह निर्देश दिया गया है कि समान कार्य के लिए पुरुषों और महिलाओं को समान वेतन दिया जाना चाहिए। इस अधिनियम के अनुसार समान प्रवृत्ति और समान कार्य के लिए महिलाओं और पुरुषों को समान वेतन देने का प्रावधान है तथा इसमें यह भी कहा गया है कि स्त्री-पुरुष भिन्नता के आधार पर किसी प्रकार का भेदभाव नहीं किया जाएगा। समान कार्य का प्रश्न उत्तरदायित्व, कुशलता, प्रयत्न और कार्य परिवेश जैसे विभिन्न कारकों पर निर्भर करता है। इसका निर्णय करने के लिए कि काम की प्रकृति समान या एक जैसी है, के लिए एक बृहद दृष्टिकोण अपनाना चाहिए। सर्वोच्च न्यायालय ने इस मामले पर विचार करते हुए कहा था कि महिला लिपिक और पुरुष लिपिक एक जैसा काम करते हैं। इसलिए महिला लिपिकों को कम वेतन दिया जाना गलत है और यह भारत के संविधान के अनुच्छेद (1) और 14 तथा 39 (डी) का उल्लंघन है।

इस अधिनियम के अनुच्छेद 5 के अनुसार कोई भी नियोक्ता एक ही काम के लिए नियुक्ति करते समय महिलाओं के खिलाफ भेदभाव नहीं बरत सकता जब तक कि इस प्रकार की नौकरी करने के लिए कानून द्वारा महिलाओं पर कोई प्रतिबंध नहीं लगाया गया है। अतएव नियुक्ति, सेवा शर्तों, प्रोन्नति, प्रशिक्षण, स्थानांतरण आदि के मामले में नियोक्ता स्त्री-पुरुष के आधार पर कोई भेदभाव नहीं कर सकता है। भारतीय अनुसंधान के अनुच्छेद 16 (1) में इसी प्रकार का प्रतिबंध लगाया गया है।

यदि कोई नियोक्ता इसमें से किसी नियम का पालन नहीं करता तो उसे कम से कम 10 हजार रुपए और अधिक से अधिक 20,000 रुपए का दंड या कम से कम 1 वर्ष की सजा भी सुनाई जा सकती है या जुर्माना या कैद दोनों भी दिया जा सकता है।

अनुभव से सीखिए 1

महिला कृषि मजदूरों या इमारत निर्माण में लगी महिलाओं से बातचीत कीजिए और उनसे यह जानने का प्रयास कीजिए कि क्या उन्हें पुरुषों के समान ही वेतन मिलता है। उनसे यह भी जानने की कोशिश कीजिए कि क्या वे श्रम कानून से परिचित हैं। इसकी जानकारी के आधार पर महिला और समान मजदूरी पर एक टिप्पणी लिखिए।

9.6 सामाजिक सुरक्षा और कल्याण

सामाजिक सुरक्षा में परस्पर सहायता, सामूहिकता और उत्तरदायित्व शामिल होता है। इसमें एक दूसरे के संशाधनों और स्रोतों का भी मिलजुल कर इस्तेमाल किया जाता है। इसमें व्यक्ति अकेले परिस्थितियों का सामना नहीं कर सकता। परम्परागत हिन्दू सामाजिक संगठन में वर्षों से इस तरह से सामाजिक सुरक्षा का भाव निहित है। संयुक्त परिवार व्यवस्था, जाति संगठन और ग्राम पंचायत सामाजिक सुरक्षा के प्रमुख संस्थागत रूप हैं। भारतीय समुदाय के सामाजिक रीति रिवाजों और अनुष्ठानों में परस्पर सहायता के कई संस्थागत उपायों की झलक मिल सकती है।

भारत में आधुनिक दृष्टि से सामाजिक सुरक्षा का विकास हाल में हुआ है। हालांकि कारखानों में काम करने वाली महिलाओं के लिए काफी पहले से दुर्घटना और मातृत्व सुरक्षा लाभ का प्रावधान था परंतु आजादी के बाद इसमें विशेष तौर पर प्रगति हो सकी। भारत के संविधान के नीति निर्देशक सिद्धांतों (अनुच्छेद 41) में यह उल्लिखित है कि बेरोजगारी, बूढ़ापों, बीमारी, अपंगता और अन्य सभी मामलों में राज्य इस बात का इन्तजाम करेगा कि ऐसे लोगों को जरूरी सामाजिक सुरक्षा प्रदान की जाए। संविधान के इस प्रावधान के अनुसार भारत सरकार ने कई कदम उठाए हैं। सामाजिक सुरक्षा से जुड़े कानून इस प्रकार हैं :

9.6.1 सामाजिक सुरक्षा अधिनियम

1) कर्मचारी भविष्य निधि कोष और अन्य प्रावधान अधिनियम 1952
2) कर्मचारी राज्य बीमा अधिनियम 1961
3) मातृत्व लाभ अधिनियम 1961
4) गैच्युटी का भुगतान अधिनियम 1923
5) मजदूर मुआवजा अधिनियम 1923
6) कोयला खान भविष्य निधि कोष और अन्य अधिनियम 1948

1926 के मजदूर मुआवजा अधिनियम में उपयुक्त संशोधन किया गया। औद्योगिक मजदूरों के लिए सामाजिक बीमा कार्यक्रम विकसित किए गए। अधिकांश उद्योगों में गैच्युटी और भविष्य निधि कोषों का निर्माण किया गया। मातृत्व लाभ कानून को बदला गया। 1961 में मातृत्व लाभ अधिनियम बनाया गया जिसके तहत कारखानों, खदानों, बागानों और सरकारी प्रतिष्ठानों में काम करने वाली महिलाओं को मातृत्व अवकाश देने का प्रावधान रखा गया परंतु कर्मचारी राज्य बीमा अधिनियम 1948 में कम वेतन पाने वाले मजदूरों के लिए मातृत्व अवकाश का प्रावधान नहीं था। इसके अलावा सरकार में और कृषि क्षेत्रों में महिलाओं के पास किसी प्रकार के वैधानिक अधिकार नहीं हैं।

समाज के लिए अनाज उपजाते हुए – क्या समाज को इनकी चिंता है?

सौजन्य : प्रो. कपिल कुमार, इग्नू, नई दिल्ली

सुरक्षात्मक कानूनों और मातृत्व सुविधाओं के कारण भी मजदूरों की स्थिति में सुधार आया। परंतु इसके कारण बहुत से उद्यम महिलाओं को नौकरी देने में हिचकिचाने लगे। परंतु वाणिज्यिक घरानों, दुकानों, होटलों, पर्यटन आदि क्षेत्रों में महिलाओं के लिए रोजगार के नए द्वार खुल गए। बदलता पारिवारिक ढांचा, मूल्य व्यवस्था, आर्थिक जरूरतें और महिलाओं में बढ़ती शिक्षा के कारण रोजगार करने वाली महिलाओं की संख्या में तेजी से वृद्धि हुई और रोजगार की प्रतिक्षा करने वाली महिलाओं की कतार भी लम्बी हो गई।

मातृत्व सुविधाएं

भारत के संविधान के अनुच्छेद 42 में महिलाओं के उपयुक्त और मानवीय कार्य परिवेश और मातृत्व राहत संबंधी प्रावधानों का उल्लेख है। इस उद्देश्य के आलोक में संसद ने 1961 में मातृत्व सुविधा अधिनियम पारित किया ताकि शिशु के जन्म लेने के कुछ दिन पहले और कुछ दिन बाद तक महिलाओं के रोजगार को नियमित और नियंत्रित किया जा सके तथा मातृत्व और अन्य प्रकार की सुविधाएं प्रदान की जा सकें। इस क़ानून में 31 धाराएं हैं और इन्हें 1970, 1972, 1973, 1976, 1988 और हाल में ही 1995 में संशोधित किया गया है ताकि ये अधिक कारगर और महिलाओं के लिए लाभप्रद हो सकें । कारखानों, खदानों, बागानों, कलाकारों, प्रदर्शन करने वालों सब पर यह कानून लागू होता है {धारा 2 (ए)}। यह बात दुकान में काम करने वाले लोगों पर भी लागू होती है। किसी भी संस्थान में 12 महीनों तक 10 या 10 से अधिक व्यक्ति काम करते हों तो उन पर यह कानून लागू होता है {धारा 2 (बी)} औद्योगिक, वाणिज्यिक, कृषीय या किसी भी प्रकार के प्रतिष्ठानों को कम से कम दो महीने का नोटिस देकर राज्य सरकार इस अधिनियम के प्रावधानों को लागू कर सकती है।

धारा 5 (1) के अनुसार प्रत्येक महिला मजदूर को मातृत्व सुविधाएं प्राप्त करने का अधिकार है व उसे प्रतिदिन की दिहाड़ी के हिसाब से अनुपस्थित अवधि का भुगतान किया जाना चाहिए।

एक महत्वपूर्ण बात यह है कि कामकाजी महिलाएं दो भूमिकाएं निभाती हैं। एक घर की और एक बाहर की। पुरुषों को ऐसा नही करना पड़ता है। दोनों ही कार्यों में महिलाओं को पूरा समय और श्रम लगाना पड़ता है। परिवार और सामाजिक व्यवस्था को सुचारू रूप से चलाने के लिए महिलाओं की घरेलू भूमिका के महत्व को नजरअंदाज नहीं किया जा सकता और इस लिहाज से उनके कार्य को इस तरह रूपांतरित करना चाहिए कि टकराव की संभावनाएं कम से कम हों। महिलाओं के काम करने की समय तालिका और उनसे कराए जाने वाले कामों पर फिर से विचार करने की जरूरत है।

9.6.2 सामाजिक कल्याण के कार्य

कपड़ा मजदूर जांच समिति ने अपनी रिपोर्ट प्रस्तुत कर औद्योगिक मजदूरों के संगठित कल्याण की आवश्यकता पर बल दिया। उन्होंने यह रिपोर्ट बम्बई सरकार को 1937 में सौंप दी। इस रिपोर्ट के आलोक में बम्बई सरकार ने कारखाने के अंदर और बाहर श्रम कल्याण की योजनाओं पर काम करना शुरू किया। सरकार ने यह महसूस किया कि मजदूर गरीब हैं और अच्छे नियोक्ताओं को अपने मजदूरों का ख्याल रखना चाहिए। उन्होंने यह भी महसूस किया कि यदि कर्मचारियों की अच्छी तरह से देखभाल की जाएगी तो वे बेहतर काम करेंगे और कम्पनी के प्रति निष्ठावान होंगे। अन्य परिस्थितियों में श्रमिकों को आकर्षित करने और श्रम बल को स्थायित्व प्रदान करने के लिए श्रम कल्याण गतिविधि का उपयोग किया जा सकता है। चाहे मंशा कुछ भी हो, कर्मचारियों ने इस गतिविधि में अधिक रूचि दिखानी शुरू की और श्रम कल्याण आंदोलन आगे बढ़ता चला गया।

निम्नलिखित अधिनियम के द्वारा कल्याणकारी उपायों को कानूनी मान्यता दी गई :

1) बीड़ी मजदूर कल्याण कोष अधिनियम 1976

2) कोयला खान मजदूर कल्याण कोष अधिनियम 1947
3) लौह खनिज और मैगनिज खनिज खान अधिनियम 1976
4) चूना खान और डोलोमाइट मजदूर कल्याण कोष अधिनियम 1972
5) अभ्रक मजदूर कल्याण कोष अधिनियम 1946
6) सिनेमा कामगार कल्याण कोष अधिनियम 1981

क्या आप जानते हैं? 1

जैसे-जैसे औद्योगीकरण की प्रक्रिया आगे बढ़ती गई श्रम उत्पादकता पर जोर बढ़ता चला गया। उद्योग में कल्याण का लक्ष्य समृद्ध होता गया और मनुष्यक व्यक्तित्व में वृद्धि होती चली गई। इसके परिणामस्वरूप श्रम उत्पादकता और औद्योगिक संबंध बेहतर हो सकते हैं।

जैसा कि सबको मालूम है भारतीय उद्योगों में रोजगार संबंधों, मजदूरी कल्याणकारी सुविधाओं और कार्य परिवेशों का नियमन संविधिक कानूनों, न्यायालयों और ट्रिब्यूनलों के जरिए राज्य करता है। इसके परिणामस्वरूप मजदूर संघ कानूनी कार्यवाइयों में ही लगे रहते हैं। कुछ औद्योगिक क्षेत्रों में मजदूर संघों ने औद्योगिक मजदूरों के शांति दल बनाए हैं। कुछ मजदूर नेताओं का दावा है कि उनके संघ ने विभिन्न समस्याओं पर विचार करने और राष्ट्रीय समझ पैदा करने के लिए अपने सदस्यों के लिए अध्ययन समूह और शिविरों का आयोजन किया है।

औद्योगिक संबंध कानून निम्नलिखित हैं :

1) मजदूर संघ अधिनियम 1926
2) औद्योगिक रोजगार अधिनियम 1947
3) औद्योगिक विवाद अधिनियम 1947

जरा सोचिए 4

भारत में सामाजिक सुरक्षा की महत्वपूर्ण विशेषताएं क्या है? क्या महिला मजदूरों को इन अधिनियमों से फायदा हुआ है?

9.7 कार्य परिवेश

निम्नलिखित कानूनों का संबंध अलग-अलग उद्योगों से है।

1) बीड़ी और सिगार मजदूर (रोजगार परिवेश) अधिनियम 1946
2) दिहाड़ी मजदूर (नियमन और उन्मूलन) अधिनियम 1946
3) दिहाड़ी मजदूर (नियमन और उन्मूलन) अधिनियम 1970
4) अन्तर-राज्य देशांतरित कामगार अधिनियम 1979
5) मोटर परिवहन मजदूर अधिनियम 1961
6) बागान मजदूर अधिनियम 1951
7) ब्रिकी संवर्धन कर्मचारी (सेवा परिवेश) अधिनियम 1976
8) पत्रकार और अखबार कर्मचारी (सेवा परिवेश) और अन्य संवर्धन अधिनियम 1955
9) खनन अधिनियम 1952

कारखानों, खानों और बागानों में वयस्क महिलाओं के काम करने के घंटे कारखाना अधिनियम 1948, खान अधिनियम 1952 और बागान अधिनियम 1951 से परिचालित होते हैं।

कारखाना अधिनियम, 1948

कारखाना अधिनियम 1948 में मजदूरों की समुचित सफाई, कचरा का उपयुक्त प्रबंध, काम करने के स्थान पर हवा और रोशनी का उत्तम प्रबंध, तापमान नियंत्रित करने का प्रबंध, धूल और धुंआ हटाने का प्रबंध, पर्याप्त जगह का प्रबंध, समुचित रोशनी का प्रबंध, पेयजल, शौचालय, मूत्रालय, और अन्य साफ-सफाई का प्रावधान है। इसमें कर्मचारियों की न्यूनतम सुरक्षा का भी प्रावधान है जैसे खतरनाक समझी जाने वाली मशीनों को अच्छे तरीके से घेर कर रखना, चलती हुई मशीनों पर काम करने के नियम तय करना, खतरनाक मशीनों पर जवान लोगों से काम लेना, कपास निकालने की जगह पर महिलाओं और बच्चों को काम पर नहीं लगाना, आंखों का बचाव, खतरनाक लौ से सावधान रहना, आग के संबंध में बरती जाने वाली सावधानियां, इमारत और मशीनों आदि की सुरक्षा।

महिलाओं के नहाने-धोने, कपड़ा रखने और सुखाने, बैठने, प्राथमिक चिकित्सा के उपकरण, कैन्टिन (250 से ज्यादा कर्मचारी हों), आराम करने का स्थान, भोजन कक्ष, 300 से ज्यादा मजदूर होने पर कल्याण अधिकारी की नियुक्ति, आदि का भी प्रावधान है। जब मशीन चल रही हो तो इस पर काम करने के लिए युवा और अनुभवहीन व्यक्तियों को नहीं भेजना चाहिए। इसी प्रकार महिलाओं को भी खतरे के इलाके में नहीं भेजना चाहिए।

धारा 27 में यह उल्लिखित है कि महिलाओं और बच्चों को कपास निकालने की जगह पर काम पर नहीं लगाना चाहिए।

धारा 48 में यह प्रावधान है कि यदि किसी कारखाने में 30 से अधिक महिलाएं काम करती हों तो उनके 6 वर्ष से कम उम्र के बच्चों के लिए एक उपयुक्त कमरे की व्यवस्था होनी चाहिए।

धारा 66 के अन्तर्गत महिलाओं के लिए निम्नलिखित विशेष प्रावधान इस प्रकार हैं :

1) जहां तक महिला मजदूरों का संबंध है धारा 54 के अन्तर्गत प्रतिदिन काम के घंटे में कोई छूट नहीं दी गई है।
2) महिलाएं किसी भी कारखाने में प्रातः 7 बजे से सायं 7 बजे तक ही काम करेंगी। रात 10 बजे से लेकर सुबह 5 बजे तक किसी भी हालत में महिलाओं को काम पर नहीं लगाया जा सकता।
3) साप्ताहिक छुट्टी या कोई अन्य छुट्टी के बाद ही महिला कर्मचारियों के कार्य समय को बदलता जा सकता है।

खान अधिनियम, 1952

इस अधिनियम में खान में काम करने वाले मजदूरों के स्वास्थ्य और सुरक्षा के नियमन, काम के घंटे और रोजगार की सीमा, मजदूरी के साथ छुट्टी आदि का उल्लेख है। जमीन के ऊपर प्रतिदिन अधिकतम 9 घंटे और सप्ताह में 48 घंटे मजदूरों से काम लिया जा सकता है। जमीन के भीतर काम करने वाले मजदूरों से अधिक से अधिक 8 घंटे और सप्ताह में 48 घंटे काम लिया जा सकता है। मजदूरों को सप्ताह में 1 दिन छुट्टी देने का भी प्रावधान है। धारा 28 में यह उल्लिखित है कि किसी भी मजदूर से सप्ताह में 6 दिन से ज्यादा काम नहीं लिया जा सकता। किसी भी व्यक्ति को एक दिन में 10 घंटे से ज्यादा खान के अंदर काम करने की अनुमति नहीं है। हालांकि सरकार कुछ परिस्थितियों में इनमें छूट दे सकती है।

1) कानून में कुछ भी लिखा हो किसी भी महिला को निम्नलिखित स्थानों पर काम पर नहीं भेजा जा सकता।

क) खान के अन्दर

ख) सुबह 6 बजे से लेकर शाम 7 बजे तक किसी भी खान में जमीन से ऊपर काम करने के लिए।

2) खान में जमीन के ऊपर काम करने वाली महिलाओं को दूसरे दिन काम करने से पहले 11 घंटे का आराम अवश्य देना चाहिए।

बागान अधिनियम 1951

बागान अधिनियम 1951 के अनुसार यदि बागान में 15 या उससे अधिक कर्मचारी काम करते हों तो उनके स्वास्थ्य और सुरक्षा की जिम्मेदारी नियोक्ता की होती है जैसे : पीने का पानी, आराम स्थल, चिकित्सा सुविधाएं, भोजनालय (यदि मजदूरों की संख्या 150 से ऊपर हो), शिशु गृह (यदि महिला मजदूरों की संख्या 50 से ज्यादा हो), मनोरंजन की सुविधाएं, शिक्षा सुविधाएं (यदि 6 से 12 वर्ष के बच्चों की संख्या 25 से ज्यादा हो), आवासीय सुविधाएं और मजदूरों की देखभाल करने के लिए कल्याण अधिकारियों की नियुक्ति। इस अधिनियम की धारा 25 में महिलाओं और बच्चों से 7 बजे शाम से 6 बजे सुबह तक काम करवाना मना है परंतु यह प्रावधान परिचारिकाओं और नर्सों पर लागू नहीं होता है। इसके अलावा श्रम संबधी अन्य कानून इस प्रकार हैं:

1) प्रशिक्षु अधिनियम 1961
2) बंदरगाह मजदूर अधिनियम 1934
3) बंदरगाह मजदूर अधिनियम 1948
4) बाल रोजगार अधिनियम 1938
5) रोजगार कार्यालय (पदों की अनिवार्य विज्ञप्तिद्ध अधिनियम 1959

अनुभव से सीखिए 2

किसी ऐसे कारखाने, खान या बगान में जाइए जहां महिलाएं काम करती हों। पता लगाने की कोशिश कीजिए कि क्या उन्हें न्यूनतम कार्य सुविधाएं प्राप्त हैं ?

9.8 श्रम कानूनों के कार्यान्वयन की समस्याएं

महिलाओं के अधिकारों की रक्षा करने और उन्हें समानता का दर्जा प्रदान करने के लिए व्यक्तिगत कानून या फौजदारी कानून और श्रम कानून में कई परिवर्तन किए गए हैं। परंतु ये कानून महिलाओं के खिलाफ होनेवाले बढ़ते अपराधों को नियंत्रित करने में असफल रहे हैं तथा वे उन्हें समान आर्थिक, राजनैतिक और सामाजिक आधार भी नहीं प्रदान कर सकते हैं।

9.8.1 अप्रभावी सरकारी अधिकारी

केवल यह कानून ही अपर्याप्त और अप्रभावी नहीं हैं बल्कि विभिन्न कानूनों के तहत नियुक्त सरकारी अधिकारी जैसे कारखाना अधिनियम के या अनुबंध श्रम अधिनियम के तहत नियुक्त निरीक्षक (नियमन और उन्मूलन) अपना काम नहीं करते हैं। निरीक्षक अपना काम ठीक ढंग से नहीं करते हैं। अतएव महिला मजदूरों की मदद करने के लिए मौके पर ही कार्यान्वयन की व्यवस्था होनी चाहिए। श्रम कानूनों में अभी काफी परिवर्तन की जरूरत है क्योंकि कई अलग-अलग अध्ययनों से पता चला है कि मातृत्व सुविधाओं और न्यूनतम मजदूरी से महिला मजदूरों को वंचित रखा जा रहा है।

इसलिए मजदूरों और महिला मजदूरों से संबंधित कानूनों को बदलने की जरूरत है ताकि महिला मजदूर इज्जत से अपना गुजर-बसर कर सकें।

9.8.2 कानूनी जागरूकता का अभाव

अभी महिलाएं अपने श्रम की उत्पादकता और सामाजिक महत्व को नहीं समझ पाई हैं और निचले स्तर पर मजदूर अपने अधिकारों के प्रति सचेत नहीं हैं। इसलिए श्रम मंत्रालय को खासतौर पर असंगठित क्षेत्र में मजदूरों के कार्य परिवेश को सुधारने के लिए स्थाई समिति का निर्माण करना चाहिए।

मुक्त व्यापार क्षेत्रों में महिला मजदूरों की स्थिति ज्यादा नाजुक होती है क्योंकि इन क्षेत्रों के श्रम कानूनों से परिचित नहीं होती है। अतएव इस क्षेत्र में महिलाओं की सुरक्षा की जानी चाहिए और उन्हें समर्थन सेवाएं प्रदान की जानी चाहिए। महिलाओं के लिए कानूनी सहायता कार्यक्रम चलाया जाना चाहिए जिनमें निम्नलिखित क्षेत्र शामिल होना चाहिए :

1) जनता और खासकर महिलाओं के बीच कानूनी चेतना पैदा करना और उनके लिए कानून सहायता कार्यक्रम बनाकर उन्हें उनके अधिकारों और दायित्वों से परिचित कराना।
2) कानूनी सहायता शिविरों का आयोजन जहां वकील मुक्त कानूनी सलाह दे सकें।
3) सामाजिक कार्यकर्ताओं और स्वयं सेवी संस्थाओं के लिए अर्ध कानूनी प्रशिक्षण कार्यक्रमों का आयोजन और समर्थन कार्यों के लिए उन्हें लामबंद करना।

इनके अलावा महिलाओं के लिए कानून के समुचित कार्यान्वयन पर निगरानी रखने के लिए केंद्र में एक स्वतंत्र अभिकरण की व्यवस्था होनी चाहिए।

जरा सोचिए 5

महिलाओं से संबंधित श्रम कानूनों के कार्यान्वयन की प्रमुख समस्याएं क्या है? इनका कैसे समाधान किया जा सकता है?

9.9 सारांश

हमारे समाज में महिलाएं उपेक्षित हैं। अधिकांश महिलाएं दमनात्मक कार्य परिवेश में काम करती हैं। भारत के संविधान में महिलाओं की सामाजिक स्थिति और शारीरिक दायित्वों को देखते हुए उनके लिए विशेष सुरक्षा का प्रावधान किया है। तदनुसार कई श्रम कानून बनाए गए हैं। इस इकाई में हमने संविधान द्वारा बनाए गए महत्वपूर्ण श्रम कानूनों की चर्चा की है। इस इकाई में यह भी बताया गया है कि हमारे समाज में महिलाओं को सुरक्षा प्रदान करने के लिए इन कानूनों को सही ढंग से लागू नहीं किया जा रहा है। इसके लिए ठोस राजनैतिक इच्छा शक्ति और सामाजिक दबाव की आवश्यकता है।

9.10 शब्दावली

पूंजी आधारित : पूंजी आधारित उद्योग।

संगठित क्षेत्र : आधुनिक प्रौद्योगिकी, कुशल कारीगर और बड़े पैमाने पर उत्पादन।

मातृत्व सुविधा : गर्भवती महिला को काम से आराम।

श्रम का स्त्रीकरण : श्रम विभाजन।

असंगठित क्षेत्र : छोटे स्तर पर उत्पादन, असंगठित मज़दूर, बाजार।

9.11 कुछ उपयोगी पुस्तकें

गवर्नमेंट ऑफ इंडिया, (1988) *नेशनल पर्सपेक्टिव प्लान्स फॉर वुमैन्स डेवेल्पमेंट 1988-2000.*

सी.एस.डब्ल्यू.आई. (1974) टूवर्ड्स इक्वालिटी, रिपोर्ट ऑफ द कमेटी ऑन द स्टेटस ऑफ वीमेन, नई दिल्ली : भारत सरकार.

इकाई 10 सामाजिक सुरक्षा

रूपरेखा

10.0 उद्देश्य

10.1 प्रस्तावना

10.2 सामाजिक सुरक्षा की अवधारणा

- 10.2.1 सामाजिक सुरक्षा क्या है?
- 10.2.2 सामाजिक सुरक्षा के मूल सिद्धांत

10.3 भारत में सामाजिक सुरक्षा आंदोलन

- 10.3.1 ऐतिहासिक पृष्ठभूमि
- 10.3.2 भारत में सामाजिक सुरक्षा आंदोलन के कारक
- 10.3.3 स्वतंत्रता-पूर्व भारत में सामाजिक सुरक्षा की प्रकृति
- 10.3.4 स्वतंत्र भारत में सामाजिक सुरक्षा की प्रकृति

10.4 भारत में सामाजिक सुरक्षा सबंधी कानून

- 10.4.1 श्रमिक मुआवजा अधिनियम, 1923
- 10.4.2 कर्मचारी राज्य बीमा अधिनियम, 1948
- 10.4.3 कर्मचारी भविष्य निधि अधिनियम, 1952
- 10.4.4 मातृत्व लाभ अधिनियम, 1961
- 10.4.5 ग्रैच्युटी भुगतान अधिनियम, 1972

10.5 भारत में सामाजिक सुरक्षा सुनिश्चित करने के लिए सरकारी योजनाएं

- 10.5.1 समेकित ग्रामीण विकास कार्यक्रम
- 10.5.2 ग्रामीण क्षेत्रों में महिला एवं बाल-विकास
- 10.5.3 जवाहर रोज़गार योजना
- 10.5.4 प्रधानमंत्री रोज़गार योजना
- 10.5.5 राष्ट्रीय महिला विकास कोष
- 10.5.6 महिला कल्याण योजनाएं

10.6 सामाजिक सुरक्षा और स्त्री-पुरुष समानता

- 10.6.1 स्त्री-पुरुष समानता के लिये किए जाने वाले सामाजिक सुरक्षा उपायों की सीमाएं

10.7 सारांश

10.8 शब्दावली

10.9 कुछ उपयोगी पुस्तकें

10.0 उद्देश्य

इस इकाई में हमने भारत में सामाजिक सुरक्षा सुनिश्चित करने के लिए बनाए गए कानूनों और योजनाओं तथा सामाजिक समानता की प्राप्ति में उनकी भूमिका पर चर्चा की है। इस इकाई को पढ़

लेने के बाद:

- सामाजिक सुरक्षा की अवधारणा स्पष्ट कर सकेंगे,
- भारत में सामाजिक सुरक्षा आंदोलन को समझ सकेंगे,
- सामाजिक सुरक्षा की प्राप्ति के लिए बनाए गए कानूनों और योजनाओं के बारे में बता सकेंगे,
- स्त्री-पुरुष समानता सुनिश्चित करने में ये उपाय कितने प्रभावशाली रहे हैं, इसका मूल्यांकन कर सकेंगे,
- सामाजिक सुरक्षा सुनिश्चित करने में आड़े आने वाली विकट समस्याओं जैसे गरीबी, जनसंख्या, औद्योगीकरण इत्यादि से जूझ रहे भारत जैसे विकासशील देशों की नैसर्गिक दुर्बलताओं को समझ पाएंगे।

10.1 प्रस्तावना

यह इकाई आपका परिचय सामाजिक सुरक्षा की अवधारणा, इसके उदय के कारणों, इसके तहत आने वाली संभावित घटनाओं और भारतीय जनसंख्या और विशेषकर महिलाओं पर पड़ने वाले इसके प्रभावों से कराती है। इस इकाई में पिछली इकाइयों में किए गए विचार-विमर्श को आगे बढ़ाया गया है जिसका मुख्य विषय राजनीतिक और व्यक्तिगत कानून, फौजदारी कानून, श्रम कानून और सामाजिक सुरक्षा सुनिश्चित करने वाले कानूनों के माध्यम से स्त्री-पुरुष समानता के लिए बनाए गए विधान और कानूनी सुधार है।

एक धर्म निरपेक्ष और जनतांत्रिक राष्ट्र होने के कारण भारत का प्रशासन सभी को स्वतंत्रता, समानता और न्याय के सिद्धांतों से निर्देशित होता है जिसमें जाति, धर्म, यौन लिंग, राजनीतिक विचार, और आवास इत्यादि के आधार पर किसी भी तरह के भेदभाव का कोई स्थान नहीं है। इन उद्देश्यों को वास्तविकता में बदलने के लिए भारत में अनेक कानून बनाए गए हैं और योजनाएं लागू की गई हैं। इस इकाई में हमारा प्रयोजन सामाजिक सुरक्षा विधानों, उनकी व्यापकता, सीमाओं और सभी नागरिकों में समानता लाने में उनकी प्रभावशीलता, इन सब पर विशेष ध्यान देना है। भारत का संविधान महिलाओं और पुरुषों दोनों को समानता और समान कानूनी संरक्षण की गारंटी देता है। मगर जैविक दृष्टि से पुरुष और महिलाएं एक दूसरे से भिन्न हैं और फिर क़ानूनन समानता की गारंटी के बावजूद उनके साथ प्रचलित सामाजिक और सांस्कृतिक नियमों के कारण भिन्न व्यवहार किया जाता है। यौन-लिंग के आधार पर बरता जाने वाला भेदभाव, भले ही वह सामाजिक और सांस्कृतिक कारणों से हो, स्त्री-पुरुष असमानता की ओर ले जाता है। कानून या विधान का यही कार्य है कि वह सभी नागरिकों के लिए स्त्री-पुरुष समानता सुनिश्चित करें।

अन्य इकाइयां स्त्री-पुरुष समानता के विभिन्न पहलुओं पर केन्द्रित हैं। इसलिए हम यहां सामाजिक सुरक्षा सुनिश्चित करने और स्त्री-पुरुष समानता प्राप्ति में विधि-विधान की भूमिका पर अपना ध्यान केंद्रित करेंगे और उसे समझने का प्रयास करेंगे।

10.2 सामाजिक सुरक्षा की अवधारणा

इकाई के इस भाग में हम अपनी चर्चा सामाजिक सुरक्षा की अवधारणा, इसके उदय के कारणों, इसे जीवित रखने वाले मूल सिद्धांतों, विभिन्न देशों में इसकी परिधि, सामाजिक सुरक्षा विधानों के अंतर्गत प्रदान की जाने वाली सुरक्षा की सीमा और ऐसी योजना के तहत आने वाले लोगों की श्रेणियों पर केंद्रित करेंगे।

10.2.1 सामाजिक सुरक्षा क्या है?

सामाजिक सुरक्षा एक बहुत प्राचीन धारणा है। मगर मौजूदा स्वरूप में इसका उदय आधुनिक युग में ही हुआ है। बदलते सामाजिक-आर्थिक परिवेश में जब व्यक्ति अपने और अपने आश्रितों के लिए सुरक्षा सुनिश्चित नहीं कर पाता है तो समुदाय और या फिर, राज्य को उनके जीवन में हस्तक्षेप कर उनकी रक्षा के लिए आगे आना पड़ता है।

सामाजिक सुरक्षा की अवधारणा का जन्म आर्थिक असुरक्षा की समस्याओं से हुआ है। इसका सरोकार बेरोजगारी, बीमारी, दुर्घटनाओं, छंटनी, मृत्यु या विकलांगता से आजीविका बंद हो जाने की स्थिति में संबंधित व्यक्ति के परिवार के लिए आमदनी सुनिश्चित करने के प्रयासों से जुड़ा है। इसके अलावा बच्चे के जन्म, विवाह, बच्चों की शिक्षा और परिवार में किसी सदस्य की मृत्यु पर होने वाले खर्चों के लिए भी आर्थिक सहायता इसमें जुटाई जाती है। वस्तुतः सामाजिक सुरक्षा को आमदनी का ज़रिया बनाए रखने की युक्ति माना जा सकता है।

10.2.2 सामाजिक सुरक्षा के मूल सिद्धांत

प्राचीन और मध्य काल में परिवार तंत्र सामाजिक सुरक्षा प्रदान करता था क्योंकि तब संयुक्त परिवारों का प्रचलन था जिसमें एक ही छत के नीचे कई पीढ़ियां साथ रहती थीं।

संयुक्त परिवार का ढांचा औद्योगीकरण और शहरीकरण के उदय से टूटने लगा। असामान्य आर्थिक परिस्थितियों के आगे एक पारंपरिक सहायक प्रणाली के रूप में परिवार अपर्याप्त साबित हुआ। न्यूक्लियर फॅमिली या टुकड़ा परिवार में जहां आश्रितों की संख्या कमाने वालों से अधिक हों, दरिद्रता और भुखमरी परिवार के सभी सदस्यों की नियति बन सकती है। कमाने वाले सदस्य की मृत्यु जैसी बड़ी आपदाओं बेरोजगारी या बीमारी की स्थिति में परिवार के पास अगर ऐसी कठिनाइयों से पार पाने के लिए पर्याप्त जमा-पूंजी न हो तो उसके संसाधन अधिक समय तक नहीं चल पाते। ऐसी परिस्थितियों में राज्य की संस्थाओं के माध्यम से सामाजिक सुरक्षा प्रदान किया जाना अनिवार्य हो जाता है।

सामाजिक सुरक्षा की आवश्यकता इस बोध से भी उभरती है कि वृद्धावस्था, विकलांगता और बीमारी जैसी परिस्थितियों का सामना ऐसी परिस्थितियों के उत्पन्न होने से पहले जमा किए गए करों के जरिए दिए गए निजी योगदान से किया जा सकता है। सामाजिक सुरक्षा उपायों को इस नज़रिए से भी देखा जाता है कि समाज और सरकार का यह दायित्व है कि वे अपने नागरिकों को एक शालीन जीवन स्तर की गारंटी दें। सामाजिक सुरक्षा का मतलब लोगों को भुखमरी और असामयिक मृत्यु से उपजी आपदा से बचाना भर नहीं है। बल्कि इसका प्रयोजन उन्हें संपूर्ण जीवन सुनिश्चित कराना भी है। दूसरी तरह से कहें तो सामाजिक सुरक्षा का लक्ष्य गरीबी से सार्वभौमिक सुरक्षा प्रदान करने से लेकर एक अर्जित जीवन स्तर की क्षति से भी सुरक्षा प्रदान करना है।

राज्य द्वारा प्रदान की जाने वाली सामाजिक सुरक्षा में हो सकता है सभी जोखिम शामिल न हो पाएं। अलग-अलग राज्य कुछ विशेष परिस्थितियों और जोखिमों के लिए सुरक्षा प्रदान करता हैं। इन जोखिमों के लिए सुरक्षा प्रदान करने में जब राज्य पहल करे तो सामाजिक सुरक्षा दान और स्वयंसेवा की भावना से हटकर एक संस्थागत और धर्म निरपेक्ष अवधारणा का रूप धारण कर लेती है। तब लिंग, वर्ग, जाति या धर्म के भेदभाव के बिना लोग अपने संगठित प्रयासों से सामाजिक सुरक्षा की मांग कर सकते हैं।

सामाजिक सुरक्षा की अवधारणा के दो मुख्य तत्व हैं। एक है सामाजिक सहायता और दूसरा तत्व सामाजिक बीमा है। इस अवधारणा के मौजूदा स्वरूप में सामाजिक सहायता से सामाजिक बीमा में एक प्रगतिशील परिवर्तन आया है। सभी परिस्थितियों के लिए सहायता का प्रबंध करना अब सिर्फ राज्य का ही दायित्व नहीं रहा है। बल्कि कर्मचारियों और समाज के सदस्यों के साथ मिलकर राज्य ऐसी परिस्थितियों के लिए साधन जुटा रहा है और विभिन्न प्रकार के जोखिमों के लिए सहायता प्रदान कर रहा है।

स्त्री-पुरूष भेदभाव के शिकार?

सौजन्य : देवल के. सिंहराय, इग्नू, नई दिल्ली।

क्या आप जानते हैं?

यूरोप में सामाजिक सुरक्षा की अवधारणा 1930 के दशक में आई भयंकर आर्थिक मंदी से उत्पन्न हुई। विभिन्न सरकारों ने ऐसी नीतियां अपनाने और उन्हें लागू करने की आवश्यकता महसूस की जिससे उनके नागरिकों को एक बेहतर जीवन स्तर की गारंटी मिले। आय सुरक्षा, उपचार व्यवस्था (मेडिकल केयर) बच्चों के लिए पारिवारिक सहायता, शिक्षा, आश्रय, भोजन, विश्राम इत्यादि जरूरतों को पूरा करने वाली योजनाएं चलाई गईं। विभिन्न देशों ने सामाजिक सुरक्षा के दायरे को बढ़ाया। उसमें बीमारी, विकलांगता, वृद्धावस्था से लेकर मृत्यु जैसी विपत्तियां और बाल सहायता से लेकर विवाह व सैर-सपाटे के लिए छुट्टियां इत्यादि तमाम तरह की आवश्यकताएं शामिल की गईं।

इंगलैंड में सामाजिक सुरक्षा की अवधारणा की उत्पत्ति सोलहवीं सदी में गरीबों की सुरक्षा के लिए बनाए गए पुअर लॉ यानी दरिद्र सुरक्षा कानून से हुई, जिसमें कई संशोधन हुए।

अंतत: इसकी परिणति द्वितीय विश्व युद्ध के बाद बीवरिज रिपोर्ट में हुई। बीवरिज रिपोर्ट पर आधारित कानून में सामाजिक सुरक्षा का तात्पर्य स्थाई आमदनी बनाए रखना था। इसके अनुसार राज्य का दायित्व बेरोजगारी, बीमारी, दुर्घटनाओं, छंटनी या किसी व्यक्ति की मृत्यु के कारण जीविकोपार्जन में पड़ने वाली बाधा को दूर कर आमदनी सुनिश्चित करने और जन्म, मृत्यु या विवाह जैसे अवसरों पर होने वाले खर्च की पूर्ति के लिए पहल करना है।

संयुक्त राज्य अमेरिका में सामाजिक सुरक्षा का मुख्य कार्य निर्दिष्ट परिस्थितियों के अंतर्गत जनसंख्या के नामित वर्गों में व्यक्तियों और परिवारों के लिए नगद आमदनी का प्रबंध करना है।

अमेरिका में सामाजिक सुरक्षा का दायरा ब्रिटेन की बेवरिज रिपोर्ट से बड़ा है। बच्चों के लिए पारिवारिक सहायता एक ऐसा ही विस्तार है।

कनाडा में सामाजिक सुरक्षा के दायरे में तीन विस्तृत सफ़ट जन्य परिस्थितियां आती हैं। ये हैं बेरोजगारी, बीमारी, स्थाई विकलांगता, वृद्धावस्था या अकाल मृत्यु का कारण जीविकोपार्जन बंद हो जाना। चिकित्सा, अत्येष्टि इत्यादि अवसर पर होने वाले खर्च की पूर्ति और बच्चे के भरण-पोषण पर आने वाले खर्च की पूर्ति के लिए परिवार की आमदनी का अपर्याप्त होना। इससे यही प्रतीत होता है कि सामाजिक सुरक्षा की अवधारणा भूख से मृत्यु रोकना मात्र नहीं है। बल्कि यह एक पूर्ण जीवन जीने के लिए अवसर प्रदान करना है। इसमें स्वास्थ्य, शिक्षा, भोजन, घर, अवकाश और सांस्कृतिक क्रिया-कलाप भी आते हैं।

नार्डिक देशों में सामाजिक सुरक्षा योजनाओं में सात मुख्य घटक शामिल हैं। जनस्वास्थ्य चिकित्सा और बीमारी समेत स्वास्थ्य वृद्धावस्था और विकलांगता पेशागत चोट रोजगार पर होने वाले खर्च और बेरोजगारी संबंधी सेवाएं माताओं के लिए प्रसव-पूर्व और प्रसव-पश्चात देखभाल समेत परिवार कल्याण स्कूल शिशु सदन स्कूली बच्चों को भोजन घरेलू सहायता बाल सहायता और छुट्टियां जन सहायता और सैनिक व युद्ध हताहतों को राहत।

न सब आपात स्थितियों का एक सामाजिक उद्देश्य है। यह एक ऐसी सामाजिक रचना की कल्पना कर चलता है, जिसमें प्रत्येक सदस्य संभावित उत्पादक संसाधनों के अनुसार उच्चतम भौतिक सुख ाग सके। सामाजिक सुरक्षा का अर्थ अब सिर्फ नकद लाभ तक ही सीमित नहीं रहा। इनमें आने ले लाभार्थियों और जोखिमों, जिनमें इनके तहत सुरक्षा प्रदान की जाती है दोनों के मामले में इन जनाओं का दायरा अधिक व्यापक है। सामाजिक सुरक्षा का एक जटिल आर्थिक पक्ष भी है। इसमें नसाधारण से बड़ी मात्रा में धन एकत्र किया जाता है, जिसे लाभार्थियों के विभिन्न समूहों को वंटित किया जाता है।

काई में आगे हम यह बताएंगे कि भारत में यह धारणा किस तरह विकसित हुई।

जरा सोचिए ।

सामाजिक सुरक्षा के मूल सिद्धांत क्या हैं?

0.3 भारत में सामाजिक सुरक्षा आंदोलन

माजिक सुरक्षा क्या है और कुछ औद्योगिक पूंजीवादी व समाजवादी देशों में यह किस तरह से कसित हुई है, यह समझ लेने के बाद हम अपना ध्यान इस अवधारणा के भारत में विकास पर न्द्रित करेंगे जो एक विकासशील समाजवादी कल्याणकारी देश है। सामाजिक सुरक्षा अपने आप में क गतिशील अवधारणा है। भारत में एक कल्याणकारी राज्य का मॉडल अपनाया गया है, जिसमें के दायरे को बढ़ाकर समाज के सभी तबकों को उसमें शामिल किया गया है। ताकि सभी नागरिक त्पादनशील जीवन या सामाजिक सुरक्षा उपायों के जरिए एक बेहतर जीवन स्तर प्राप्त कर सकें। ार विकासशील देशों की सबसे बड़ी समस्या सामाजिक सुरक्षा उपायों के सफल कार्यान्वयन के लिए वश्यक वित्तीय संसाधन जुटाना है।

0.3.1 ऐतिहासिक पृष्ठभूमि

रत में सामाजिक सुरक्षा को सामाजिक रक्षा के रूप में लिया गया है। संयुक्त परिवार और वर्ण वस्था में जरूरतमंदों और अभागे सदस्यों को यह सुरक्षा सुलभ थी। इसके अलावा श्रेणियों, पंचायतों, नाथश्रमों, विधवाश्रमों और अन्य धर्मार्थ केंद्रों के माध्यम से भी उन्हें निजी और संस्थागत सहायता

मिलती थी। बेरोजगारी, बीमारी, वैधव्य, अपंगता, वृद्धावस्था जैसी कठिन परिस्थितियों में अपने सदस्यों की रक्षा करने में संयुक्त परिवार की महत्वपूर्ण भूमिका थी। इस ताने-बाने में व्यक्ति को कई लाभ मिलते थे। जैसे बीमारों, विकलांगों, दुर्बलों और बूढ़ों को चिकित्सा सहायता, अनाथों, विधवाओं और अन्य जरूरतमंदों को भोजन और आश्रय इत्यादि सहायता मिला करती थी। धर्मार्थ संस्थाएं इस तरह की सहायता के लिए धनाढ्य और लोकोपकारी व्यक्तियों से दान और चंदा जुटाती थी। सहायता की धारणा का आधार मुख्यत: दान था। यह व्यक्ति का अधिकार नहीं समझी जाती थी। इसलिए इसकी कुछ कमियां थीं। वैसे यह जरूरी नहीं था कि इस प्रकार की सहायता सबसे जरूरतमंद और पात्र व्यक्ति तक पहुंचती हो।

आधुनिक औद्योगिक विकास के प्रभाव के चलते भारतीय समाज का भी धीरे-धीरे कायांतरण हुआ। औद्योगीकरण ने एक नए प्रकार के समाज को जन्म दिया जो जाति के बजाए वर्ग पर आधारित था। औद्योगिक क्रांति और संगठित श्रमिक शक्ति के साथ-साथ सामाजिक सुरक्षा की अवधारणा भी दान से अधिकार में परिपक्व हुई।

10.3.2 भारत में सामाजिक सुरक्षा आंदोलन के कारक

सामाजिक सुरक्षा की समकालीन अवधारणा शुरुआत में औद्योगिक श्रमिकों की जरूरतों के इर्द-गिर्द घूमती थी। मगर ऐतिहासिक रूप से इसके बोध की जड़ें इसके सबसे आदिम रूप, सामाजिक रक्षा, में ढूंढी जा सकती हैं। उदाहरण के लिए औद्योगिक सुरक्षा अपेक्षाओं, व्यावसायिक प्रशिक्षण और पुनर्वास जैसे निवारक उपायों को औद्योगिक जीवन की विभिन्न आपातिक परिस्थितियों से निपटने के लिए पर्याप्त माने जाते थे। कालांतर में यह महसूस किया गया कि किसी श्रमिक के औद्योगिक जीवन में पेश होने वाले सभी जोखिमों को अपने दायरे में लेने के लिए ऐसे निवारक उपाय पर्याप्त नहीं हैं। सो सामाजिक सुरक्षा उपाय विभिन्न आपातिक स्थितियों से निपटने के उद्देश्य से बनाए गए ताकि यह सुनिश्चित हो सके कि श्रमिकों को वंचना का शिकार न होना पड़े। अपने मौजूदा स्वरूप में यह अवधारणा औद्योगिक मज़दूरों की आवश्यकताओं की पूर्ति के लिए नहीं है, बल्कि गरीब महिलाओं, बूढ़ों और गरीबों समेत उन सभी लोगों के लिए भी है जो गरीबी और वंचना के शिकार हैं।

राष्ट्रीय श्रम आयोग के अनुसार सामाजिक सुरक्षा यह मानकर चलती है कि समुदाय सदस्यों की रक्षा ऐसे सामाजिक जोखिमों से सामूहिक कारवाई के जरिए की जाएगी जो ऐसे लोगों के लिए अवांछनीय कठिनाइयां पैदा करते हों और उन्हें वंचना का शिकार बनाते हों जिनके निजी संसाधन उनकी जरूरतों की पूर्ति करने के लिए पर्याप्त न हों। इसके पीछे यही विचार है कि जो नागरिक राष्ट्र के हित के लिए कार्य कर रहा है या करने वाला है उसे जीवन के जोखिमों से सुरक्षा प्रदान की जानी चाहिए। सामाजिक सुरक्षा योजनाओं की विशेषता यह है कि यह नकद लाभ या अन्य रूप में जैसे चिकित्सा सहायता आदि प्रदान करती हैं। इनके लिए उपयुक्त पाए जाने वाले लाभार्थी इनके लाभ अधिकार के रूप में पाने के हकदार हैं। लाभ अस्थायी या स्थायी आपातिक स्थितियों में राहत के रूप में दिए जाते हैं।

10.3.3 स्वतंत्रता-पूर्व भारत में सामाजिक सुरक्षा की प्रकृति

भारत में बड़े कल कारखाने 1850 के बाद से लगने शुरू हुए। आरंभ में औद्योगिक विकास धीमा था और यह कपड़ा उद्योग तक ही सीमित था। लेकिन मजदूर 1920 के दशक तक अपने आपको संगठित नहीं कर पाए। उन्हें कठोर और असम्मानजनक स्थितियों में काम करना पड़ता था। सरकार ने उनके हितों के प्रति कोई सरोकार नहीं रखा।

बेहतर मजदूरी को लेकर भारतीय मजदूरों ने पहला विद्रोह 1877 में नागपुर की एम्प्रेस मिल में किया। इसके फलस्वरूप 1881 में फैक्ट्री अधिनियम पारित हुआ। देश का पहला मजदूर संघ 1890 में बॉम्बे मिल हैन्ड्स एसोसिएशन के रूप में बनी। हालांकि यह संगठित श्रमिक आंदोलन का आरंभ

था मगर यह संघ न तो संगठित था, और न ही इतना शक्तिशाली था कि अपनी मांगों के लिए लड़ सके। मजदूरों के कल्याण में सरकार की कोई रुचि नहीं थी। इसलिए सामाजिक सुरक्षा और सामाजिक-आर्थिक आपात स्थितियों में रक्षा की ओर कोई ध्यान नहीं दिया गया।

प्राणघातक दुर्घटना अधिनियम (फैटल एक्सीडेन्ट्स एक्ट) 1885 के बाद नियोक्ता या कारखाने के मालिक के लिए कामगार या उसके आश्रितों को मुआवजा देना अनिवार्य हो गया बशर्ते यह सिद्ध हो जाए कि दुर्घटना मजदूरों की ओर से की गई स्पष्ट अनदेखी से नहीं हुई हो।

वस्तुत: यह भारत में चल रहे सामाजिक सुरक्षा आंदोलन की उपेक्षा का दौर था। वर्ष 1919 में अंतरराष्ट्रीय श्रम संगठन की स्थापना होने पर सामाजिक सुरक्षा उपायों के पक्ष में जनमत बना। उसके पश्चात सामाजिक न्याय के आधार कुछ तेज मगर बेतरतीब गतिविधियां हुईं। अंतरराष्ट्रीय श्रम संगठन ने भारत में सामाजिक विधानों को परोक्ष और प्रत्यक्ष दोनों तरह से प्रभावित किया। विटली आयोग बैठा जिसके फलस्वरूप भारत में अंतरराष्ट्रीय श्रम संगठन में भारत के प्रतिनिधि के लिए शक्तिशाली ऑल इंडिया ट्रेड यूनियन कांग्रेस की स्थापना हुई।

पहले विश्व युद्ध की समाप्ति के बाद और भारत में राष्ट्रवादी आंदोलन के उदय के चलते ब्रिटिश सरकार ने भारतीय नेताओं की न्यायोचित मांगों को मानने का प्रयास किया। ब्रिटिश प्रांतों में द्वैध शासन लागू होने से भारतीयों को स्थानीय सरकार और शिक्षा जैसे विषयों को चलाने का अवसर मिला। इस दौरान विभिन्न प्रांतों में कामगार मुआवजा अधिनियम (वर्कमैन्स कम्पेन्सेशन एक्ट) 1925, और मातृत्व लाभ अधिनियम (मैटरनिटी बेनिफिट्स एक्ट) जैसे महत्वपूर्ण कानून पारित किए गए। इससे नौकरी के दौरान होने वाली अपंगता की स्थिति में सुरक्षा और महिला श्रमिकों को मातृत्व लाभ मिलने लगे। बम्बई प्रेसीडेंसी ने 1929 में बम्बई मातृत्व लाभ अधिनियम सबसे पहले पारित किया।

मगर ये अधिनियम इस देश के मजदूरों के एक छोटे से हिस्से की जरूरतों को ही पूरा करते थे। वर्ष 1931 के श्रम जांच आयोग (लेबर इनवेस्टिगेशन कमीशन) ने भी विचार व्यक्त किया कि इन उपायों के दायरे में सिर्फ कल-कारखानों को ही नहीं बल्कि खदानों, बागानों और संचार इत्यादि क्षेत्रों में काम कर रहे मजदूरों को भी लिया जाए। दुर्भाग्यवश ये अधिनियम कागजी रहे क्योंकि वास्तविकता में इन्हें लागू ही नहीं किया गया।

द्वितीय विश्वयुद्ध छिड़ जाने पर श्रमिकों की बड़ी कमी महसूस हुई। सो डिफेंस ऑफ इंडिया रूल्स (भारत रक्षा कानून) के तहत श्रमिक वर्ग के लाभ के लिए कई रियायतें दी गईं। डॉ. अम्बेडकर वायसराय काउंसिल के श्रम-सदस्य थे जिन्होंने ब्रिट्रिश सरकार की श्रम नीति को प्रभावित किया। फिर स्टैंडिंग लेबर कमेटी और इंडियन लेबर कांफ्रेंस के गठन से श्रमिक संबधी मुद्दों पर चर्चा करने के लिए नए मंच मिले।

ब्रिटिश सरकार ने अब ध्यान भारत में बीमारी बीमा योजना चालू करने पर लगाया। इसे तत्कालीन प्रांतीय सरकारों के पास विचार-विमर्श के लिए भेजा गया। अधिकांश प्रांतीय सरकारों को श्रमिकों के पलायनकारी स्वभाव और कार्य-कुशल चिकित्सा सेवाएं सुलभ न होने के कारण इसकी सफलता में संदेह था। इस तरह इस मुद्दे की महत्ता का एहसास होने के बावजूद इसे ठंडे बस्ते में डाल दिया गया। बहरहाल भारत सरकार ने उन क्षेत्रों में इसे लागू करने का प्रयास जारी रखा जहां चिकित्सा सेवाएं उपलब्ध थीं और उसकी पहल पर नियोक्ताओं और कर्मचारियों ने इस योजना में योगदान किया। फिर 1935 में प्रांतीय सरकारों ने भी एक ताजा प्रस्ताव रखा।

बम्बई की सरकार ने 1937 में सामाजिक बीमा की एक व्यापक प्रणाली विकसित कर औद्योगिक श्रमिकों की सुरक्षा को लेकर अपनी दूरदेशी का परिचय दिया। इसी सिलसिले में स्वास्थ्य बीमा के लिए एक सहायक योजना तैयार की। इस योजना में बीमारी और वृद्धावस्था लाभों के लिए प्रावधान किया गया था। बम्बई कपड़ा उद्योग श्रमिक जांच समिति (बांबे टेक्सटाइल लेबर इन्क्वायरी कमेटी) ने

बीमारी बीमा योजना बनाई जिसे बंबई और अहमदाबाद में लागू किया गया। कालांतर में यह योजना अन्य प्रांतों में भी लागू की गई। विभिन्न श्रमिक जांच समितियों की सिफारिशों ने भारत सरकार को भी इस दिशा में कदम उठाने के लिए विवश कर दिया। भारत सरकार ने इन सिफारिशों को 1940, 1941 और 1943 में हुए श्रम मंत्री सम्मेलनों में रखा। सरकार ने प्रोफेसर बी.पी. आडरकर की अध्यक्षता में एक आयोग भारत में श्रमिकों के लिए स्वास्थ्य बीमा योजना बनाने के लिए गठित किया। इसी दौरान त्रिपक्षीय श्रम सम्मेलन (त्रिगुट श्रम सम्मेलन) की सिफारिशों के तहत मजदूरी, आमदनी, रोजगार, आवास और सामाजिक परिस्थितियों इत्यादि प्रश्नों की छानबीन के लिए भी डी.पी. रेगे की अध्यक्षता में एक श्रम जांच समिति गठित हुई। इसके अलावा भारत सरकार ने सर जोजेफ मोरे की अध्यक्षता में एक स्वास्थ्य सर्वेक्षण और विकास समिति भी नियुक्त की।

आडरकर योजना को अंतरराष्ट्रीय श्रम संगठन के विशेषज्ञों ने संशोधित किया, जिसे एक विधेयक के रूप में 1946 में सरकार के सामने पेश किया गया। कालांतर में इस विधेयक को कर्मचारी राज्य बीमा अधिनियम, 1948 के रूप में पारित किया गया। बीमारी, विकलांगता और मातृत्व जैसी आपातिक स्थितियों में श्रमिकों को सुरक्षा प्रदान करने की प्रबल इच्छा की परिणति स्वतंत्र भारत में समेकित सामाजिक सुरक्षा योजनाओं में हुई।

10.3.4 स्वतंत्र भारत में सामाजिक सुरक्षा की प्रकृति

सन् 1950 में भारतीय संविधान अपना लिए जाने और योजनाबद्ध विकास का युग आरंभ होने पर सरकार ने श्रमिक वर्ग के लिए सामाजिक सुरक्षा उपायों की महत्ता को स्वीकारते हुए उनके कल्याण और जीवन की अवांछित आपातिक परिस्थितियों में उन्हें सुरक्षा देने के लिए कई कानून बनाए।

भारत में सामाजिक सुरक्षा आंदोलन के विकास का यह एक विशेष दौर था। देश में पहली बार अंशदायी आधार पर एक समेकित योजना चालू हुई जिसके दायरे में काम करने के दौरान लगने वाली चोटों, बीमारी, मातृत्व इत्यादि तमाम तरह की आपातिक परिस्थितियां लाई गईं। कुछ राज्य सरकारों ने असहाय बूढ़ों और गरीबों के लिए वृद्धावस्था पेंशन जैसी योजनाएं लागू कर सामाजिक सहायता की अवधारणा में एक नया अध्याय जोड़ा। इस योजना को आरंभ करने वाला पहला राज्य उत्तर प्रदेश था। फिर 1952 में अनिवार्य भविष्य निधि योजना चालू की गई जिसमें सभी कारखानों को शामिल किया गया।

समाज के कमजोर तबकों के लिए सामाजिक सुरक्षा सुनिश्चित करने के लिए भारत में अनेक कानून अपनाए जा चुके हैं। मगर ऐसी कोई व्यापक और समेकित योजना नहीं बन पाई है, जो सभी औद्योगिक मजदूरों को विभिन्न आवंछित स्थितियों में सुरक्षा दे सके। इसमें एक बात ध्यान में रखी जानी चाहिए कि सरकारी कार्यक्रम के स्वरूप और आकार को तय करने वाला एक निर्णायक कारक आर्थिक संसाधनों की सुलभता है। देश जितना ही निर्धन होगा सामाजिक सुरक्षा उपायों की आवश्यकता उतनी ही अधिक होगी। मगर इसके साथ ही सरकार की वित्तीय क्षमता उतनी ही कम होती है। परंतु इस सीमा के बावजूद भी आम आदमी के जीवन में आने वाली विभिन्न आपातिक स्थितियों में उसकी सहायता के लिए न्यूनतम आवश्यकता कार्यक्रम बनाया जाना चाहिए।

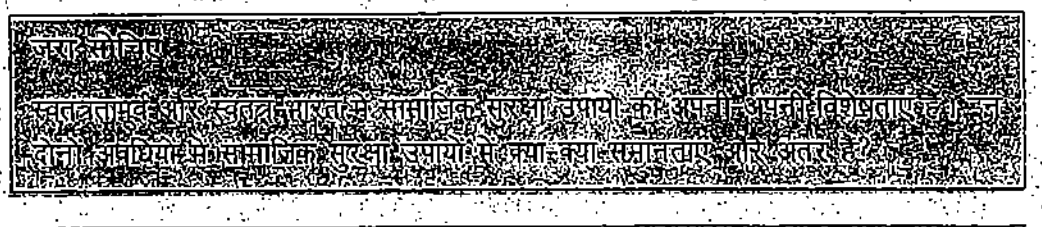

10.4 भारत में सामाजिक सुरक्षा विधान

इस भाग में हम भारत में सामाजिक सुरक्षा के लिए बने कानूनों के बारे में बताएंगे। यहां हम इन

अधिनियमों और उनके तहत आने वाली विभिन्न आपातिक परिस्थितियों के दायरे का अध्ययन करेंगे। हमारे लिए इन कानूनों और कार्यक्रमों को समझना बेहद महत्वपूर्ण है। सभी सामाजिक कार्यक्रमों के पीछे उन लोगों को, जो कई कारणों से स्वयं को अवांछित आपदाओं से बचाने में असमर्थ, असहाय हैं, उन्हें सुरक्षा और सहायता प्रदान कर उनके साथ न्याय करने की भावना है। मगर सभी सामाजिक सुरक्षा उपायों में ऐसा अंतर्निर्मित घटक नहीं है कि जिससे स्त्री-पुरुष समानता आ सके। इसलिए हम प्रमुख सामाजिक सुरक्षा उपायों पर सामान्य चर्चा करेंगे।

10.4.1 श्रमिक मुआवजा अधिनियम 1923

श्रमिक मुआवजा अधिनियम (1923) भारत का पहला सामाजिक सुरक्षा विधान है। इस कानून ने रोजगार के दौरान काम करते हुए कर्मचारी को दुर्घटना के कारण चोट या शारीरिक हानि पहुंचने पर इसके लिए उसके नियोक्ता को उत्तरदायी ठहराया। इस अधिनियम के दायरे में कर्मचारियों की कुछ विशेष निर्दिष्ट श्रेणियों को छोड़कर भारत में शेष सभी श्रमिक आते हैं। सशस्त्र सेनाओं पर यह लागू नहीं होता। लेकिन सरकार को जोखिम भरे पेशों में कार्यरत व्यक्तियों के किसी भी वर्ग को इस अधिनियम के दायरे में शामिल करने का अधिकार है। यहां एक बात ध्यान देने की यह भी है कि जहां कहीं भी कर्मचारी राज्य बीमा योजना लागू हो, वहां यह अधिनियम लागू नहीं होता। क्योंकि इस योजना में विकलांगता और मृत्यु की स्थिति में लाभ दिए जाने का प्रावधान है।

इस अधिनियम में रोजगार से और उसके दौरान या पेशागत रोग से होने वाली सभी तरह की शारीरिक क्षतियां आती हैं। यह महिला और पुरुष कर्मचारियों के लिए समान रूप से लागू होता है। यह अधिनियम किसी दुर्घटना के कारण होने वाली जीविकोपार्जन की हानि के लिए कर्मचारी को मुआवजा दिलाता है।

इसमें श्रमिकों और उनके परिवारों के लिए सामयिक सहायता का प्रावधान है। मुआवजे की राशि कामगार के विकलांग होने या उसकी मृत्यु के समय उसके मासिक वेतन के अनुसार तय होती है। मृत्यु की स्थिति में न्यूनतम मुआवजा 50,000/- रुपया और स्थायी विकलांगता में यह राशि 60,000/- रुपया है।

10.4.2 कर्मचारी राज्य बीमा अधिनियम, 1948

यह अधिनियम चिकित्सा सुविधा, बीमारी, मातृत्व और रोजगार के दौरान नकद भत्ता, काम करने के दौरान शारीरिक चोट से मृत्यु होने पर उसके आश्रितों को पेंशन और बीमाकृत व्यक्ति की अंत्येष्टि के खर्च का प्रावधान करता है।

मौसमी कारखानों को छोड़कर यह अधिनियम सभी कारखानों में लागू होता है जहां 20 या उससे अधिक कर्मचारी काम कर रहे हों और उनका वेतन 1000 रुपये प्रतिमाह से अधिक नहीं हो। इससे अधिक वेतन पाने वाले कर्मचारी और भारतीय सेना, नौसेना और वायुसेना के जवान इस अधिनियम की परिधि से बाहर हैं। सरकार इस अधिनियम को किसी अन्य प्रतिष्ठान पर लागू कर सकती है जिसके लिए उसे इस आशय का छः महीने का नोटिस जारी करना होता है।

यह अधिनियम पुरुष और महिला कर्मचारियों के लिए समान रूप से लागू होता है। इस अधिनियम का उद्देश्य कर्मचारी को चिकित्सा सहायता देने के अलावा ऐसी आपातिक परिस्थिति में उसके परिवार की सहायता करना है।

10.4.3 कर्मचारी भविष्य निधि अधिनियम, 1952

यह अधिनियम प्रत्येक प्रतिष्ठान पर लागू होता है जिसमें 20 या उससे अधिक कर्मचारी कार्यरत हों। प्रतिष्ठान के एक बार इस अधिनियम की परिधि में आ जाने के बाद उसका संचालन इसी के अनुसार होता रहेगा बशर्ते उसके कर्मचारियों की संख्या 20 से नीचे नहीं गिरे। बहरहाल केंद्र सरकार को गैर-कारखाना प्रतिष्ठानों और

20 से कम कर्मचारी वाले प्रतिष्ठानों को भी इस अधिनियम के दायरे में लाने का अधिकार है।

इस अधिनियम का उद्देश्य औद्योगिक मज़दूर के सेवा निवृत्त होने के बाद उसके बेहतर भविष्य और रोजगार के दौरान उसकी मृत्यु हो जाने पर उसके आश्रितों के आर्थिक लाभ के लिए व्यवस्था करना है।

इस अधिनियम के अनुसार सिर्फ वही व्यक्ति कर्मचारी नहीं है जिसे नियोक्ता ने सीधे नियुक्त किया हो। बल्कि ठेकेदार के जरिए नियुक्त व्यक्ति भी कर्मचारी माना जाएगा। यह ऐसे व्यक्तियों को भी अपने दायरे में लेता है जो कारखाने के कार्य से जुड़े हों। इस तरह इसके दायरे में घर पर काम करने वाले श्रमिक भी आ जाते हैं, जैसे बीड़ी बनाने वाला मज़दूर, जो घर में बैठकर बीड़ियाँ बनाता है, बीड़ी के कारखाने से जुड़ा माना जाएगा।

कर्मचारी भविष्य निधि योजना के तहत कर्मचारी को उसके सेवानिवृत्त होने पर एक निश्चित धनराशि मिलती है। यह निधि या फंड कर्मचारी और नियोक्ता से एक निर्दिष्ट अनुपात में अंशदान के द्वारा जमा किया जाता है। बच्चों की शिक्षा, विवाह या घर बनाने के लिए इन जैसी कुछ खास परिस्थितियों में अपने अंशदान में से कुछ राशि निकालने का अधिकार है।

इस अधिनियम के अंतर्गत केंद्र सरकार एक अधिसूचना जारी करके कर्मचारी परिवार पेंशन योजना बना सकती है। इस योजना का उद्देश्य किसी भी व्यावसायिक प्रतिष्ठान या प्रतिष्ठानों के वर्ग में कार्यरत कर्मचारियों को परिवार पेंशन और जीवन बीमा के लाभ प्रदान करना है। परिवार पेंशन निधि या फैमिली पेंशन फंड नियोक्ता और कर्मचारियों के भविष्य निधि (प्रोवडिंट फंड) अंशदान का 25 प्रतिशत हिस्सा लेकर बनाया जाता है। परिवार पेंशन योजना के कार्यान्वयन में आने वाले प्रशासन संबंधी खर्चों के लिए केंद्र सरकार भी अपनी ओर से अतिरिक्त अंशदान इस निधि में करती है। इस निधि का एक भाग उन कर्मचारियों के आश्रितों को पारिवारिक पेंशन के रूप में भुगतान में दिया जाता है जिनकी मृत्यु उनकी सेवा निवृत्ति की आयु से पूर्व ही सेवा काल में हो जाती है।

10.4.4 मातृत्व लाभ अधिनियम, 1961

यह अधिनियम कुछ विशेष प्रतिष्ठानों में शिशु जनन से पूर्व और उसके बाद की विशेष अवधि में महिलाओं के रोजगार को नियमित करता है और उन्हें मातृत्व व कुछ अन्य विशेष लाभ प्रदान करता है। यह अधिनियम उन सभी प्रतिष्ठानों पर लागू होता है, जहां घुड़दौड़, बाजीगरी और अन्य तरह के प्रदर्शनों के लिए व्यक्ति नियुक्त हों, हर दुकान और व्यावसायिक प्रतिष्ठान पर भी यह कानून लागू होता है जहां 10 या उनसे अधिक व्यक्ति एक वर्ष से नियुक्त हों।

यह कानून गर्भवती महिलाओं को उनके प्रसव काल से छः हफ्ते पहले और छः हफ्ते बाद वेतन सहित छुट्टियों के रूप में सुरक्षा प्रदान करता है। अगर नियोक्ता प्रसव पूर्व और प्रसव बाद की देखभाल के लिए कोई आर्थिक सहायता प्रदान नहीं करता है तो उन्हें इस वेतन सहित छुट्टी के अलावा 25 रुपये का नकद भुगतान किया जाता है। प्रसव के बाद काम पर लौटी नई मां को नियत अवधि के नर्सिंग अवकाश की अनुमति भी दी जाती है।

अनुभव से सीखें 1

कुछ ही समय पूर्व मातृत्व लाभ अधिनियम में कुछ [illegible] किए गए हैं। इस सिलसिले में सरकारी और निजी क्षेत्र में कार्यरत एक-एक कर्मचारी से [illegible]। उनसे इस अधिनियम के प्रति उनके नियोक्ताओं के दृष्टिकोण के बारे में तथा महिला कर्मचारियों के विचार भी जानने के प्रयास कीजिए। इस सारी सूचनाओं को एकत्र करने के बाद मातृत्व लाभ अधिनियम के बारे में जागरूकता और अंतराल [illegible] की टिप्पणी लिखिए। इस पर अपने अध्ययन केंद्र के अन्य विद्यार्थियों के साथ चर्चा कीजिए।

एक कर्मचारी जो प्रजनन का सामाजिक दायित्व संभाल रही हो वह समाज और नियोक्ता से कुछ विशेष लाभ और रियायतें पाने की हकदार है जहां वह काम कर रही हो। अभी हाल ही में नए पेताओं को पितृत्व अवकाश दिए जाने का प्रचलन भी शुरू हो गया है ताकि वे अपने नवजात शिशु और नई-नई मां बनी पत्नी की देखभाल की जिम्मेदारी निभा सकें। यह ऐसे दौर में अनिवार्य हो गया है, जिसमें छोटा परिवार आम बात होती जा रही है।

10.4.5 ग्रेच्युटी भुगतान अधिनियम, 1972

इस अधिनियम में एक योजना का प्रावधान है, जिसके तहत रोज़गार के दौरान कर्मचारी से ली गई सेवाओं के सम्मान के लिए प्रतीक के रूप में उसे ग्रेच्युटी का भुगतान किया जाता है। कारखानों, खदानों, तेल क्षेत्र, बंदरगाह, बागान, रेलवे कम्पनियों, दुकानों और अन्य प्रासंगिक प्रतिष्ठानों में कार्य करने वाले कर्मचारी इस अधिनियम के दायरे में आते हैं। इसे लागू करने के लिए यह जरूरी है कि संबंधित प्रतिष्ठान में 10 या उससे अधिक कर्मचारी पिछले 12 महीने में किसी एक दिन काम कर रहे हों।

इस अधिनियम के तहत अगर एक कर्मचारी ने कम से कम पांच वर्ष तक कार्य किया हो तो उसकी सेवा समाप्त होने पर उसे ग्रेच्युटी का भुगतान किया जाना चाहिए। यह भुगतान उसके सेवा निवृत्त होने या त्यागपत्र देने या दुर्घटना या बीमारी के कारण उसकी मृत्यु पर किया जाता है। या राशि सेवानिवृत्त व्यक्ति के अपनी वृद्धावस्था के लिए योजना बनाने या उसकी मृत्यु की स्थिति में उसके आश्रितों के लिए निश्चित ही सहायक होती है।

10.5 भारत में सामाजिक सुरक्षा सुनिश्चित करने के लिए सरकारी योजनाएं

इकाई के इस भाग में हम केंद्र या राज्य सरकारों द्वारा चलाई गई विभिन्न सामाजिक सुरक्षा योजनाओं के बारे में चर्चा करेंगे। विभिन्न प्रकार की कठिन परिस्थतियों से सुरक्षा प्रदान करने के लिए कई योजनाएं आरंभ की गई हैं लेकिन ये सभी योजनाएं स्त्री-पुरुष परिप्रेक्ष्य पर प्रभाव नहीं डालतीं। हम कुछ सामाजिक सुरक्षा योजनाओं पर अपनी चर्चा केंद्रित करेंगे जो स्त्री-पुरुष समानता की ओर ले जाने के लिए बनाई गई हैं। केंद्र सरकार ने जो योजनाएं चलाई हैं उनमें से कई का प्रशासन और कार्यान्वयन राज्य सरकारों के अधीन है। फिर केंद्र सरकार द्वारा शुरू की गई सभी योजनाएं राज्यों द्वारा नहीं चलाई जाती। तिस पर जहां-जहां इन्हें चलाया जाता है, इनके कार्यान्वयन के तौर-तरीकों में काफी भिन्नताएं देखने में आती हैं। इनमें से कई योजनाओं की सफलता में एक महत्वपूर्ण विशेषता इनके कार्यान्वयन में स्वयंसेवी संगठनों का सहयोग रहा है।

10.5.1 समेकित ग्रामीण विकास कार्यक्रम

यह एक केंद्र द्वारा प्रायोजित कार्यक्रम है जिसके लिए धन केंद्र सरकार और राज्य सरकारें 50 : 50 के अनुपात में देती हैं। इस कार्यक्रम का उद्देश्य छोटे, ग्रामीण क्षेत्रों में सीमांत किसानों और खेतिहर मजदूरों की सहायता देना है। इसमे अनुसूचित जातियों, जनजातियों, महिलाओं और बच्चों के लिए विशेष सुरक्षा प्रावधान हैं। इस योजना में उपरोक्त तबकों को स्वरोजगार के लिए प्रोत्साहित कर गरीबी की रेखा से उपर उठाने में उनकी सहायता करना है।

इस कार्यक्रम का निर्देशक सिद्धांत 'गरीबी की रेखा' को सभी स्रोतों से परिवार की वार्षिक आमदनी के रूप में ऑकना है। किसी परिवार की सालाना आमदनी अगर 6400/- रुपये से ऊपर नहीं है तो वह गरीबी की रेखा के नीचे है। यह कार्यक्रम उस परिवार को 6400/- रुपये की वार्षिक आमदनी तक पहुंचने और प्रशिक्षण, दक्षता विकास के द्वारा और उन्हे कच्चा माल या वित्तीय

निर्धनता का जीवन !

सौजन्य : सी एस आर, नई दिल्ली

सहायता देकर उसे अपनी आमदनी को बढ़ाने में मदद करता है। इस योजना के तहत सबसे गरीब लोगों को प्राथमिकता दी जाती है।

इस कार्यक्रम में परिवार को एक इकाई मानकर चला जाता है। इसलिए इसमें परिवार के सदस्यों के बीच स्त्री-पुरूष समानता की अवधारणा पर कोई ध्यान नहीं दिया जाता। मगर आइ आर डी पी के तहत चलने वाली विभिन्न योजनाओं के लाभों को मुरुषों और महिलाओं दोनों तक समान रूप से पहुंचाने के प्रयास किए जा रहे हैं।

10.5.2 ग्रामीण क्षेत्रों में महिला एवं बाल विकास

यह आइ आर डी पी की एक उपयोजना है जिसका मुख्य उद्देश्य गरीबी रेखा से नीचे के परिवारों की महिला सदस्यों पर ध्यान देना है। यह योजना महिलाओं को स्व-रोजगार के अवसर उपलब्ध कराने के लिए बनाई गई है। इस योजना की जरूरत इसलिए महसूस की गई कि आइ आर डी पी के अंतर्गत लाभ उठाने वाले परिवारों की महिलाओं को आइ आर डी पी से कोई प्रत्यक्ष लाभ होता दिखाई नहीं दे रहा था।

ग्रामीण क्षेत्र महिला एवं बाल विकास (डी डब्ल्यू सी आर ए) की एक बड़ी विशेषता यह है कि आई आर डी पी (समेकित ग्रामीण विकास कार्यक्रम) के तहत परिवार को सहायता की इकाई मानकर चला जाता है, जबकि यह योजना एक सामूहिक रणनीति लेकर चलती है। इस योजना की सदस्य महिलाएं 10 से 15 महिलाओं के समूह बनाकर अपनी दक्षताओं, रुचियों और स्थानीय परिस्थितियों के अनुसार आर्थिक गतिविधियां आरंभ करती हैं। सामूहिक रणनीति ग्रामीण महिलाओं को साथ लेकर सामाजिक

नो को तोड़ने के लिए प्रेरित करने के लिए बनाई गई थी जिन्होंने उन्हें स्वावलंबी बनने और
ादनी अर्जन के अवसरों से वंचित रखा था।

योजना के अंतर्गत महिलाओं के एक समूह को सहायता दी जाती है। उन्हें 15000 रुपये की एक
ी सहायता राशि दी जाती है जिसमें राज्य केंद्र सरकार और यूनिसेफ द्वारा बराबर अंशदान किया
ा है। यह सहायता राशि कच्चा माल खरीदने और माल बेचने के प्रयासों के अलावा समूह
जक को मानदेय देने, आमदनी अर्जन किया-कलापों के लिए ढांचागत सहायता, और बच्चे की
-रेख सुविधा पर खर्च किया जा सकता है।

कार्यक्रम प्रेरणा, दृष्टिकोण में बदलाव और जागरूकता लाने के लिए प्रशिक्षण पर सबसे अधिक
र देता है और इस तरह स्त्री-पुरुष समानता की ओर ले जाता है।

.5.3 जवाहर रोज़गार योजना

कार्यक्रम का मुख्य उद्देश्य बेरोज़गार और अर्धरोज़गार प्राप्त लोगों के लिए अतिरिक्त लाभदायक
गार के अवसर उत्पन्न करना है। इस कार्यक्रम के लिए आर्थिक सहायता राज्य और केंद्र सरकार
श: 20 से 80 के अनुपात में प्रदान करती हैं। इस राशि से सामाजिक वानिकी, पुश्तें बनाने, कुएं
दने, भूमि विकास और खेत बनाने, स्कूल बनाने, आंगनबाड़ी और बालवाड़ी जैसे कार्यक्रम चलाए
ते हैं।

ाहर रोजगार योजना के अंतर्गत मजदूरी न्यनतम वेतन अधिनियम 1948 के आधार पर दी जाती
इसके अलावा शिशु सदन, ताजा पीने का पानी इत्यादि भी मजदूरों को उपलब्ध कराए जाते हैं।

स्त्री-पुरूष समानता के लिए प्रशिक्षण
सौजन्य : सी. डब्ल्यू. डी. एस., नई दिल्ली.

10.5.4 प्रधानमंत्री रोजगार योजना

यह योजना शिक्षित बेरोजगार व्यक्तियों को अपना व्यवसाय या उद्यम लगाने के लिए प्रोत्साहन और सहायता देने के लिए शुरू की गई है। इसका उद्देश्य शहरी और ग्रामीण युवकों के लिए स्व-रोजगार के अवसर पैदा करना है। इस योजना के तहत उद्यमी को अपने अपने उद्यम की परियोजना प्रस्ताव के लिए एक लाख रुपये तक का कर्ज मिलता है। महाराष्ट्र के लिए एक विशाल लक्ष्य रखा गया है जहां युवाओं और युवतियों ने भारी संख्या में इस योजना का लाभ उठाया है।

इस योजना के तहत केंद्र सरकार से 15 प्रतिशत या अधिकतम 7000/- रुपया सहायता के रूप में आता है। परियोजना की अनुमानित लागत का 95 प्रतिशत राष्ट्रीयकृत बैंकों या वित्तीय संस्थानों से ऋण के रूप में प्राप्त किया जा सकता है। शेष 5 प्रतिशत संबंधित उद्यमी को अपने स्रोतों से जुटाना होता है।

इस योजना के अंतर्गत प्रशिक्षण कार्यक्रमों, औद्योगिक मेलों का आयोजन और विशेषज्ञों से परामर्श जैसी सहायता भी उद्यमियों को दी जाती है।

10.5.5 राष्ट्रीय महिला विकास कोष

इसकी स्थापना महिलाओं में सामर्थ्य उत्पन्न करने और विकास को प्रोत्साहन देने के लिए की गई है। इस कोष का मुख्य उद्देश्य गरीब महिलाओं की अपने खुद के संसाधन उत्पन्न करने में सहायता करना है ताकि सामाजिक बदलाव आ सके। इस कोष का प्रयोग रोज़गार पैदा करने, धन जुटाने, बंधक छुड़ाने और सामाजिक जरूरतों या आकस्मिक जरूरतों की पूर्ति के लिए किया जा सकता है। इस योजना के तहत स्थानीय स्वयंसेवी संगठनों की सहभागिता को बढ़ावा दिया जाता है।

10.5.6 महिला कल्याण योजनाएं

महिलाओं के कल्याण के लिए अनेक योजनाएं चलाई गई हैं। इन योजनाओं के तहत कई तरह की सहायक कार्य-प्रणालियां आरंभ की गई हैं ताकि महिलाएं अपने जीवन में आने वाली कठिन परिस्थितियों का सामना कर सकें।

- गरीब महिलाओं के लिए संस्थागत सहायता
- मेहर (मैका) योजना
- राहत गृह
- जिला दक्षता समिति
- महिला प्रशिक्षण संस्थान
- व्यावसायिक प्रशिक्षण के लिए छात्रवृत्ति
- स्व-रोजगार के लिए सहायता
- बेटियों के विवाह के लिए अनपढ़ महिलाओं को सहायता
- देवदासियों का पुनर्वास
- देवदासियों के बच्चों के लिए शिक्षा सहायता
- कामकाजी महिलाओं के लिए छात्रावास
- बच्चों के लिए शिशु सदन
- महिला बचत प्रोत्साहन योजना
- सरकारी और अर्ध-सरकारी उद्यमों में महिलाओं के लिए आरक्षण।

जरा सोचिए 3

भारत सरकार ने महिलाओं की सामाजिक सुरक्षा के लिए अनेक योजनाएं आरंभ की हैं। इन योजनाओं की प्रमुख विशेषताएं बताइए। आपके विचार में क्या इन योजनाओं में सुधार की कोई गुंजाइश है।

10.6 सामाजिक सुरक्षा और स्त्री-पुरुष समानता

पिछले दो भागों में हमने कुछ अधिनियमों और योजनाओं का अध्ययन किया जो विशेष परिस्थितियों जनता के एक विशेष समूह के लिए सामाजिक सुरक्षा प्राप्त करने का प्रयास करते हैं। इस भाग हम इन सामाजिक सुरक्षा उपायों के जरिए स्त्री-पुरुष समानता सुनिश्चित करने वाले प्रयासों के रे में चर्चा करेंगे। कानूनों और नीतियों में स्त्री-पुरुष निरपेक्ष और स्त्री-पुरुष केंद्रित नज़रिए को मझना अति महत्वपूर्ण है। अधिकांश अधिनियम और योजनाएं बिना किसी भेद के महिलाओं और रुषों दोनों के लिए लागू होती है। इसलिए यही अपेक्षा की जाती है कि इनसे महिलाएं और पुरुष नों ही समान रूप से प्रभावित होते हैं। दुर्भाग्यवश वास्तविकता इससे कोसों दूर है। भारत जैसे ातृसत्तात्मक स्तरीबद्ध समाज में महिलाओं के लिए बनाए गए कार्य क्रमों का लाभ उन्हें नहीं मिलता । वे उन्हीं के लिए हों। मातृत्व लाभ अधिनियम महिलाओं को विशेष लाभ सुलभ करने के लिए बना । मगर दुर्भाग्यवश अधिनियम में कमजोरियां, कमियां ढूंढकर इन लाभों को देने से बचा जाता है सके लिए नियोक्ता या तो काम-काजी महिलाओं की संख्या को अधिनियम में निर्दिष्ट संख्या से कम खते हैं या फिर युवा, नव विवाहिताओं को काम पर रखते ही नहीं हैं।

10.6.1 स्त्री-पुरुष समानता के लिए किए जाने वाले सामाजिक सुरक्षा उपायों की सीमाएं

धिकांश सामाजिक सुरक्षा कानूनों के मामले में संगठित क्षेत्र जैसे कारखाना कंपनी, सरकारी दफ्तरों त्यादि में कार्यरत मजदूरों पर ही ध्यान दिया गया है। संगठित श्रमिकों के सामने आने वाली बीमारी, द्धावस्था, दुर्घटना जैसी आपातिक परिस्थितियां इन कानूनों के दायरे में आती हैं। मगर 90 प्रतिशत ामकाजी महिलाएं असंगठित अनौपचारिक क्षेत्र में मुख्यत: स्व-रोजगाररत या दिहाड़ी मज़दूरों के रूप लगी हुई हैं। ये दोनों श्रेणियां किसी भी अधिनियम के दायरे में नहीं आती हैं। इसलिए जिन हिलाओं को इन सामाजिक सुरक्षा कानूनों का लाभ मिल रहा है, वे या तो संगठित क्षेत्र में काम कर ी हैं या फिर वे संगठित क्षेत्र में लगे पुरुषों की संबंधी हैं। महिलाओं को यदि कोई लाभ मिलता है यह सिर्फ मौजूदा कानूनी प्रणाली का एक हिस्सा मात्र होता है। इसमें महिलाएं कोई भी लाभ धिकार के रूप में प्राप्त नहीं करतीं बल्कि वे अपने पुरुष संबंधियों के अधिकारों को प्राप्त करने ली होती हैं।

रकार द्वारा प्रायोजित योजनाओं में स्थिति कुछ बेहतर कही जा सकती है। अधिकांश योजनाओं में हेलाओं को इनका विशेष लक्षित लाभार्थी बताया गया है। जो महिलाएं इन योजनाओं के तहत भार्थी बनने योग्य हैं उन्हें इनके लाभ पाने का अधिकार है। इन योजनाओं का प्रयोजन महिलाओं । अपनी दक्षताओं को उन्नत बनाने, अपने संसाधनों को बढ़ाने, उनकी सहायता करना, बेहतर वन के लिए अवसर उत्पन्न करना और पुरुष और महिलाओं के बीच स्वस्थ और समानता का तावरण बनाना है।

ी-पुरुष समानता स्त्री-पुरुष सोच निरपेक्षता एक ही नहीं है। कानून और नीतियां स्त्री-पुरुष की त नहीं करती है और अनिवार्यत: स्त्री-पुरुष समानता की ओर नहीं ले जाती। बल्कि ये बहुधा ी-पुरुष सोच जनित पूर्वाग्रहों से ग्रस्त होते हैं। ये पूर्वाग्रह पुरुषों के पक्ष में जाते हैं और ये महिलाओं

के लिए समाज द्वारा निर्दिष्ट भूमिका और आदर्शों को ही चिर-स्थायी बनाते हैं। स्त्री-पुरुष सोच न्याय के मुद्दे की कलई इस नज़रिए से खुल जाती है जो महिलाओं को 'समाज के असुरक्षित, असहाय तबके' को मानकर चलता है। इसीलिए भारत में सामाजिक सुरक्षा विधानों और योजनाओं को स्त्री-पुरुष समता हासिल करने में कोई सफलता नहीं मिल पाई है।

समानता को पुरुष और महिलाएं जिस तरह से लेती हैं वह एक दूसरे से भिन्न है। समानता की स्त्री-पुरुष निरपेक्ष अवधारणा पुरुषों और महिलाओं के बीच असमानता को ही बढ़ाती है। स्त्री-पुरुष निरपेक्ष अवधारणा असल में स्त्री-पुरुष परिपेक्ष को पूरी तरह से नज़र-अंदाज कर देती है। इस इकाई में जिन सामाजिक सुरक्षा उपायों के बारे में बताया है उनके उद्देश्य निस्संदेह प्रशंसनीय हैं। मगर उपलब्ध आर्थिक संसाधन, राजनीतिक इच्छा, प्रशासनिक खर्च इत्यादि स्त्री-पुरुष समता की राह में कठिनाइयां पैदा करते हैं।

इसमें दो राय नहीं है कि कानून सामाजिक परिवर्तन का माध्यम है। मगर सामाजिक नियमों को बदलने में इसकी नैसर्गिक सीमाएं हैं। बाल-विवाह रोक अधिनियम और दहेज निषेध अधिनियम के उदाहरण बताते हैं कि कानूनों के बन जाने से वास्तविकता नहीं बदल पाई है। बाल विवाह अभी भी धड़ल्ले से पूरे गाजे-बाजे के साथ हो रहे हैं। राजस्थान के किसी गांव में सक्रिय साथिन सामाजिक कार्यकर्ता ने जब बाल-विवाह के विरोध का साहस दिखाया तो उसके साथ सामूहिक बलात्कार कर उसे सजा दी गई और उसके परिवार का सामाजिक बहिष्कार किया गया। बलात्कार जैसा जघन्य अपराध करने वाले और बाल विवाह कराने वाले दोषी व्यक्तियों को सजा नहीं मिली। जाहिर है कि ऐसे कानून निरर्थक हैं। सभी को यह मालूम है कि दहेज लेना और देना दोनों कानूनन अपराध हैं। इसके बावजूद भी यह अपराध अमीर-गरीब, शिक्षित अनपढ़ शहरी-देहाती और कानून बनाने वाले और उसे लागू करने वाले सभी खुलमखुल्ला खूब कर रहे हैं।

असल में इससे यही बात स्पष्ट होती है कि कानून हालांकि सामाजिक परिवर्तन का एक हथियार है लेकिन इसकी अपनी सीमाएं हैं। चिरकाल से चली आ रही परंपराओं और प्रचलनों में परिवर्तन लाने में कानून पूरी तरह से असमर्थ है। ऐसी स्थिति में कानून निर्देशक सिद्धांत प्रदान कर सकता है जिसे आदर्श समाज को अनुसरण करना चाहिए। बाल-विवाह, दहेज, स्त्री-पुरुष जनित पूर्वाग्रह और भेदभाव जैसे प्रचलन धीरे-धीरे ही बदले जा सकते हैं। क्योंकि प्राचीन दकियानूसी विचारों को बदलने के लिए भगीरथ प्रयत्न करना पड़ता है। ऐसे में सजा का भय अपने आप में पर्याप्त निवारक उपाय नहीं हो सकता। ऐसी सामाजिक बुराइयों के बारे में जन चेतना बढ़ाकर और उसके साथ कानूनी प्रावधानों का कड़ाई से अनुपालन करके ही हम वांछित परिणाम प्राप्त कर सकते हैं।

फिर भारत जैसे विकासशील देशों की अपनी अनेक समस्याएं हैं। जैसे जनसंख्या वृद्धि, गरीबी, समाज के सदस्यों के बीच भारी विषमता, औद्योगीकरण का दबाव, बेरोज़गारी, संसाधनों की कमी, पिछड़ापन, निरक्षरता इत्यादि। संगठित क्षेत्र में काम कर रहे सभी लोगों को सामाजिक सुरक्षा सुनिश्चित करने के प्रयास को ही जनसंख्या का आकार एक बड़ा आर्थिक बोझ बना देता है। अब अगर पूरी आबादी को इस दायरे में लाया जाए तो राष्ट्र इस अतिरिक्त जिम्मेदारी से उत्पन्न आर्थिक बोझ को नहीं ढो सकेगा। मगर कोई भी देश इसके बहाने निष्क्रिय होकर अपने नागरिकों के प्रति जिम्मेदारी से नहीं बच सकता। उसे अपने प्रयासों को पूरी सामर्थ्य से जारी रखना चाहिए।

ये कुछ सीमाएं और कमियां हैं जो सभी जरूरतमंदों के लिए सामाजिक सुरक्षा निश्चित करने और स्त्री-पुरुष समानता लाने की प्रक्रिया में सामने आती हैं।

ज़रा सोचिए 4

भारत में सामाजिक सुरक्षा उपाय समाज में स्त्री-पुरुष समानता लाने के लिए क्या पर्याप्त और कारगर हैं? इस प्रश्न का उत्तर देने के लिए इकाई के पिछले भाग को सावधानीपूर्वक पढ़िए।

10.7 सारांश

स इकाई में हमने सामाजिक सुरक्षा उपायों के विभिन्न आयामों के बारे में बताया। हमने अपनी र्चा इस शब्द की संकल्पनात्मक व्याख्या और इस अवधारणा के मूल सिद्धांतों से शुरू की। फिर मने भारत में सामाजिक सुरक्षा के उदय और उसकी प्रक्रिया पर भी चर्चा की। इसमें हमने स्वतंत्रता र्व और स्वतंत्र भारत में सामाजिक सुरक्षा उपायों की मुख्य विशेषताओं के बारे में बताया। भारत रकार द्वारा शुरू किए गए सामाजिक सुरक्षा कानूनों और योजनाओं पर विस्तार से चर्चा की गई। त्री-पुरुष के आयामों को इकाई के अधिकांश भागों में लिया गया, तो इकाई के अंतिम भाग में भारत ं सामाजिक सुरक्षा उपायों की सीमाओं की चर्चा की गई।

10.8 शब्दावली

र्मार्थ संस्था : बिना किसी व्यावसायिक लाभ के समाज के बृहत्तर कल्याण के लिए काम करने वाले संस्थान।

वेकासशील देश : विश्व के ऐसे देश जिनका सकल घरेलू उत्पाद विकसित औद्योगिक देशों से कम है और जो मौजूदा विकास दर को बढ़ाने के प्रयास में लगे हुए हैं।

10.9 कुछ उपयोगी पुस्तकें

हमद, डेरेज, हिल्स, सेन (संपादक) (1991) *सोशल स्क्योरिटी इन डेवेलपिंग कंट्रीज़*. ऑक्सफोर्ड लेरेंडन प्रेस.

टनागर, दीपक (1984) *लेबर वेलफेयर एंड सोशल सिक्योरिटी लेजिस्लेन्शस इन इंडिया*. नई दिल्ली दीप एंड दीप पब्लिकेशंस.

ति, एस.सी., (1971) *इंडियन लेबर प्रॉब्लम्स*. इलाहाबाद : चैतन्य पब्लिशिंग हाउस.

सन, एन. (1965) *सोशल सिक्योरिटी इन द फ्रेमवर्क ऑफ इकॉनामिक डेवलपमेंट*. अलीगढ़ : लीगढ़ मुस्लिम विश्वविद्यालय.

ाज, सेबस्टी एल., (1991) *क्वेस्ट फॉर जस्टिस*. मद्रास : टी.आर. पब्लिकेशंस.

संदर्भ

अग्रवाल बीना (1994) ए फील्ड ऑफ वन्स ओन : वूमैन एंड लैंड राइट्स इन साउथ एशिया। कैम्ब्रि

अहमद, देरजी, हिल्स,, सेन (ईडी) (1991) सोशल सिक्यूरिटी इन डेवलपमेंट कंट्रीज़। ऑक्सफो क्लरिंडन प्रेस।

एन्थ्रोपॉलोजिकल सर्वे ऑफ इंडिया। मैन इन मैन, रांची।

भटनागर, दीपक (1984) लेबर वेल्फेयर एंड सोशल सिक्यूरिटी लेजिसलेशन इन इंडिय नई दिल्ली: दीप एंड दीप पब्लिकेशंस।

कमेटी ऑन द स्टेट्स ऑफ वूमैन (1980) टुवर्डस इक्वालिटी। नई दिल्ली।

कंट्री रिपोर्ट फौर्थ वर्ल्ड कॉफ्रेंस ऑन वूमैन (1995)। भारत सरकार : मानव संसाधन विकास मंत्रा

क्राइम इन इंडिया (1995), नेशनल क्राइम रिकॉर्ड ब्यूरो (एन सी आर बी), गृह मंत्रालय, भा सरकार, नई दिल्ली।

हसन, एन (1965) सोशल सिक्यूरिटी इन द फ्रेमवर्क ऑफ इकॉनामिक डेवलपमेंट, अलीगढ़ : अली मुस्लिम विश्वविद्यालय।

केलकर, गोविन्द और नाथन देव (1990) जेंडर एंड ट्राइब, नई दिल्ली : काली फॉर वूमैन।

कुदचेदकर, शिरिन और सबिहा अल-इसाक (1998) वायलेंस अगेन्स्ट वूमैन : वूमैन अगेन्स्ट वायले दिल्ली : पेनक्राफ्ट इंटरनेशनल।

लीगल एंड हैंडबुक फॉर डोमेस्टिक वायलेंस-1 (1992) लॉयर्स कलक्टिव, नई दिल्ली : काली फ वूमैन।

मुखोपाध्याय, स्वप्ना (1998) इन द नेम ऑफ जस्टिस : वूमैन एंड लॉ इन सोसायटी, नई दिल्ली मनोहर।

मल्टिपल एक्शन रिसर्च ग्रुप (एम ए आर जी), (1996) विदइन द फोर वाल्स : ए प्रोफाइल ऑ डोमेस्टिक वायलेंस, नई दिल्ली।

नेशनल पर्सपेक्टिव प्लान फॉर वूमैन (एन पी पी) (1988-2000 ए.डी.) मानव संसाधन विक मंत्रालय, भारत सरकार, नई दिल्ली।

पंत, एस.सी. (1971) इंडियन लेबर प्रॉब्लम्स, इलाहाबाद : चैतन्य पब्लिशंग हाउस।

राज सेबस्ती एल. (क्वेस्ट फॉर जस्टिस) मद्रास : टी आर पब्लिकेशन्स।

रतन लाल और धीरजी लाल (1987) दि इंडियन पेनल कोड 26, एडीशन नागपुर : वाधा एंआर लि.।

रिचर्ड, लॉनी (1971) दि स्पीकिंग ट्री। ओ यू पी।

सक्सेना, शोभा (1995) क्राइम अगेन्स्ट वूमैन एंड प्रोटैक्टिव लॉज, नई दिल्ली : दीप एंड दी पब्लिकेशन्स।

तिवारी, स्मिता जस्सल (1998) कस्टम, लैण्डआनरसिप एंड वूमैन : ए कॉलोनियल लेजिसलेशन ए नार्थ इंडिया। सेंटर फॉर वूमैन्स डेवलपमेंट स्टडीज़, नई दिल्ली।

उत्तर प्रदेश
राजर्षि टण्डन मुक्त विश्वविद्यालय

स्त्री-पुरुष समानता के लिए
संवैधानिक और वैधानिक आधार

खंड

4

महिला आंदोलन और कानूनी परिवर्तन

खंड प्रस्तावना: महिला आंदोलन और कानूनी परिवर्तन

इकाई 11
बलात्कार 5

इकाई 12
दहेज 24

इकाई 13
परिवार अदालत 32

इकाई 14
स्त्री-पुरुष समान्ता और परम्परागत अधिकार 44

संदर्भ 51

खंड 4 प्रस्तावना

यह खंड पिछले खंड का ही विस्तार है जिसमें स्त्री-पुरुष समानता के लिए बनाए गए कानूनों और वैधानिक सुधारों की चर्चा की गई है। खासतौर पर इकाई 8 की बात को ही यहां आगे बढ़ाया गया है जिसमें 'महिलाओं के खिलाफ हिंसा' पर विचार किया गया है। यह बात किसी से छिपी हुई नहीं है कि जन्म लेते ही स्त्री पर खतरे के बादल मंडराने लगते हैं। विभिन्न संवैधानिक प्रावधानों के बावजूद महिलाएं घरेलू हिंसा, पारिवारिक हिंसा और कार्य स्थल पर होनेवाली हिंसा का शिकार बनती हैं।

बलात्कार महिलाओं के खिलाफ किया जाने वाला जघन्य कृत्य है। इकाई 11 में हमने न केवल बलात्कार की कानून परिभाषा पर विचार किया है बल्कि इस अपराध से लड़ने के लिए महिलाओं के पक्ष में बनाए गए अनेक कानूनी प्रावधानों की भी चर्चा की गई है। उदाहरणस्वरूप कई मुकदमों का भी जिक्र किया गया है और इसके जरिए मौजूदा कानूनी व्यवस्था की खामियों की ओर इशारा किया गया है। इस इकाई में नजदीकी रिश्तेदारों द्वारा किए जाने वाले इस जघन्य कृत्य का संख्यात्मक विश्लेषण और तालिका भी प्रस्तुत की गई है।

इकाई 12 में एक दूसरे प्रकार की हिंसा अर्थात दहेज की चर्चा की गई है जिसने आज दैत्याकार रूप ले लिया है। विद्वानों का एक समूह और महिला कार्यकर्ताएं भारत में दहेज संस्था की प्रासंगिकता पर सवालिया निशान लगा रहे हैं। इस प्रथा को समाप्त करने के लिए कई कानूनी प्रावधान बनाए गए हैं परंतु इसका कोई खास लाभ नहीं हुआ है।

खंड 1 और 2 तथा उपर्युक्त वर्णित इकाइयों को पढ़ने के बाद आपके सामने कानूनी व्यवस्था की सीमाएं स्पष्ट हो गई होंगी।

इन सीमाओं को ध्यान में रखते हुए महिलाओं और परिवार के कल्याण में लगे/लगी कार्यकर्ता पारिवारिक झगड़ों को निपटाने के लिए अलग से परिवार अदालत स्थापित करने की मांग करने लगे। इकाई 13 में इसी पक्ष पर विचार किया गया है। इसमें परिवार अदालतों की आवश्यकताओं के साथ-साथ इन अदालतों की प्रमुख विशेषताओं की भी चर्चा की गई है। इन अदालतों की कार्य पद्धति को समझाने के लिए समुचित उदाहरण भी प्रस्तुत किए गए हैं।

इस खंड की अन्तिम इकाई में महिलाओं के अधिकारों से जुड़े विभिन्न कानूनी पक्षों और स्त्री-पुरुष समानता की चर्चा की गई है। परम्परागत अधिकारों और जनतांत्रिक अधिकारों के बीच के संबंधों को व्याख्यायित और विश्लेषित करने के लिए परम्परागत अधिकारों और सामान्य कानूनी प्रथाओं का भी परीक्षण किया गया है। इस संबंध को स्पष्ट रूप से समझाने के लिए देश के विभिन्न भागों के उदाहरण प्रस्तुत किए गए हैं। आप देखेंगे कि परम्परागत रूप से महिलाओं को मिले सामाजिक अधिकारों में काफी असमानता है।

इकाई 11 बलात्कार

रूपरेखा

11.0 उद्देश्य

11.1 प्रस्तावना

11.3 महिलाओं के खिलाफ अपराध: अवधारणा और प्रकार

11.3 बलात्कार: महिलाओं के खिलाफ एक जघन्य अपराध

- 11.3.1 कानूनी परिभाषा
- 11.3.2 सामूहिक बलात्कार
- 11.3.3 बलात्कार करने का प्रयास
- 11.3.4 हिरासत में बलात्कार

11.4 प्रमाण और दंड

- 11.4.1 प्रमाण के कुछ महत्वपूर्ण पक्ष
- 11.4.2 प्रमाण के संबंध में सर्वोच्च न्यायालय का फैसला
- 11.4.3 बलात्कार के लिए दंड

11.5 बलात्कार पीड़ितों को मुआवजा और संरक्षण

11.6 बलात्कार रोकने के उपाय

- 11.6.1 महिला अधिकार आयोग
- 11.6.2 महिलाओं को प्रभावित करने वाले कानूनों की समीक्षा
- 11.6.3 सर्वोच्च न्यायालय के निर्देश
- 11.6.4 राष्ट्रीय महिला आयोग द्वारा जन जागरूकता कार्यक्रम

11.7 आंकड़े और कुछ उदाहरण

- 11.7.1 राष्ट्रीय आंकड़े
- 11.7.2 दिल्ली में बलात्कार के मामले

11.8 सारांश

11.9 शब्दावली

11.10 कुछ उपयोगी पुस्तकें

11.0 उद्देश्य

बलात्कार महिलाओं के खिलाफ की जाने वाली जघन्य हिंसा है। इस अपराध से लड़ने के लिए कई कानूनी प्रावधान बनाए गए हैं। इस इकाई को पढ़ने के बाद आप:

- बलात्कार के लिए बनाए गए कानूनी प्रावधानों की व्याख्या कर सकेंगे,
- बलात्कार के मामले में प्रमाण के मुद्दों और बलात्कारी को दिए जाने वाले दंड का विश्लेषण कर सकेंगे,

- बलात्कार पीड़ितों को दिए जाने वाले संरक्षण के प्रावधानों का विश्लेषण कर सकेंगे,
- राज्य और राष्ट्रीय स्तर के आंकड़ों और कुछ उदाहरणों की सहायता से बलात्कार की परिघटना का विवेचन कर सकेंगे, और
- भारतीय समाज में बलात्कार को रोकने के लिए किए उपायों का विश्लेषण कर सकेंगे।

11.1 प्रस्तावना

बलात्कार एक ऐसा अपराध है जिसका संबंध पुरुष की शारीरिक इच्छा और विकृत मानसिकता से है। महिलाएं इसका शिकार बनती हैं। परंतु हमारे समाजों में होने वाले बलात्कारों को देखने से यह पता चलता है कि केवल शारीरिक इच्छा की पूर्ति के लिए ही बलात्कार नहीं किए जाते बल्कि महिलाओं पर अत्याचार करने और उन्हें डराने, धमकाने तथा उनको अपने नियंत्रण में रखने के लिए भी यह जघन्य अपराध किया जाता है। यह अपराध खासतौर पर मजदूर वर्ग की और दलित महिलाओं के साथ किया जाता है। किसी महिला विशेष या समुदाय विशेष को 'ठीक करने के लिए भी' यह तरीका अपनाया जाता है। जन संचार के साधनों के तीव्र प्रसार, शहरीकरण, औद्योगीकरण, देशांतरण आदि के कारण समाज में आए व्यापक बदलाव के संदर्भ में बलात्कार की घटनाओं में तेजी से वृद्धि हुई है। इस प्रकार के अपराध को रोकने और बलात्कारियों को समुचित दंड देने के लिए राज्य ने कई प्रकार के कानून बनाए हैं। इस इकाई में बलात्कारियों से संबंधित विभिन्न कानूनों और न्यायालय के फैसलों पर विचार करेंगे। इस इकाई की शुरुआत के आरंभ में हम बलात्कार की कानूनी परिभाषा और इसके विभिन्न प्रकारों को जानेंगे। बलात्कार के मामलों में प्रमाण की निर्णायक भूमिका होती है। हमने इस मुद्दे पर विस्तार से विचार किया है। इस इकाई में बलात्कारी को दिए जाने वाले दंड और बलात्कार से जूझती महिला को संरक्षण और मुआवजा देने के विभिन्न पक्षों का विश्लेषण किया गया है। इस इकाई के अन्तिम दो भागों में हमने बलात्कार से संबंधित कुछ महत्वपूर्ण आंकड़ों और बलात्कार को रोकने के कुछ महत्वपूर्ण उपायों पर विचार किया है।

11.2 महिलाओं के खिलाफ अपराध : अवधारणा और प्रकार

संविधान द्वारा समानता प्रदान करने के बावजूद महिलाओं का जीवन खतरे से खाली नहीं है। जन्म से ही महिलाओं के जीवन में खतरे की शुरुआत हो जाती है और विवाह होने पर भी उन्हें घरेलू हिंसा से जूझना पड़ता है। महिलाओं के साथ बलात्कार किया जाता है, उनकी हत्या की जाती है और कुछ मामलों में उन्हें आत्महत्या करने पर मजबूर किया जाता है। हालांकि महिलाओं को संविधान में और कई कानून बनाकर समानता, स्वतंत्रता, अवसर की समानता और संरक्षण प्रदान किया गया है। इसके बावजूद उन्हें घरेलू हिंसा, पारिवारिक हिंसा, सामुदायिक हिंसा और कार्य स्थल पर होनेवाली हिंसा का सामना करना पड़ता है।

बलात्कार महिलाओं के खिलाफ किया जाने वाला एक शारीरिक जघन्य और क्रूर अपराध है। कई देशों में इस अपराध को जघन्य अपराध की श्रेणी में रखा गया है। वरिष्ठ पदाधिकारी इस पर लगातार नजर रखे रहते हैं। बड़े दुख की बात है कि एक ओर संसद में महिलाओं के लिए एक तिहाई आरक्षण पर राष्ट्रीय बहस चल रही है और सामाजिक, आर्थिक तथा राज्य क्षेत्रों में महिलाओं की शक्ति सम्पन्नता के लिए कानून बनाए जाने के प्रयत्न जारी हैं तो दूसरी तरफ पिछले कुछ वर्षों में महिलाओं के खिलाफ होने वाले अपराधों में तेजी से वृद्धि हुई है। वस्तुतः महिलाओं की प्रगति, विकास और शक्ति सम्पन्नता में ये अपराध और हिंसा सबसे बड़े बाधक हैं। भारत में महिलाओं के खिलाफ होनेवाला यह अपराध चिन्ता का विषय बना हुआ है।

हालांकि महिलाओं पर किसी प्रकार भी का आक्रमण किया जा सकता है परंतु कुछ अपराध ऐसे हैं जिनका शिकार केवल महिलाएं ही होती हैं और ये अपराध महिलाओं के खिलाफ ही किए जाते हैं। इस प्रकार के अपराधों को 'महिलाओं के खिलाफ अपराध' की संज्ञा दी जाती है।

सैद्धांतिक तौर पर महिलाओं के खिलाफ किए जाने वाले अपराधों को दो वर्गों में वर्गीकृत किया जा सकता है

क) भारतीय दंड संहिता के तहत परिभाषित अपराध

i) छेड़छाड़
ii) यौन उत्पीड़न
iii) बलात्कार
iv) विभिन्न उद्देश्यों से किया जाने वाला अपहरण
v) दहेज के लिए की जानेवाली हत्याएं
vi) अत्याचार (मानसिक और शारीरिक)
vii) 31 वर्ष की उम्र की लड़कियों को शारीरिक धंधे में लगाना

ख) विशेष कानूनों के तहत परिभाषित अपराध

i) सती निशेध आयोग अधिनियम, 1987
ii) दहेज निषेध अधिनियम, 1961
iii) अवैध व्यापार निषेध अधिनियम, 1936
iv) महिलाओं का अभद्र प्रदर्शन (निषेध अधिनियम 1986)

इस इकाई का उद्देश्य बलात्कार की समस्या को विस्तार से समझना है। बलात्कार के कानूनी पक्ष को समझने से पहले छेड़छाड़ और यौन उत्पीड़न की अवधारणा को संक्षेप में समझ लेना जरूरी है। इन दो अवधारणाओं को समझ कर ही हम बलात्कार की अवधारणा को सही ढंग से समझ सकेंगे।

शारीरिक छेड़छाड़

भारतीय दंड संहिता की धारा 354 के तहत महिलाओं की इज्जत पर हमला करने को फौजदारी अपराध माना जाता है। इसकी कानूनी परिभाषा इस प्रकार है:

यदि कोई व्यक्ति जानबूझकर महिलाओं के सम्मान पर आघात करने का प्रयास करता है और इसके लिए आपराधिक तरीके का प्रयोग करता है तो यह माना जाएगा कि वह व्यक्ति जानबूझकर यह कार्य कर रहा है और उसके इस कार्य को दंडनीय अपराध माना जाएगा।

भारतीय दंड संहिता की धारा 354 के तहत इस अपराध के प्रमुख तत्व इस प्रकार हैं :

क) यह महिलाओं के खिलाफ किए गए अपराध पर ही लागू होता है,

ख) आरोपी ने महिला से जबरदस्ती और गुंडागर्दी करने की कोशिश की हो,

ग) यह गुंडागर्दी उस महिला की इज्जत से खिलवाड़ करने के लिए की गई हो।

कानूनी शब्दावली में इस धारणा में 'महिला' का अर्थ किसी भी उम्र की स्त्री से है। यह गौर तलब है कि महिला के सम्मान को ठेस पहुंचाने में क्या-क्या शामिल हो सकता है इसे परिभाषित नहीं किया गया है।

भारतीय दंड संहिता की धारा 354 के तहत इस अपराध के लिए कम से कम 1 वर्ष, अधिक से अधिक 3 वर्ष या जुर्माना या दोनों की सजा सुनाई जा सकती है।

यौन उत्पीड़न

पहले इस धारा के तहत दूर से की गई छेड़छाड़ को शामिल किया जाता था और इसके इसी नाम से जाना भी जाता था। भारतीय दंड संहिता की धारा ५०९ में यौन उत्पीड़न के प्रमुख तत्वों से निपटने का प्रावधान है। धारा ५०९ के अनुसार यदि कोई व्यक्ति किसी महिला का शब्दों, ध्वनियों, अंग प्रदर्शन या भाव भंगिमा से अपमान करता है तो उसे दंडित किया जा सकता है। इसी प्रकार यदि कोई व्यक्ति किसी महिला के निजी जीवन में हस्तक्षेप करने का प्रयास करता है तो उसे १ वर्ष की सजा दी जा सकती है या जुर्माना लगाया जा सकता है या दोनों की सजा दी जा सकती है। धारा ५०९ के तहत मुकदमा दायर करने या कोई कार्यवाई करने के लिए यह जरूरी है कि महिला के सम्मान को ठेस पहुंचाने का कोई प्रमाण होना चाहिए। उदाहरणार्थ कोई अश्लीलता से भरा पत्र जिसे महिला के सम्मान को ठेस पहुंचती हो।

जरा सोचिए।

महिलाओं के खिलाफ होने वाले अपराध से आप क्या समझते हैं? क्या आप इसे वर्गीकृत कर सकते हैं?

11.3 बलात्कार : महिलाओं के खिलाफ एक जघन्य अपराध

1989 में मथुरा हिरासत बलात्कार मुकदमे के फैसले के बाद बलात्कार के कानून प्रावधानों में आमूल परिवर्तन किए गए। इसमें उच्च न्यायालय के फैसले (तुकाराम बनाम राज्य) को भारत के सर्वोच्च न्यायालय के फैसले द्वारा उलट दिया गया और एक युवा जनजातीय लड़की को हिरासत में दो पुलिसकर्मियों द्वारा बलात्कार के मामले को खारिज कर दिया और उन पुलिसकर्मियों को रिहा कर दिया गया। सर्वोच्च न्यायालय ने इस आधार पर उन दो पुलिसकर्मियों को छोड़ दिया कि फैसले में कहीं भी इस बात का जिक्र नहीं किया गया है कि इस यौन संभोग में उस महिला की सम्मति नहीं थी। बलात्कार ही एक ऐसा अपराध है जिसमें अपराध के शिकार व्यक्ति को ही साबित करना पड़ता है कि बलात्कार उसकी सम्मति से नहीं हुआ है। चार कानून शिक्षकों ने इस फैसले के खिलाफ मुख्य न्यायाधीश को एक सार्वजनिक पत्र लिखा। पूरे देश में इस फैसले के खिलाफ व्यापक विरोध हुआ। बलात्कार संबंधी कानूनों को बदलने के लिए महिला संगठनों ने व्यवस्थित रूप से आंदोलन छेड़ दिया। बलात्कार और इससे जुड़े अपराधों पर कानून आयोग ने अपने 84वें रिपोर्ट में भारतीय दंड संहिता, फौजदारी कानून और भारतीय प्रमाण अधिनियम में परिवर्तन प्रस्तावित किया। इन सुझावों के आधार पर सरकार ने बलात्कार के कानून को संशोधित किया और 1980 में फौजदारी कानून संशोधन विधेयक पारित किया जो अन्ततः 1983 में अधिनियम के रूप में पारित हुआ। अब हम बलात्कार से संबंधित कानूनी प्रावधानों, इसके संशोधन और आज की स्थिति पर विचार करेंगे।

11.3.1 कानूनी परिभाषा

बलात्कार की कानूनी परिभाषा आई पी सी की धारा 375 में दी गई है । धारा 375 के अनुसार यदि कोई व्यक्ति निम्नलिखित 6 परिस्थितियों में किसी महिला के साथ संभोग करता है तो इसे बलात्कार माना जाएगा।

1) उसकी इच्छा के खिलाफ
3) उसकी सहमति लिए बिना

) उसके किसी प्रिय व्यक्ति को बंधक बनाकर या उसे जान से मारने की धमकी देकर प्राप्त सहमति

) उसकी सहमति हो परंतु वह नहीं जानती हो कि वह उसका पति नहीं है और उसने सहमति इसलिए दी हो क्योंकि उसके विचार से शारीरिक सम्पर्क स्थापित करने वाला व्यक्ति कानूनी दृष्टि से उसका पति हो।

) नशे की हालत में यदि कोई व्यक्ति किसी महिला के साथ संभोग करता है तो इसे महिला की सहमति नहीं मानी जाएगी क्योंकि उस समय वह होश में नहीं होगी और उसकी सहमति का कोई अर्थ नहीं होगा।

) 16 वर्ष की उम्र की लड़की के साथ उसकी मर्जी या बिना मर्जी के साथ संभोग बलात्कार है।

पनी पत्नी के साथ संभोग करना और यदि उसकी पत्नी 15 वर्ष से ज्यादा की न हो तो इसे लात्कार नहीं माना जाएगा। बलात्कार को एक जघन्य अपराध माना जाता है क्योंकि इससे महिला के जीवन पर आजीवन एक धब्बा लग जाता है और उसे हमेशा एक मानसिक यातना से गुजरना ड़ता है।

हां पुरुष शब्द का अर्थ किसी भी उम्र का पुरुष है और महिला का अर्थ किसी भी उम्र की स्त्री है।

11.3.2 सामूहिक बलात्कार

सामूहिक बलात्कार के मामले में यह प्रमाणित करना आवश्यक नहीं है कि प्रत्येक आरोपी ने महिला के साथ बलात्कार किया है। इसमें जरूरी नहीं है कि पूरा का पूरा समूह शामिल हो। यदि दो व्यक्ति भी बलात्कार करते हैं तो उसे सामूहिक बलात्कार माना जाएगा।

11.3.3 बलात्कार करने का प्रयास

किसी महिला पर किए गए अभद्र आक्रमण को तबतक बलात्कार का प्रयत्न नहीं माना जाएगा जब तक यह साबित न हो जाए कि वह पुरुष महिला के विरोध के बावजूद उससे यौन संबंध स्थापित करना चाहता था। प्रत्येक बलात्कार के मामले में महिलाओं पर आक्रमण किया जाता है और उसके साथ अभद्र व्यवहार भी होता है। बलात्कार के लिए किए गए प्रयत्न में शारीरिक प्रयत्न शामिल होना चाहिए। यदि कोई व्यक्ति किसी महिला पर आक्रमण करता है लेकिन वह कोई ऐसा शारीरिक प्रयत्न करता हो जिससे यह जाहिर हो कि वह बलात्कार करना चाहता था तो उस पर आई पी सी धारा 376/511 लागू नहीं हो सकती।

11.3.4 हिरासत में बलात्कार

हाल के वर्षों में हिरासत में हुए बलात्कार की घटनाएं बढ़ी है। धारा 376 (3), बी, सी, और डी, (भारतीय दंड संहिता) में इसे इस प्रकार परिभाषित किया गया है।

क) यदि कोई पुलिस अधिकारी

i) उस पुलिस थाने के भीतर जहां वह नियुक्त हो बलात्कार करता हो।

ii) किसी भी पुलिस थाने के अन्तर्गत जहां वह नियुक्त हो या न हो बलात्कार करता हो।

iii) अपने हिरासत में या मातहत अधिकारी के हिरासत में रखी गई महिला के साथ बलात्कार करता हो।

ख) यदि कोई नागरिक अधिकारी अपने पद का दुरूपयोग करते हुए किसी अन्य नागरिक कर्मचारी के साथ हिरासत में रखे गए किसी मातहत कर्मचारी के साथ बलात्कार करता है, या

ग) किसी जेल का अधिकारी यदि अधीनस्थ कैदियों के साथ बलात्कार करता है,या

घ) यदि अस्पताल का कर्मचारी किसी महिला के साथ बलात्कार करता है, या

ड़) यदि यह जानते हुए किसी महिला के साथ बलात्कार करता है या 13 वर्ष की लड़की के साथ बलात्कार करता है, या

च) सामूहिक बलात्कार करता है।

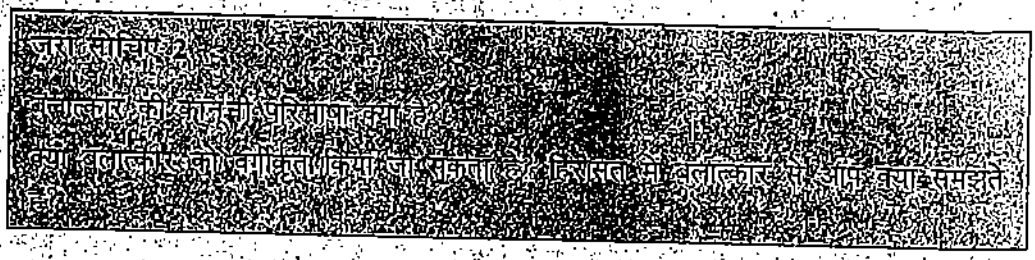

11.4 प्रमाण और दंड

बलात्कार के क़ानूनी प्रावधानों पर विचार करते समय प्रमाण के निम्नलिखित मुद्दों पर विचार करना जरूरी है क्योंकि किसी भी आरोपी को उसी आधार पर दंडित किया जाता है।

11.4.1 प्रमाण के कुछ महत्वपूर्ण पक्ष

क) चिकित्सक के समक्ष चिकित्सा परीक्षा के दौरान अपराधी का नाम बताने का कोई अर्थ नहीं होता।

ख) बलात्कार की शिकार हुई महिलाओं के वक्तव्य को आमतौर पर स्वीकार कर लिया जाता है क्योंकि कोई भी महिला अपनी इज्जत को दांव पर लगा कर झूठ नहीं बोल सकती। बलात्कार की शिकार महिला द्वारा दिया गया वक्तव्य घायल गवाह द्वारा दिए गए प्रमाण द्वारा होता है। इसलिए इसमें उनके द्वारा दिए गए वक्तव्य की पुष्टि की जरूरत नहीं होती।

ग) जहां बलात्कार की शिकार हुई महिला द्वारा दिया गया प्रमाण सही दिया जाता है। वहां इस बात का कोई मतलब नहीं होता कि उस जुर्म का कोई आंखों देखा गवाह नहीं है।

घ) यदि 10 वर्ष की कम उम्र की लड़की के साथ बलात्कार हुआ है तो उससे सही-सही विवरण की अपेक्षा नहीं की जा सकती। अदालत पूरी परिस्थिति पर विचार कर फैसला सुनाती है।

ड़) यदि प्रमाण विश्वसनीय हों और बलात्कार की शिकार बनी महिला देर से इसकी सूचना दे तो भी उसके वक्तव्य को स्वीकार किया जाएगा।

च) छोटी-मोटी असंगतियों पर ध्यान नहीं दिया जाएगा यदि वे मूल मुकदमे पर आघात न करते हों। खोजबीन में रह गई कमी के आधार पर आरोपी को बरी किया जाना न्यायसंगत नहीं है।

छ) बलात्कार की शिकार हुई महिला के चारित्रिक इतिहास का कोई मतलब नहीं है और आरोपी का अपराध साबित हो जाने पर उसे आइ पी सी धारा 376 के अन्तर्गत दंडित किया जा सकता है। इस प्रकार के कारकों के आधार पर आरोपी को दंड से नहीं बचाया जा सकता है और न ही उसकी सजा कम करवाई जा सकती है।

ज) जहां तक आरोपी पर चलने वाले मुकदमे का सवाल है चिकित्सा रिपोर्ट न होने से भी कोई फ़र्क नहीं पड़ता। उदाहरण के लिए यदि बलात्कार की शिकार महिला और उसके पति किसी दूर दराज क्षेत्र में पिछड़े समुदाय के सदस्य हैं और वे नहीं जानते कि इस दुर्घटना के बाद चिकित्सक के पास जाकर उन्हें जांच करवा लेनी चाहिए। अत: इसलिए अन्य बातें विश्वास योग्य हों तो चिकित्सा रिपोर्ट न होने से भी कोई फ़र्क नहीं पड़ता है।

झ) यह तर्क नहीं माना जा सकता है कि चिकित्सा परीक्षा के दौरान पुरुष के लिंग पर कोई घाव नहीं पाया गया और इससे यह साबित नहीं किया जा सकता कि उसने जबरदस्ती संभोग नहीं किया था। केवल घाव न रहने से आरोपी निर्दोष साबित नहीं हो सकता।

11.4.2 प्रमाण के संबंध में सर्वोच्च न्यायालय का फैसला

बलात्कार की शिकार हुई महिला द्वारा घटना के वक्तव्य को लेकर कानूनी प्रक्रिया में हमेशा बाल की खाल निकाली जाती है। कई बार आरोपी को इसीलिए मुक्त कर दिया जाता है कि बलात्कार की शिकार महिला के वक्तव्य की पुष्टि नहीं हो पाती। हालांकि सर्वोच्च न्यायालय के निम्नलिखित फैसलों से यह स्पष्ट कर दिया गया कि यदि बलात्कार की शिकार महिला द्वारा दिए गए वक्तव्य की पुष्टि नहीं हो पाती तो केवल इसी आधार पर मुकदमे को खारिज नहीं किया जा सकता।

क) रामेश्वर कल्याण सिंह बनाम राजस्थान राज्य : इस प्रसिद्ध मुकदमे में सर्वोच्च न्यायालय ने यह फैसला दिया कि किसी मुकदमे का फैसला सुनाते समय पुष्टिकरण आवश्यक नहीं है। कानून का केवल एक नियम यही है कि न्यायाधीश को समझदारी से काम लेना चाहिए और उन्हें फैसला सम्पूर्णता में लेना चाहिए। इस परिप्रेक्ष्य में हमेशा फैसले की राह में पुष्टि को बाधा नहीं बनाया जाना चाहिए।

ख) शेख जाकिर बनाम बिहार राज्य : सर्वोच्च न्यायालय ने इस मुकदमे में यह फैसला दिया कि बलात्कार की शिकार महिला द्वारा किए गए प्रमाण की पुष्टि नहीं हो पाती तो भी इस आधार पर मुकदमे को अवैध नहीं ठहराया जा सकता।

ग) भारगवडा मोहिन भाई हिरकी भाई बनाम गुजरात राज्य : इसमें सर्वोच्च न्यायालय ने यह फैसला दिया कि किसी भी बलात्कार के मुकदमे में फैसला सुनाने के लिए प्रमाण की पुष्टि ही केवल आधार नहीं बन सकता। भारतीय परिप्रेक्ष्य में किसी भी महिला के लिए बलात्कार की दास्तान सुनाना और उसका प्रमाण पेश करना उसके लिए जले पर नमक छिड़कने के बराबर है। किसी लड़की या महिला द्वारा बलात्कार या शारीरिक छेड़छाड़ की शिकायत को संदेह और अविश्वास की निगाहों से देखने का क्या कारण हो सकता है और उनसे प्रमाण मांगने की क्या जरूरत है ? ऐसा करके पुरुष सत्तात्मक समाज में पुरुष आधिपत्य को सही ठहराने की कोशिश की जाती है।

अत: सर्वोच्च न्यायालय के उपयुक्त फैसले से यह स्पष्ट है कि जहां तक आरोपी को सजा देने का सवाल है वक्तव्य की पुष्टि को महत्वपूर्ण नहीं माना जाता। भारतीय सामाजिक सांस्कृतिक परिवेश में सर्वोच्च न्यायालय की विवेक और बुद्धि पर ही सब निर्भर करता है। भारत जैसे परम्परागत समाज में कोई लड़की या महिला मुश्किल से यह स्वीकार करेगी कि उसके साथ ऐसी कोई दुर्घटना हुई है क्योंकि ऐसा करने से वह पूरे समाज की नजर से नीचे गिर जाएगी। उसे हर समय यह खतरा लगा रहता है। उसे समाज और अपने परिवार के सदस्यों, पड़ोसियों द्वारा बहिष्कृत कर दिया जाएगा।

11.4.3 बलात्कार के लिए दंड

भारतीय दंड संहिता की धारा 376 के अन्तर्गत बलात्कार के अपराधी को आजीवन कारावास या अधिक से अधिक 10 वर्षों की सजा दी जा सकती है। अदालत के सामने दो विकल्प मौजूद हैं। आजीवन कारावास की सजा सुनाना (और यदि अदालत यह महसूस करती है कि आजीवन कारावास का दंड देना जरूरत से ज्यादा होगा तो वह कुछ वर्षों की सजा सुना सकती है जिसकी अवधि अधिक से अधिक 10 वर्षों की होगी।

जब कोई अधेड़ व्यक्ति 10 वर्ष से कम उम्र की बच्ची के साथ बलात्कार करता है तो उसे सख्त से सख्त सजा देनी चाहिए।

क्या आप जानते हैं? 1

महाराष्ट्र बनाम चंद्रप्रकाश केवल चंद जैन (1990) के प्रसिद्ध फैसले में यह कहा गया कि यदि कोई पुलिस कर्मचारी कोई बलात्कार करता है तो उसे सख्त से सख्त सजा देनी चाहिए। परंतु ठीक इससे 1 साल पहले 1989 में सुमन रानी मुकदमे में सर्वोच्च न्यायालय ने दो अपराधी पुलिस सिपाहियों को केवल 5 वर्षों की सजा सुनाई थी जबकि निचली अदालत और उच्च न्यायालय ने उन्हें 10 वर्षों की सजा सुनाई थी। उनकी सजा इसी आधार पर कम की गई थी कि युवा लड़की अपने प्रेमी के साथ भाग गई थी और वह 'व्यभिचारी' तथा 'कामुक' चरित्र की लड़की थी और उसके प्राथमिक रिपोर्ट दर्ज करने में एक सप्ताह का बिलम्ब हुआ था (प्रेमचंद और अन्य बनाम हरियाणा राज्य)।

इसमें कुल मिलाकर यह तर्क दिया गया कि अपराध और अपराधी की प्रकृति को ध्यान में रखते हुए अदालत को सजा कम करने या बढाने का अधिकार है।

जरा सोचिए 3

क्या प्रमाण संबंधी कानूनी प्रावधान बलात्कार के अपराध को साबित करने के लिए पर्याप्त है।

क्या आप जानते हैं? 2

कई मुकदमों में अदालत ने अच्छे व्यवहार के लिए कई आरोपी व्यक्तियों को मुक्त कर दिया है।

उदाहरण

क) राधा रमण शंकर बनाम पश्चिम बंगाल – 30 वर्ष के युवक को धारा 376 के अन्तर्गत अपराधी पाया गया लेकिन इसके पहले उसने कभी अपराध नहीं किया था। इस परिस्थिति को देखते हुए और उसके अच्छे चरित्र को मद्दे नजर रखते हुए उसे मुक्त कर दिया गया।

ख) प्रेमचंद बनाम उत्तर प्रदेश राज्य – एक 13 वर्ष का बच्चा धारा 376 के अन्तर्गत बलात्कार के जुर्म में दोषी पाया गया। परंतु उसके अच्छे व्यवहार के कारण उसे मुक्त कर दिया गया।

ग) भाद्रेश्वर लोविंग बनाम असम राज्य – एक 13 वर्ष के बच्चे ने 7 वर्ष की लड़की के साथ बलात्कार किया और उसे धारा 376/511 के तहत अपराधी पाया गया। उसकी उम्र, चरित्र और इतिहास को देखते हुए उसे अपराधी अधिनियम 1958 की धारा के तहत मुक्त कर दिया गया।

11.5 बलात्कार पीड़ितों को मुआवजा और संरक्षण

दिल्ली घरेलू काम काज महिला मंच बनाम केंद्र सरकार (1995) के अपने प्रसिद्ध फैसले में अदालत ने यह कहा था कि न्यायालय के आदेश से बलात्कार की शिकार महिलाओं को मुआवजा भी दिया जा सकता है। बोधिसत्व गौतम बनाम सुभ्रा चक्रवर्ती के प्रसिद्ध फैसले में अदालत ने यह निर्णय दिया था कि अन्तरिम जमानत ही दी जा सकती है।

भारतीय दंड संहिता की धारा 338 ए में बलात्कार की शिकार महिलाओं के नाम और अन्य विवरण देने पर प्रतिबंध लगाया गया।

आइ पी सी धारा 338 (1) के अनुसार यदि कोई 376 ए, 376 बी, 376 सी और 376 डी, के अन्तर्गत किसी के खिलाफ़ मुकदमा चल रहा हो और उसका विवरण प्रकाशित किया जा रहा हो तो विवरण प्रकाशित करने वाले को 3 साल की सजा सुनाई जा सकती है और जुर्माना लगाया जा सकता है।

11.6 बलात्कार रोकने के उपाय

महिलाओं के खिलाफ अपराध की घटनाओं को नियंत्रित करने और उन पर निगरानी रखने के लिए भारत सरकार ने कई कदम उठाए हैं।

11.6.1 महिला अधिकार आयोग

महिला और बाल विकास विभाग ने राष्ट्रीय महिला अधिकार आयुक्त का पद निर्मित करने का प्रयास किया है। इसकी स्थापना निम्नलिखित उद्देश्यों से की जाएगी।

i) महिलाओं के खिलाफ होने वाले अपराधों की घटनाओं पर निगरानी रखने,

ii) पंजीकरण से संबंधित आपराधिक आंकड़ों की समीक्षा, राष्ट्रीय और राज्य स्तरों पर होने वाली महिला के हिंसा की जांच पड़ताल,

iii) इन मामलों में जल्द से जल्द कड़े दंड दिलवाने का प्रयास।

विभाग ने महिलाओं के खिलाफ होने वाले अत्याचारों के मामले की निगरानी करने और तेजी से इन्हें निपटाने के लिए राज्य सरकार से महिलाओं के अधिकारों की सुरक्षा के लिए जिला समितियों के निर्माण का अनुरोध किया है। प्रस्ताव में यह कहा गया है कि इन समितियों में जिला और नीचली अदालत के न्यायाधीश, जिलाधिकारी, पुलिस अधीक्षक, उपनिदेशक, आयोग और अन्य अधिकारी शामिल होंगे।

11.6.2 महिलाओं को प्रभावित करने वाले कानूनों की समीक्षा

महिला और बाल विकास विभाग को सरकार की विशेष कार्य योजना 1996 के तहत महिलाओं से भेदभाव रखने वाले प्रावधानों को हटाने और सभी कानूनों की समीक्षा करने की केंद्रीय भूमिका प्रदान की गई है। राष्ट्रीय महिला आयोग को महिलाओं से संबंधित कानूनों की समीक्षा करने का अधिकार है। इसलिए उनसे अनुरोध किया गया कि वे महिलाओं से संबंधित कानूनों की समीक्षा करें। इस आयोग ने 10 कानूनों की समीक्षा कर ली है और इन कानूनों में अपेक्षित संशोधन करने के लिए सम्बद्ध मंत्रालयों/विभागों के पास भेज दिया है। निम्नलिखित कानूनों की समीक्षा की जा रही है।

i) दहेज निषेध अधिनियम

ii) महिलाओं का अभद्र प्रदर्शन (निषेध) अधिनियम, 1986

iii) सती (निषेध) आयोग अधिनियम, 1987

iv) अवैध व्यापार (निषेध) अधिनियम

11.6.3 सर्वोच्च न्यायालय के निर्देश

माननीय सर्वोच्च न्यायालय ने 13.8.97 के आदेश में नियोक्ताओं को कार्य स्थल और अन्य स्थानों पर महिलाओं के यौन पीड़न की समस्याओं से निपटने के लिए दिशा निर्देश जारी किया था। सर्वोच्च न्यायालय ने अपने आदेश में शिकायत सुनवाई मंच की स्थापना और कर्मचारियों के लिए अनुशासनात्मक कार्यवाई संबंधी निर्देश जारी किए थे। सर्वोच्च न्यायालय ने भारत सरकार के सभी मंत्रालयों और विभागों, राज्य सरकारों, महिला विकास निगमों और राष्ट्रीय महिला आयोग के पास अनुपालन के लिए परिपत्र भेजा था।

> क्या आप जानते हैं? 3
>
> कार्य स्थल पर महिलाओं के खिलाफ होनेवाले यौन अत्याचार से संबंधित सर्वोच्च न्यायालय का दिशा निर्देश।

11.6.4 राष्ट्रीय महिला आयोग द्वारा जन जागरूकता कार्यक्रम

राष्ट्रीय महिला आयोग ने पीड़ित महिलाओं की मदद करने और सभी प्रकार की हिंसा और अत्याचार से लड़ने के लिए हर प्रकार से मदद करने का बीड़ा उठाया है। राष्ट्रीय महिला आयोग ने एक बहुआयामीय दृष्टिकोण अपनाया है जो इस प्रकार है:

i) महिलाओं (पूरी जनता के बीच) कानूनी चेतना जागृत करना ताकि उन्हें उनके कानूनी अधिकारों का ज्ञान हो जाए,

ii) महिलाओं की शिकायतों को दर्ज करवाने में मदद करना, उनके मुकदमे में सहायता करना और आयोग द्वारा स्थापित प्रकोष्ठ से परामर्श दिलवाना,

iii) देश के विभिन्न हिस्सों में पारिवारिक महिला लोक अदालतों का आयोजन कर महिलाओं को तेजी से न्याय दिलवाना,

iv) महिलाओं से संबंधित संविधान के मौजूदा प्रावधानों और अन्य कानूनों की समीक्षा और तदनुसार संशोधन का सुझाव। इस प्रकार के कानूनों की अपर्याप्तता और कमियों को दूर करने का सुझाव देना।

> ज़रा सोचिए 4
>
> बलात्कार के मामले से निपटने के लिए राष्ट्रीय महिला आयोग और भारत सरकार ने क्या कदम उठाए हैं? अपने पर्यवेक्षण के आधार पर क्या आप कुछ सुझाव देना चाहेंगे कि इस दिशा में क्या कदम उठाए जा सकते हैं ?

11.7 आंकड़े और कुछ उदाहरण

राष्ट्रीय अपराध रिकोर्ड ब्यूरो ने प्रतिवर्ष के हिसाब से बलात्कार के मामलों का व्यवस्थित और विस्तृत विश्लेषण किया है। इस समस्या की भयावहता को समझने के लिए कुछ ठोस तथ्यों पर विचार करना आवश्यक है। इस भाग को दो हिस्सों में विभाजित किया गया है। पहले हिस्से में बलात्कार के राष्ट्रीय आंकड़े और दूसरे हिस्से में दिल्ली में हुए बलात्कार का विवेचन किया गया है। इस भाग में हम आरोपियों को वर्गीकृत कर उनका विश्लेषण करेंगे और कुछ ठोस उदाहरण प्रस्तुत किए जाएँगे।

11.7.1 राष्ट्रीय आंकड़े

बलात्कार के संबंध में 1995 तक के राष्ट्रीय आंकड़े उपलब्ध हैं। 1985-95 के दशक में बलात्कार की घटनाओं में दोगुनी वृद्धि हुई (1985 में 7,389 घटनाएं हुई थीं जो 1995 में बढ़कर 13,754 हो गई) तात्पर्य यह है कि 1985 के बाद 88.7% की वृद्धि हुई।

1991-95 में महिलाओं के खिलाफ हुई अपराध की घटनाओं को तालिका 'क' में देखा जा सकता है।

1995 में महिलाओं के खिलाफ अपराध (जहां केवल महिलाएं ही अपराध का शिकार हुई थीं) के तहत अखिल भारतीय स्तर पर 1,06,471 मामले दर्ज किए गए जबकि 1994 में 98,948 और 1993 में 83,954 मामले दर्ज किए गए थे। इसका मतलब यह हुआ कि 1994 तक इस प्रकार की घटनाओं में 7.6% की वृद्धि हुई।

तालिका 'क' को देखने से यह साफ पता चलता है कि 1991 तक की घटनाओं में लगातार वृद्धि हुई है।

तालिका 'ख' में राज्य, संघ प्रशासित क्षेत्र और शहरों में होने वाले बलात्कार के मामलों का वर्षवार ब्योरा प्रस्तुत किया गया है और दिखाया गया है कि इन मामलों में बलात्कार की शिकार महिला की उम्र क्या है ? इस तालिका से यह स्पष्ट चलता है कि 1995 में कुल 13,754 घटनाएं दर्ज कराई गई थीं जबकि 1994 में 13,308 घटनाएं सामने आई थीं। मध्य प्रदेश में सबसे ज्यादा 3,119 घटनाएं हुई थीं जो कुल घटनाओं का 33.7% था। इसके बाद उत्तर प्रदेश में 1,808 घटनाएं हुई थीं जो 13.1% था। महाराष्ट्र में 1,363 घटनाएं घटीं जो अखिल भारतीय स्तर पर 9.4: और बिहार में 1,313 घटनाएं घटी जो 9.5% था। संघ शासित क्षेत्रों में सबसे ज्यादा 373 घटनाएं घटी जो 9.5: था और अखिल भारतीय स्तर पर 3.7 घटनाएं घटीं।

बलात्कार की शिकार महिलाएं—बलात्कार की शिकार महिलाओं की उम्र राष्ट्रीय स्तर पर उम्र तालिका 'ग' में देखा जा सकता है।

यह स्पष्ट है कि राष्ट्रीय स्तर 16-3.0 वर्ष की उम्र की 7753 महिला थीं जो कुल बलात्कार पीड़ित महिलाओं (13,774) का 56.3% था और यह प्रवृत्ति जारी है।

बच्चों का बलात्कार

सारे देश में प्रतिदिन 3 बच्चों पर बलात्कार होता है। 1994 में ऐसी 734 घटनाएं हुई जो 1995 में बढ़कर 747 हो गई अर्थात 1.3% की वृद्धि हुई।

1993-95 का विवरण इस प्रकार है:

1993	4.5
1993	5.3
1994	5.6
1995	5.4

लगभग 71% मामले केवल 5 राज्यों और संघशासित राज्यों में दर्ज किए गए।

मध्य प्रदेश	107
महाराष्ट्र	130
पश्चिम बंगाल	78
आंध्र प्रदेश	77

उत्तर प्रदेश	76
दिल्ली	71

11.7.2 दिल्ली में बलात्कार के मामले

तालिका 'घ' में 1993 से [illegible] के बीच पिछले 5 वर्षों में दिल्ली में महिलाओं के खिलाफ अपराधों का तुलनात्मक विश्लेषण किया गया है।

इस तालिका को देखने से यह पता चलता है कि 1993 से 1997 तक महिलाओं के खिलाफ होने वाले अपराधों में लगातार वृद्धि हुई है। हालांकि 1998 में इसमें कुछ कमी दिखाई देती है। परंतु 1993 से 1998 तक लेकर बलात्कार के मामलों में लगातार वृद्धि देखी गई है।

तालिका 'ड.' में 1997 और 1998 में बलात्कारी और बलात्कार पीड़ित महिला का संबंध दर्शाया गया है। बलात्कारी के संबंध को निम्नलिखित वर्गों में वर्गीकृत किया गया है।

1) संबंधी
   - क) पिता
   - ख) सौतेला पिता
   - ग) पूर्व पति
   - घ) चाचा
   - ड.) चचेरा, ममेरा, फूफेरा, मौसेरा भाई
   - च) फूफा, बहनोई, देवर, जेठ

3) अन्य जान पहचान के व्यक्ति
   - क) पड़ोसी
   - ख) दोस्त
   - ग) नौकर
   - घ) मकान मालिक
   - ड.) किरायदार
   - च) नियोक्ता
   - छ) चौकीदार
   - ज) शिक्षक
   - झ) नाई
   - ज) चिकित्सक
   - झ) पुलिसकर्मी
   - ट) पुजारी/तांत्रिक/ओझा

3) अनजाने व्यक्ति

1977 में हुए अधिकांश मामलों में यह देखने को मिलता है कि यह कुकृत्य पड़ोसियों द्वारा किया गय (388 मामले)। एक महत्वपूर्ण बात यह सामने आई कि 54 में से 36 व्यक्ति किरायदार थे। उसके अलावा 59 व्यक्ति ऐसे थे जिनका पीड़ित महिला से कोई संबंध नहीं था। दिल्ली की बढ़ती जनसंख्य और शहरों की भीड़भाड़ इसका सबसे बड़ा कारण था।

क्या आप जानते हैं ?

दिल्ली में बलात्कार के मामले

वर्ष	संख्या
1995	377
1996	491
1997	544
1998	894

दिल्ली में छेड़छाड़ की घटनाएं 17.7% की दर से बढ़ी है।

स्रोत: हिन्दू, 3.8.99

पिता द्वारा अपनी पुत्री का बलात्कार किया जाना सबसे दुखद और भयावह दुर्घटना है। 1997 में ऐसी 13 और 1998 में 15 घटनाएं घटी। किसी भी प्रकार का यौन उत्पीड़न और बलात्कार किसी महिला के लिए बड़ा ही भयानक और पीड़ादाई होता है और जब यह बलात्कार कोई रिश्तेदार करता है तो उसकी पीड़ा, मजबूरी और दुविधा को समझा जा सकता है और जब कोई और नहीं बल्कि उसका पिता ही बलात्कारी होता है तब तो वह कुछ भी कहने की स्थिति में नहीं होती। आइए, पिता द्वारा पुत्री का बलात्कार किए जाने की एक दुर्घटना पर गौर करें।

पूनम (नामक बदल दिया गया) एक 17 वर्षीय लड़की थी। उसकी दो बहन और एक भाई था। वह सबसे बड़ी थी। उसके पिता सेना में काम करते थे। पुनम मदर टेरेसा धर्मार्थ न्यास में प्रशिक्षण लिया करती थी। एक दिन न्यास की सिस्टर ने उस लड़की को दुखी पाया। काफी आग्रह करने पर उसमें आत्म विश्वास पैदा करने पर पूनम रो पड़ी और उसने पूरी कथा सुनाई और बताया कि कैसे उसके पिता ने डरा धमका कर उसके साथ बलात्कार किया। उसका पिता उसके साथ हमेशा यह व्यवहार करता था। इसलिए उसे घर छोड़कर भागना पड़ा और मिशनरी में शरण लेनी पड़ी। पूनम अपने पिता के विरूद्ध शिकायत दर्ज करने के खिलाफ थी। सिस्टर के बार-बार आग्रह करने पर न्यास ने महिलाओं की एक स्वयं सेवी संगठन को यह बात बताई जिसमें उसकी लड़की रक्षा करने और आरोपी के खिलाफ कार्यवाई करने के लिए पुलिस से सम्पर्क किया। पूनम द्वारा औपचारिक रूप से शिकायत दर्ज करने पर बलात्कार का मामला दर्ज किया गया। बाद में जांच पड़ताल के बाद जब सारी बात सामने आई तो लोगों का दिल दहल गया। पूनम की मानसिक पीड़ा सामने आई। पुनम की चिकित्सा जांच से पता चला कि वह तीन महीन के गर्भ से है। पूनम के पिता ने हमे बताया कि वह बिना बताए हीं घर से चली गई थी। उसका पिता इतना चालाक था कि पुनम के घर छोड़ने के बाद उसने पुलिस से शिकायत की कि उसकी बेटी को मुहल्ले के एक लड़के ने अगवा कर लिया है। जब पुनम के पिता को उसके गर्भवती होने का पता चला तो उस पर दबाव डाला गया कि वह एक पड़ोसी लड़के पर आरोप लगा दे जो अक्सर उसे छेड़ा करता था। अन्ततः पूनम का पिता गिरफ्तार किया गया और जेल भेज दिया गया। पूनम की पीड़ा और उसके दर्द का अंदाजा लगाया जा सकता है। अपने पिता के खिलाफ खड़े होकर उसने बहुत साहस का काम किया। हमें विश्वास है कि कई पूनमें होगीं जिनके साथ इस प्रकार की घटनाएं होती होंगी और वे बिना प्रतिरोध किए अपने नजदीकी रिश्तेदारों के बलात्कार का शिकार होती होंगी।

तालिका - 'क'

1995 में विभिन्न आयु समूहों की स्त्रियों पर हुआ बलात्कार
(राज्य, संघ-शासित क्षेत्र और शहर)

क्र.सं.	राज्य/ संघ-शासित	दर्ज किए गए मामलों की संख्या	पीड़ितों की संख्या			
			10 वर्ष से नीचे	10-16 वर्ष	16-30 वर्ष	30 वर्ष से ऊपर
(1)	(3)	(3)	(4)	(5)	(6)	(7)
राज्य:						
1	आंध्र प्रदेश	356	77	345	413	133
3	अरूणाचल प्रदेश	35	0	0	17	8
3	असम	588	17	140	358	73
4	बिहार	1313	39	330	739	334
5	गोवा	19	3	8	8	0
6	गुजरात	309	17	79	174	39
7	हरियाणा	311	37	85	167	33
8	हिमाचल प्रदेश	116	18	35	51	13
9	जम्मु और कश्मीर	109	1	11	93	5
10	कर्नाटक	363	33	57	153	31
11	केरल	360	13	89	144	30
13	मध्य प्रदेश	3119	107	838	1710	474
13	महाराष्ट्र	1303	130	386	703	15
14	मणिपुर	13	3	1	9	0
15	मेघालय	17	6	1	10	0
16	मिजोरम	41	3	4	37	7
17	नागालैंड	16	0	0	13	3
18	उड़ीसा	553	4	97	369	83
19	पंजाब	96	6	35	50	15
30	राजस्थान	1039	36	98	680	333
31	सिक्किम	3	0	3	0	0
33	तमिलनाडु	368	19	37	193	19
33	त्रिपुरा	75	3	16	37	30
34	उत्तर प्रदेश	1808	76	408	1037	387
35	पश्चिम बंगाल	787	78	383	374	69
	कुल	**13367**	**673**	**3355**	**7536**	**1939**

संघ-शासित क्षेत्र						
36	अंडमान और निकोबार द्वीप समूह	5	1	0	3	1
37	चंडीगढ़	5	3	0	3	1
38	दादर और नागर हवेली	1	0	0	0	1
39	दमन और दीव	3	0	1	1	0
30	दिल्ली	373	71	63	319	33
31	लक्षद्वीप	0	0	0	0	0
33	पांडिचेरी	3	0	1	1	0
	कुल (राज्य संघ-शसित क्षेत्र)	387	74	65	336	36
	कुल (पूरे भारत का)	13,754	747	3330	7753	1955
शहर						
33	अहमदाबाद	3	0	33	0	0
34	बंगलोर	43	8	13	18	3
35	भोपाल	63	3	36	34	10
36	बम्बई	310	30	86	83	11
37	कलकत्ता	54	10	14	35	5
38	कोयम्बटुर	1	0	0	1	0
39	दिल्ली	305	68	53	163	31
40	हैदराबाद	41	10	37	4	0
41	इन्दौर	35	3	5	14	4
43	जयपुर	33	5	9	6	3
43	कानपुर	44	8	10	34	3
44	कोचिन	7	0	1	5	1
45	लखनऊ	39	3	7	18	1
46	लुधियाना	11	3	4	3	1
47	मद्रास	11	3	3	6	0
48	मदुरई	7	0	1	6	0
49	नागपुर	56	11	16	36	3
50	पटना	36	0	0	31	5
51	पुणे	66	6	15	43	3
53	सूरत	16	3	4	10	0
53	बड़ोदा	7	0	0	3	5
54	वाराणसी	4	0	3	3	0
55	विशाखापट्टनम	7	3	1	4	0

तालिका-'ख'

(दिल्ली के लिए)

महिलाओं के खिलाफ अपराध

	1993	1994	1995	1996	1997	1998
दहेज	137 (3)	158	167	133	148	136
बलात्कार	315	333	377	484	544	438
महिलाओं से छेड़छाड	359	391	531	694	675	653
406 आई पीसी 399 (दहेज से संबंधित)	170	60	30	16	33	
498 ए आई पी सी (पति या ससुराल वालों द्वारा सताया जाना)	809	985	1043	863	855	771
दहेज निषेध अधिनियम	10	13	15	4	10	10
महिलाओं का अपहरण	563	693	877	935	930	978
छेड़छाड़	3108	1668	3796	3059	1686	1193

तालिका-'ग'

1991-95 में विभिन्न आयु समूहों पर किया गया बलात्कार

और 1994 की तुलना में 1995 में प्रतिशत परिवर्तन

क्र.सं.	वर्ष	10 वर्ष से नीचे	10-16 वर्ष	16-30 वर्ष	30 वर्ष से ऊपर	कुल योग
(1)	(3)	(3)	(4)	(5)	(6)	(7)
1.	1991	1099	3630	5377	1319	10435
3.	1993	533	3581	7000	1631	11734
3.	1993	634	3759	7038	1793	13333
4.	1994	734	3344	7443	1798	13318
5.	1995	747	3330	7753	1955	13774
6.	1994 की तुलना में 1995 में प्रतिशत परिवर्तन	1.8	3.3	4.3	8.7	4.3

तालिका-'घ'

1997 के बलात्कार मामलों का विश्लेषण

(31 दिसम्बर तक)

क्र.सं.		1.1.97 से 31.13.97 तक
1)	पंजीकृत मामले	544
3)	सुलझाए गए मामले	496
3)	गिरफ्तार व्यक्ति	663
4)	पीड़ितों के साथ मुजरिमों का संबंध	
	क) पिता	13
	ख) सौतेला पिता	4
	ग) पूर्व पति	3
	घ) चाचा/मामा	8
	च) चचेरे/ममेरे/फुफेरे/मौसेरे भाई	4
	छ) बहनोई/साला	8
	i) अन्य जानपहचान के लोग	54
	क) पड़ोसी	388
	ख) मित्र	13
	ग) नौकर	5
	घ) मकानमालिक	31
	च) किराएदार	36
	छ) नियोक्ता/सहकर्मी	16
	ज) शिक्षक	4
	झ) नाई	1
	ट) चिकित्सक	3
	ठ) पुलिसकार्मिक	3
5)	i) पुजारी/तांत्रिक	3
	ii) अनजाने व्यक्ति	59
	iii) आरोपियों की संख्या	
	iv) अकेले	437
	v) दो	68
	vi) अनेक	49
6)	सहपलायन	148
7)	पीड़ितों का आयु समूह	
	i) 13 वर्ष तक	111
	ii) 13-16 वर्ष	175
	iii) 16-18 वर्ष	94
	iv) 18-35 वर्ष	93
	v) 15 वर्ष से ऊपर 71	
8)	पीड़ितों की सामाजिक हैसियत	
	i) निम्न	341
	ii) मध्य	198
	iii) उच्च	5
	iv) समृद्ध	-

तालिका- 'च'

1998 के बलात्कार मामलों का विश्लेषण (31 दिसम्बर तक)

क्र.सं.	अपराध	वर्ष 1995 में : परिवर्तन						
		1991	1993	1993	1994	1995	1991	1994
(1)	(3)	(3)	(4)	(5)	(6)	(7)	(8)	(9)
1	बलात्कार	9,793	11,113	11,343	13,351	13,754	40.4	11.3
3	अपहरण	13,300	13,077	11,837	13,998	14,063	14.3	8.3
3	दहेज मृत्यु	5,157	4,963	5,817	4,935	5,093	-1,3	3,3
4	सताना	15,949	19,750	33,064	35,946	31,137	95,3	30,0
5	शारीरिक छेड़छाड़	30,611	30,385	30,985	34,117	38,475	38,1	18,1
6	यौनात्मक प्रताड़ना	10,383	10,751	13,009	10,496	4,756	-53,7	-54,7
7	लड़कियों को धंधे में लगाना	-	167	191	-	14,4	-	-
8	सती निषेध अधिनियम	-	-	3	37	-	1350	-
9	अवैध शारीरिक व्यापार निषेध अधिनियम	-	-	7,547	8,447	-	11.9	-
10	महिलाओं का अभद्र प्रदर्शन	-	-	-	389	539	-	38.6
	कुल	74,093	79,037	83,954	98,948	1,06,471	43,7	76

अनुभव से सीखिए-1

पिछले एक वर्ष का कोई अखबार पढ़िए और उसमें से बलात्कार के मामलों पर सूचना इकट्ठा कीजिए। अखबार में छपी इन सूचनाओं के आधार पर बलात्कार के प्रकारों, पीड़ितों और आरोपियों की एक तालिका बनाकर हमारे समाज में बलात्कार की शिकार महिला शीर्षक से एक टिप्पणी लिखिए।

11.8 सारांश

उपर्युक्त विश्लेषण से यह स्पष्ट होता है कि भारतीय दंड संहिता में बलात्कार के लिए विशेष प्रावधान रखा गया है। सर्वोच्च न्यायालय के निर्णय के बाद कार्यालयों और कार्य स्थलों में यौन उत्पीड़न की शिकायतों के मामलों को देखने के लिए समितियां बनाई गई हैं। राष्ट्रीय महिला आयोग ने जन जागरूकता और शिक्षा के कई अभियान चलाए। एलेक्ट्रोनिक और टेली संचार माध्यमों ने महिलाओं की समस्याओं और उनके दुख दर्द से सबको अवगत कराया। महिलाओं को उनके अधिकारों के प्रति सचेत किया। इस मुद्दे को प्रचारित व प्रसारित करने में गैर सरकारी संगठन ने महत्वपूर्ण

भूमिका अदा की। बलात्कार के कानूनों में प्रगतिशील सुधारों के बावजूद भारतीय प्रमाण अधिनियम के धारा 155 (4) ए अभी भी मौजूद है। इसमें यह कहा गया है कि बलात्कार की शिकार महिला चरित्रहीन भी हो सकती है। इस प्रावधान के रहने से बलात्कार की शिकार महिला को कानून से कोई मदद नहीं मिलती और आरोपी की मदद कर रहा वकील बार-बार यही साबित करने की कोशिश करता है कि बलात्कार की शिकार महिला चरित्रहीन थी (सुमन रानी मुकदमा)। बलात्कार एक ऐसा अपराध है जिसमें महिला को दोतरफी मार पड़ती है। एक तोशारीरिक यौन उत्पीड़न का शिकार होना पड़ता है और दूसरी ओर समाज भी उसे प्रताड़ित करता है। जबतक भारतीय समाज यौन संबंधों को लेकर अपने दुहरे बर्ताव को नहीं बदलेगा तबतक कानून और अदालत भी बलात्कार की शिकार महिला के साथ पूरा न्याय नहीं कर सकते क्योंकि वे भी समाज का एक हिस्सा हैं। वे मानते हैं कि केवल महिलाओं को ही 'पवित्र' होना चाहिए। इन सब बातों से यह स्पष्ट है कि बलात्कार में अधिकांश दोषी व्यक्तियों को सजा नहीं मिल पाती है और अधिकांश मामले दर्ज भी नहीं किए जाते। इस संगीन जुर्म को रोकने में जुर्माना भी असफल रहा। अक्सर देखा गया है कि न्यायाधीश भी कड़ा दंड देने के पक्ष में नहीं होते। ऐसा प्रतीत होता है कि जुर्माने का उल्टा असर हो सकता है और कम से कम लोगों को दंड दिया जा सकता है और उसके बावजूद बलात्कार से पीड़ित महिला को न्याय दिलाने का संघर्ष चल रहा है और चलता रहेगा। ढाका में महिलाओं के खिलाफ होने वाले अपराधों को रोकने के लिए सकारात्मक कदम उठाने के लिए एक दक्षेस कार्यशाला का आयोजन किया गया। उन्होंने कुछ ठोस तरीके बताए जिनका पालन कर नीति निर्माता समानता और स्त्री-पुरुष न्याय को सामाजिक यथार्थ में बदलने की योजना बना सकते हैं।

11.9 शब्दावली

आरोपी : फौजदारी अपराधी।

वक्तव्य : गवाह द्वारा सत्य या तथ्य का उद्घाटन।

11.10 कुछ उपयोगी पुस्तकें

खन्ना, खुराना (संपादन) (1988) *सोसिएलाइजेशन, एजुकेशन ऐंड वीमेन : एक्सप्लोरेशन इन जेंडर आइडेंटिटि.* नई दिल्ली : ओरिऐंटल लांग मैन.

गवर्नमेंट ऑफ इंडिया. (1974) *टूवर्ड्स इक्वैलिटी : रिपोर्ट ऑफ द कमिटी ऑन द स्टेटस ऑफ वीमेन इन इंडिया.* नई दिल्ली : शिक्षा और समाज कल्याण मंत्रालय.

इकाई 12 दहेज

रूपरेखा

12.0 उद्देश्य

12.1 प्रस्तावना

12.2 दहेज: महिलाओं के खिलाफ एक संगीन जुर्म

- 12.2.1 दहेज क्या है ?
- 12.2.2 भारत में दहेज संबंधी हिंसा
- 12.2.3 दिल्ली में दहेज से होने वाली मौतें

12.3 निषेध अधिनियम, 1961

- 12.3.1 कानूनी परिभाषा
- 12.3.2 दंड

12.4 भारतीय दंड संहिता में दहेज

- 12.4.1 धारा 498 ए में दंड
- 12.4.2 धारा 304 बी में दंड
- 12.4.3 धारा 498 ए और 304 बी का प्रयोग

12.5 भारतीय प्रमाण अधिनियम में सुरक्षा

12.6 सरकारी और गैर-सरकारी अभिकरणों के प्रयत्न

12.7 सारांश

12.8 शब्दावली

12.9 कुछ उपयोगी पुस्तकें

12.0 उद्देश्य

इस पाठ्यक्रम की पिछली इकाइयों में आपने महसूस किया होगा कि हमारे समाज में महिलाओं के साथ कई प्रकार के अपराध होते हैं। दहेज एक ऐसा ही अपराध है। इस इकाई में इस मुद्दे के कानूनी पक्ष पर ध्यान दिया गया है। इस इकाई को पढ़ने के बाद आप:

- दहेज की समस्या के सामाजिक पक्ष पर विचार कर सकेंगे,
- दहेज निषेध अधिनियम और भारतीय दंड संहिता के विभिन्न प्रावधानों की व्याख्या कर सकेंगे,
- हमारे समाज में इस अपराध को रोकने के लिए विभिन्न सरकारी और गैर सरकारी समाजों का परीक्षण कर सकेंगे।

12.1 प्रस्तावना

हमारे समाज में महिलाओं को समान दर्जा प्राप्त नहीं है। महिलाओं का दर्जा नीचे रखने के लिए कई संस्थागत व्यवस्थाएं भी निर्मित की गई हैं। समय के साथ-साथ इन संस्थाओं ने हमारे समाज में

महिलाओं के खिलाफ अपराध को बढ़ावा दिया है। दहेज की संस्था ने बड़ी मज़बूती से अपने पैर जमा रखे हैं और महिलाओं के खिलाफ यह अपराध ज़ोरों से चल रहा है। इस अपराध को रोकने के लिए राज्य ने अनेक कानूनी प्रतिबंध लगा रखे हैं। इस इकाई में हम हमारे समाज में दहेज के खिलाफ बने कानूनों का विश्लेषण करेंगे। दहेज निषेध अधिनियम 1961 में दंड के कई प्रावधान रखे गए हैं। भारतीय दंड संहिता में भी इस प्रकार के प्रावधान शामिल हैं। इस इकाई में इन सभी प्रावधानों पर विचार किया जाएगा। हाल के वर्षों में कई सरकारी और गैर सरकारी संगठनों ने दहेज को रोकने और दहेज से होने वाली मौतों के खिलाफ प्रयास किए हैं। इस इकाई के अन्त में हमने इनमें से कुछ प्रयासों पर विचार किया है।।

12.2 दहेज: महिलाओं के खिलाफ एक संगीन जुर्म

भारत में संविधान द्वारा महिलाओं को समानता का अधिकार प्रदान करने के बावजूद उन्हें कई प्रकार की हिंसा और खतरों का सामना करना पड़ता है। एक ओर महिलाओं के सामाजिक, आर्थिक आधार को ऊपर उठाने की कोशिश की जा रही है और देश के विकास में उनकी भूमिका तय की जा रही है तो दूसरी ओर उनके खिलाफ होने वाले विभिन्न प्रकार के अपराध इस प्रकार के प्रयत्नों को धक्का पहुंचा रहे हैं। दहेज महिलाओं के खिलाफ होने वाला एक ऐसा ही अपराध है। इस अपराध के दो पक्ष हैं : 1) विवाह पूर्व और 2) विवाह के बाद। विवाह के पहले लड़की और लड़की का परिवार निराशा और हताशा के दौर से गुजरता है। दूसरी ओर विवाह के बाद भी दहेज का दानव सताता है जो ज्यादा पीड़ादायक होता है क्योंकि यह आजीवन विवाहित स्त्री का दामन नहीं छोड़ता। दहेज की इस समस्या की गंभीरता और भयावहता को देखते हुए भारतीय दंड संहिता में दहेज के लिए विशेष नियम और कड़े कानून बनाए गए हैं।

12.2.1 दहेज क्या है ?

एक महिला अपने साथ और अपने पति के पास जो धन लाती है उसे दहेज कहते हैं। विलियम जे. कूड के अनुसार भी विवाह में लड़की के साथ आए धन को दहेज कहा जाता है। दहेज में लड़की वाले लड़के वाले को धन या सम्पत्ति देते हैं परंतु इस पर किसका अधिकार होता है। यह बात अलग-अलग संस्कृतियों पर लागू होती है। उदाहरण के लिए पश्चिमी देशों में आमतौर पर यह दूल्हे को दिया जाता है जिसे वह कुछ प्रतिबंध के साथ उपयोग में ला सकता है या उस पर उसका पूरा अधिकार होता है। आयरलैंड के ग्रामीण इलाकों में दहेज दूल्हे के पिता को दिया जाता है जो बाद में अपनी भूमि दूल्हन और दूल्हा को दे देते हैं। भारतीय समाज और संस्कृति में दहेज की अवधारणा बहुत पुरानी है। मनु ने अपने प्राचीन हिन्दू ग्रंथ में इसे विवाह का एक रूप माना है। मनु के अनुसार खरीद कर किया गया विवाह असुर विवाह होता है जिसे मनु ने गैर कानूनी घोषित किया था।

सामाजिक दृष्टि से दहेज की अवधारणा का उदय दो प्रसिद्ध विवाह रूपों में देखा जा सकता है जिसे अनुलोम और प्रतिलोम के नाम से जाना जाता था। प्रतिलोम विवाह पद्धति में एक महिला की शादी निम्न जाति के पुरुष से होती थी जिसे प्राचीन हिन्दू कानून में मान्यता प्राप्त नहीं थी। अनुलोम विवाह में एक महिला का विवाह अपने से ऊंची जाति में हो सकता था। इसके कारण दूल्हनों की शादी बड़े घरानों में की जा सकती थी। अनुलोम विवाह में लड़की हमेशा निम्न उपजाति या जाति समूह की होती थी। दूल्हा और दूल्हन का यह सामाजिक अंतर पैसे से पाटा जाता था।

धीरे-धीरे दहेज एक सामाजिक बुराई बनता चला गया और इसने दानव का रूप धारण कर लिया। दहेज की पूरी संस्था में मूलभूत परिवर्तन हो गया और यह महिलाओं की दासता तथा असमानता का प्रतीक बन गया। इसी पृष्ठभूमि में दहेज की सामाजिक बुराई पर कानूनी प्रतिबंध लगाया गया और दहेज लेने या देने को दंडनीय अपराध माना गया। परंतु दहेज लेने और देने वाले को समान रूप

से अपराधी मानकर दहेज निषेध अधिनियम की प्रभावशीलता कमजोर हो गई। भारतीय समाज में इस प्रकार का समीकरण नहीं चल सकता था क्योंकि महिलाओं की स्थिति कमजोर थी और दूल्हन के परिवार वालों को मजबूरन दहेज देना पड़ता था।

12.2.2 भारत में दहेज संबंधी हिंसा

राष्ट्रीय अपराधिक आंकड़ा ब्यूरो में 1995 तक राष्ट्रीय आंकड़े उपलब्ध हैं जिसके अनुसार 1995 में पिछले वर्ष की अपेक्षा दहेज से होने वाली मौत में आंशिक वृद्धि हुई थी। दिल्ली (1.5), उत्तर प्रदेश (1.3) और हरियाणा (1.3) में लगातार वृद्धि हो रही थी।

इसी प्रकार पति और उसके संबंधियों द्वारा किए जाने वाले अत्याचार में 1995 में 0.5 की वृद्धि हुई (1994 में या 2.9 था जो 1995 में बढ़कर 3.5 हो गया)। वस्तुत: 1995 में महिलाओं के खिलाफ होने वाले अपराधों में यह एक प्रमुख अपराध था। इस अपराध में महाराष्ट्र सबसे आगे रहा और राजस्थान उसके पीछे-पीछे चला।

परिशिष्ट 'क' में वर्षवार और तिथिवार दहेज से होने वाली मौत और अत्याचार का ब्योरा दिया गया है। इन् आंकड़ों को देखने से यह बात स्पष्ट हो जाती है कि 1991 के बाद दहेज से होने वाली मृत्यु और अत्याचार में लगातार वृद्धि हो रही है। परिशिष्ट 'ख' और 'ग' में दहेज से होने वाली मौतें और अत्याचार तथा महिलाओं के खिलाफ होने वाले अपराधों में इसके अनुपात पर दृष्टि डाली जा सकती है। इससे पता चलता है कि राज्यों और संघशासित क्षेत्रों में महिलाओं के खिलाफ होने वाले अपराधों में दहेज से होने वाले अपराधों का स्थान सबसे ऊपर था।

परिशिष्ट 'घ' में दहेज निषेध अधिनियम के अन्तर्गत 1991 और 1995 के बीच होने वाले पंजीकृत अपराधों की सूची दी गई है। इससे पता चलता है कि इस अधिनियम के बनने के बाद भी यह प्रवृत्ति बढ़ी है। 90 : मामले बिहार (1982), उत्तर प्रदेश (653) कर्नाटक (337), तमिलनाडु (319) और उड़ीसा (249) में दर्ज किए गए।

परिशिष्ट 'ड.' में दहेज से होने वाली मौतों और अत्याचारों के मामले को राष्ट्रीय स्तर पर देखा जा सकता है जबकि परिशिष्ट 'च' और 'छ' में क्रमश:1994 और 1995 में महिलाओं के खिलाफ होने वाले अपराधों का विवरण और प्रतिशत का उल्लेख किया गया है।

इन आंकड़ों को देखने से यह पता चलता है कि भारत में महिलाओं के खिलाफ होने वाले अत्याचारों में दहेज से होने वाली मौत और अत्याचार का स्थान सबसे ऊंचा है।

12.2.3 दिल्ली में दहेज से होने वाली मौतें

1) परिशिष्ट 'ज' में महिलाओं के खिलाफ होने वाले आपराधिक मामलों की चर्चा की गई है (1993 से 28.2.99 तक)। इन आंकड़ों को देखने से पता चलता है कि दहेज से होने वाली मौतों में लगातार वृद्धि हो रही है और 1993 से लेकर 1997 तक उनके खिलाफ होने वाले अत्याचारों में भी वृद्धि हुई है। 1998 में इन दोनों मदों में कमी आई है।

अपने अनुभव से सीखिए 1

पिछले 6 वर्षों के राष्ट्रीय और स्थानीय अखबारों से दहेज आधारित समाचार छांटिए और इस संग्रहीत सूचना के आधार पर 'हमारे समाज में दहेज से हुई मौतें' शीर्षक पर टिप्पणी लिखिए।

12.3 दहेज निषेध अधिनियम 1961

1961 में संसद ने दहेज निषेध अधिनियम बनाकर दहेज लेने और देने पर प्रतिबंध लगा दिया।

12.3.1 कानूनी परिभाषा

इस अधिनियम की धारा 2 के अनुसार "दहेज एक ऐसी सम्पत्ति या मूल्यवान बंधक है जिसे प्रत्यक्ष या अप्रत्यक्ष रूप में निम्नलिखित पक्षों द्वारा लिया और दिया जाता है"।

क) विवाह करने वाले एक पक्ष को दूसरे पक्ष द्वारा।

ख) किसी भी पक्ष के माता-पिता द्वारा दिया गया या किसी भी व्यक्ति द्वारा विवाह करने वालों को विवाह के पहले या विवाह के बाद दिया जाने वाला धन दहेज कहलाता है। परंतु मुसलमानों पर यह लागू नहीं होता और इसमें 'मेहर' शामिल नहीं होता क्योंकि उन पर मुस्लिम व्यक्तिगत कानून (शरियत) लागू होता है।

इस अधिनियम की धारा 3 के तहत कोई भी व्यक्ति किसी भी समय दहेज लेता या देता है तो कम से कम 6 महीने और अधिक से अधिक 2 वर्ष की सजा या अधिक से अधिक 10 हजार रुपए का जुर्माना या दोनों सजाएं हो सकती हैं।

परंतु निम्नलिखित परिस्थितियों में उपर्युक्त धारा लागू नहीं होती:

क) इस अधिनियम में दिए गए नियम के अनुसार यदि दूल्हन के माता-पिता बिना किसी दबाव या मांग के इस प्रकार का दहेज देते हैं और उसकी सूची बनाते हैं तो उपर्युक्त दंड लागू नहीं होता।

ख) दूल्हे को बिना मांग किए विवाह के समय दिया जाने वाला उपहार इसमें शामिल नहीं होता। परंतु इन उपहारों की सूची बनानी होती है।

ग) परम्परागत रीति रिवाज से जुड़े उपहारों को इसमें शामिल नहीं किया जाता परंतु इसका मूल्य व्यक्ति की आर्थिक हैसियत के अनुरूप होना चाहिए।

12.3.2 दंड

इस अधिनियम की धारा 4 के अनुसार यदि कोई व्यक्ति दूल्हा या दूल्हन के माता-पिता, संबंधी या अभिभावक से प्रत्यक्ष या अप्रत्यक्ष रूप में दहेज की मांग करता है तो इस स्थिति में कम से कम 6 महीने अधिक से अधिक 2 वर्ष की सजा और 2 हजार रुपए तक का जुर्माना लगाया जा सकता है।

1961 में बने इस अधिनियम के बावजूद हमारे समाज में दहेज की यह कुप्रथा समाप्त नहीं हुई। दहेज का यह चेहरा तब और कुरूप और अमानवीय हो जाता है जब विवाह के बाद दहेज की मांग की जाती है और उसके लिए दूल्हन को दहेज की चिता पर भस्म कर दिया जाता है। 1983 में संसद के दोनों सदनों के समिति के सुझाव पर इस प्रकार की घटनाओं को प्रभावी ढंग से रोकने के लिए फौजदारी कानून को संशोधित किया गया और पति या पति के रिश्तेदारों की क्रूरताओं से निपटने के लिए धारा 498 ए जोड़ी गई।

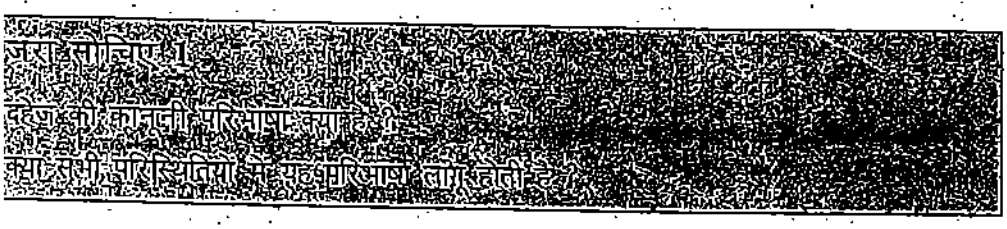

2.4 भारतीय दंड संहिता में दहेज

पिछले भाग में हमने दहेज निषेध अधिनियम में दहेज संबंधी प्रावधानों का अध्ययन किया। आइए अब भारतीय दंड संहिता दंड संहिता में इसकी स्थिति देखी जाए।

12.4.1 धारा 498 ए में दंड

यदि पति अपनी पत्नी पर अत्याचार करता है या उसके संबंधी उस पर अत्याचार करते हैं तो उन्हें अधिक से अधिक 3 वर्ष की सजा दी जा सकती है और उन पर जुर्माना भी लगाया जा सकता है।

यहां 'अत्याचार' का मतलब निम्नलिखित है:

क) कोई भी ऐसा कार्य जिसके चलते महिला को आत्महत्या करनी पड़े या उसका जीवन संकट में पड़ जाए या उसके मानसिक या शारीरिक स्वास्थ पर कोई असर पड़े।

ख) किसी महिला को इसलिए पीड़ित करना या सताना क्योंकि वह अपने साथ दहेज का धन या सामान नहीं लाई। इस आधार पर उसे उसके मायके वालों से न मिलने देना।

12.4.2 धारा 304 बी में दंड

यदि कोई महिला अपने विवाह के 7 वर्ष के अन्दर जलने या शारीरिक चोट लगने से मरती है और यह पाया जाता है कि मरने से ठीक पहले उसके पति या संबंधियों द्वारा क्रूरतापूर्वक सताया गया है तो इस प्रकार को मृत्यु 'दहेज मृत्यु' कहा जाएगा। पति और उनके संबंधियों को मौत का कारण माना जाएगा।

इस धारा के प्रमुख अंश इस प्रकार हैं

क) जलने और शारीरिक चोट से होने वाली मौत या असमान्य मौत,

ख) विवाह के 7 वर्ष के अन्दर होने वाली इस प्रकार की मौत,

ग) उसे उसके पति या उनके संबंधियों द्वारा सताया गया हो।

घ) यह सताया जाना या क्रूरता दहेज की मांग से संबंधित होनी चाहिए।

12.4.3 धारा 498 ए और 304 बी का प्रयोग

इसमें सभी प्रकार के उत्पीड़न को शामिल नहीं किया गया है। सभी प्रकार के अत्याचार और क्रूरता को धारा 498 ए में स्थान नहीं दिया गया है। शिकायतकर्ता को यह प्रमाण देकर साबित करना होगा कि मार-पीट और उत्पीड़न के कारण महिला को आत्म हत्या करनी पड़ी या दहेज की अवैध मांग के लिए उसे सताया गया।

तारसेम सिंह बनाम अमित कौर 1995 में अदालत के फैसले में यह कहा गया कि यदि कोई पति अपनी पत्नी को अपने पास नहीं रखता तो इसे सताना नहीं कहा जाएगा।

केवल सताना या धन आदि की मांग करना क्रूरता नहीं है। यदि किसी प्रकार की मांग के लिए महिला को सताया जाता है और तंग किया जाता है तो उसे क्रूरता माना जाएगा और यह इस धारा के तहत दंडनीय अपराध है।

न्यायाधिकार क्षेत्र – यदि किसी पत्नी के साथ दहेज के लिए दुर्व्यवहार किया जाता है और उसके पिता के पास वापस भेज दिया जाता है जहां वह सदमे तथा क्रूरता के परिणामस्वरूप बीमार पड़ जाती है। उस स्थिति में अदालत में क्रूरता से संबंधित 498 के अन्तर्गत शिकायत दर्ज की जा सकती है।

शिकायत और समझौता – डी जयालनहु बनाम राज्य के प्रसिद्ध फैसले में यह कहा गया था कि धारा 498 ए के तहत की गई शिकायत को वापस लिया जा सकता है और पति तथा पत्नी के बीच समझौता करवाया जा सकता है। यदि कोई ऐसा भी अपराध हो जो समझौते की कानूनी परिधि में नहीं आता हो फिर भी यदि पति पत्नी का मामला हो तो समझौते की अनुमति देनी होगी। इसमें यह कहा गया कि केवल उच्च न्यायालय ही अपने अधिकारों का प्रयोग करते हुए गैर समझौता पर एक मुकदमे में समझौते की अनुमति दे सकती है।

पत्नी द्वारा सताया जाना, यदि पति द्वारा सताए जाने के कारण पत्नी आत्म हत्या कर लेती है तो यह भी धारा 498 के तहत दंडनीय अपराध माना जाएगा।

मुकदमा द्वारा सताया जाना - यदि कोई अपनी पत्नी पर झूठा मुकदमा दायर करता है और उसे कानूनी तरीके से तंग करने की कोशिश करता है और पत्नी अपने को अपमानित महसूस करती है तथा उसकी व्यक्तिगत सम्पत्ति जब्त कर ली जाती है तो उसके खिलाफ वह अदालत में जा सकती है।

स्त्री धन लौटाने से इनकार - यदि पति और ससूर किसी हिन्दू महिला को ससुराल से बाहर निकाल देते हैं और उसके गहने, पैसे और कपड़े देने से इनकार कर देते हैं तो उनके खिलाफ धारा 405 और 406 के तहत फौजदारी मुकदमा दायर किया जा सकता है।

अनुभव से सीखिए 2

आप कई विवाहों में सम्मिलित होते होंगे। इनमें से आप 4 विवाहों के बारे में सूचना इकट्ठा कीजिए।

क) किस प्रकार का दहेज दिया गया? ख) किन परिस्थितियों में दहेज दिया गया? ग) क्या दोनों पक्ष दहेज संबंधी दंड के प्रावधान से परिचित हैं?

अपनी सूचना के आधार पर हमारे समाज में दहेज और दंड पर एक टिप्पणी लिखिए।

12.5 भारतीय प्रमाण अधिनियम में सुरक्षा

पीड़ित व्यक्ति को सुरक्षा प्रदान करने के लिए भारतीय प्रमाण अधिनियम में 1983 के अधिनियम 46 द्वारा धारा 113 ए जोड़ी गई। इस धारा में किसी विवाहित महिला को आत्महत्या करने के लिए मजबूर करने पर भी दंड का प्रावधान है।

यदि कोई महिला अपने पति या पति के रिश्तेदार के उकसाने या भड़काने से आत्महत्या करती है और यह आत्महत्या विवाह के 7 वर्ष के अन्दर की जाती है तो इसकी भी क्रूरता माना जाएगा और इसके आधार पर अपराधी को दंड दिया जाएगा।

इसी प्रकार भारतीय प्रमाण अधिनियम की धारा 113 बी में महिला की उस मृत्यु को दहेज मृत्यु माना जाता है जिसमें महिला मृत्यु की जांच से यह साबित हो कि मरने से पहले उसे पीड़ा पहुंचाई गई है। इस प्रकार की मृत्यु को अदालत दहेज के कारण हुई मृत्यु मानता है।

12.6 सरकारी और गैर सरकारी अभिकरणों के प्रयत्न

भारत के प्रथम प्रधानमंत्री पंडित जवाहलाल नेहरू ने बिलकुल सही कहा था कि "केवल कानून बनाकर सामाजिक समस्याओं को नहीं सुलझाया जा सका। उनके समाधान के लिए अन्य रास्ते अपनाने होंगे। परंतु कानून बनाना भी जरूरी है क्योंकि इससे विभिन्न प्रयासों को बल मिलेगा और लोगों में जागरूकता भी पैदा की जा सकती है। कानूनी मान्यता मिलने से जनमत में भी परिवर्तन होगा और फिर परिवर्तन की प्रक्रिया शुरू हो जाएगी।" आइए, हम देखें कि ऊपर उल्लिखित कानूनों में कार्यान्वयन के लिए सरकारी और गैर सरकारी अभिकरणों ने क्या-क्या प्रयत्न किए हैं।

क) महिला अपराध प्रकोष्ठ का निर्माण - कई राज्यों ने इस प्रकार की महिला अपराध प्रकोष्ठों का निर्माण किया है जिसमें महिलाओं की घरेलू समस्याओं को सुलझाया जाता है। इस महिला प्रकोष्ठ ने

यथासंभव वैवाहिक मामलों को सुलझाने का प्रयत्न किया है। उदाहरणस्वरूप 1998 में दिल्ली में इसने 7200 शिकायतें प्राप्त की। दिल्ली में नानकपुरा और 9 अन्य प्रकोष्ठ जिलों में स्थापित हैं। इनमें से 1564 मामलों में इस प्रकोष्ठ के अधिकारियों ने समझौता कराया। यह महत्वपूर्ण बात है कि प्रकोष्ठ में दर्ज शिकायतों में से केवल 8.9 शिकायतों को ही मुकदमा दर्ज करने के लिए अनुशंसित किया गया। दिल्ली में केंद्रीय मुख्यालय में विशेष सेवा लाइन (टेलीफोन नं.) स्थापित हैं जो पीड़ित महिला की सहायता करने में महत्वपूर्ण भूमिका निभा रहा है। 1998 में इस सहायता लाइन के जरिए 1063 टेलीफोन आए। 384 मामलों में पुलिस की सहायता मांगी गई और 14 मामलों में फौजदारी मुकदमे जारी किए गए। 448 मामलों में फोन करने वालों के प्रश्नों का उत्तर दिया गया और बाकी फोन फर्जी पाए गए।

ख) **पारिवारिक महिला लोक अदालत** – महिलाओं को तेजी से काम दिलाने के लिए राष्ट्रीय महिला आयोग ने पारिवारिक महिला लोक अदालत की स्थापना की। गैर सरकारी संगठनों की सहायता से लोक अदालतों की तर्ज पर उन्हें गठित किया गया और राज्य तथा जिला स्तरों कानूनी सलाह बोर्डों की स्थापना की गई। पारिवारिक विवादों को निपटाने में और महिलाओं को लाभ दिलवाने में यह प्रयास काफी सफल रहा। गैर सरकारी संगठन ने आयोग को कानूनी सहायता बोर्ड बनाने और महिला अदालतों के प्रस्ताव लगातार मिलते रहते हैं। पारिवारिक महिला लोक अदालत मुख्य रूप से निम्नलिखित प्रकार के मामले हाथ में लेते हैं: विचाराधीन मामले, मुकदमे से पहले के मामले, वैवाहिक विवाद जैसे मामलों में कानूनी सलाह, फौजदारी मामले, मजदूरी, मोटर दुर्घटना के मामले और दहेज उत्पीड़न आदि के मामले। 1997 और 1998 में राष्ट्रीय महिला आयोग ने 12 राज्यों में 30 अदालतों का आयोजन किया।

अभी तक हमने जो विचार विमर्श किया उसे संक्षेप में इस प्रकार कहा जा सकता है:

क) सबसे पहली बात यह है कि केवल कानून निर्माताओं ने ही नहीं बल्कि कानून कार्यान्वयन अभिकरणों ने भी दहेज की समस्या को महत्वपूर्ण माना है। दहेज संबंधी हिंसा के अपराधी को दंडित करने के लिए भारतीय प्रमाण अधिनियम में दहेज पर 498 ए और 304 बी धारा अलग से बनाई गई है ताकि अपराधियों को तकनीकी आधार पर कानूनी छूट न मिल जाए।

ख) दहेज संबंधी हिंसा के विश्लेषण से यह बात सामने आती है कि सामाजिक और शैक्षिक जागरूकता की दृष्टि से उच्चवर्गीय परिवारों में भी इस प्रकार के मामले सामने आ रहे हैं। यह बहुत ही दुखद बात है।

ग) महिला संगठन, गैर सरकारी संगठन, राष्ट्रीय महिला आयोग और अन्य नारीवादी समूहों ने दहेज संबंधी हत्यायों को रोकने के लिए कई सकारात्मक कदम उठाए हैं। इन उपायों के फलस्वरूप लोगों में चेतना जागी है और अधिक से अधिक जगहों पर अधिक से अधिक मामले दर्ज किए जाने लगे हैं।

हालांकि दहेज प्रथा को समाप्त करने के लिए और इस पर प्रतिबंध लगाने के लिए अनके कानूनी प्रावधान मौजूद हैं। परंतु इनसे समाज की कुप्रथा नहीं रूक सकती। इस समस्या से निपटने के लिए लोगों को जागरूक करना होगा, शिक्षित करना होगा और जनसंसार माध्यमों के द्वारा पीड़ितों को जनता के सामने लाना होगा। यह एक ऐसी समस्या है जिसमें न केवल सरोकार और सहानुभूति की जरूरत है बल्कि इसमें सहानुभूति की भी आवश्यकता है।

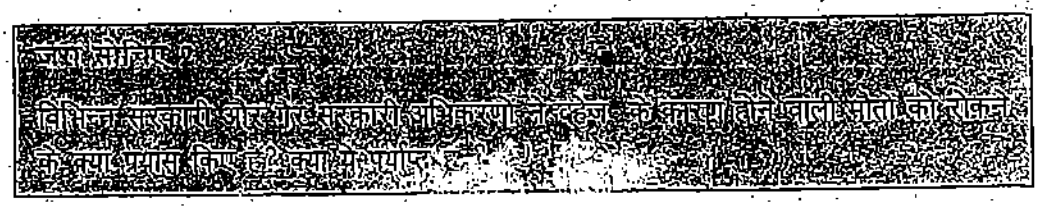

12.7 सारांश

हाल के वर्षों में भारत में दहेज की संस्था के प्रासंगिकता के मुद्दे पर महिला कार्यकर्तायों में काफी गर्मागर्म बहस हुई है। कुछ विद्वानों का मानना हैं कि क) हमारा समाज एक परम्परागत समाज है, ख) कानूनी प्रावधानों के बावजूद महिलाएं अपनी पिता की सम्पत्ति पर दावा नहीं करतीं ग) अधिकांश महिलाएं सम्पत्ति संबंधी अपने अधिकारों से परिचित नहीं हैं आदि। इस आधार पर तर्क दिया जाता है कि दहेज की संस्था एक सकारात्मक भूमिका निभाती है क्योंकि इसके जरिए लड़कियों को अपने पिता की सम्पत्ति में हिस्सा मिलता है। परंतु विवाह की संस्था के लगातार व्यवसायीकृत होने और हमारे समाज में महिलाओं की उपेक्षा लगातार बढ़ते जाने से इस प्रकार के तर्क का कोई मतलब नहीं रह गया है। इसने बराबर अपराध का रूप ले लिया है जिसके कारण कई भोली भाली निरपराध लड़कियां को अकाल मृत्यु का सामना करना पड़ता है। हमें इसका विरोध करना चाहिए क्योंकि इससे हमारे समाज में महिलाओं का अवमूल्यन होता है। इस अपराध के खिलाफ़ लड़ने के लिए हमारे पास कानूनी प्रावधान उपलब्ध हैं। इस इकाई में हमने इन्हीं कानूनी प्रावधानों से परिचित कराने का प्रयास किया है।

12.8 शब्दावली

अनुलोम : उच्च जाति या उप जाति में किसी महिला का विवाह।

गैर सरकारी संगठन : जो सरकारी संगठन न हो और किसी सामाजिक कार्य से जुड़े हों।

12.9 कुछ उपयोगी पुस्तकें

यूनेस्को, वीमेन ऐंड वायलेंस : कन्ट्री रिपोर्ट, हक्सर, नंदिता. (1986) डीमिस्टीफिकेशन ऑफ लॉ फॉर वीमेन. नई दिल्ली.

इकाई 13 परिवार न्यायालय

रूपरेखा

13.0 उद्देश्य

13.1 प्रस्तावना

13.2 परिवार न्यायालय अधिनियम, 1984

- 13.2.1 परिवार न्यायालयों के क्षेत्राधिकार
- 13.2.2 परिवार न्यायालयों की स्थापना
- 13.2.3 परिवार न्यायालयों के न्यायाधीश
- 13.2.4 कार्य-प्रणाली

13.3 महाराष्ट्र परिवार न्यायालय नियम, 1987 और 1988

- 13.3.1 परामर्श केंद्र
- 13.3.2 सम्बद्ध पक्षों को कानूनी सलाह
- 13.3.3 बच्चों का अभिभावकत्व

13.4 परिवार न्यायालय : एक समालोचना

- 13.4.1 परिवार न्यायालयों के विशिष्ट लक्षण
- 13.4.2 परिवार न्यायालयों के कार्य सम्पादन और परिवार न्यायालय अधिनियम के कार्यान्वयन में कुछ कमियां

13.5 सारांश

13.6 शब्दावली

13.7 कुछ उपयोगी पुस्तकें

13.0 उद्देश्य

यह इकाई परिवार न्यायालय अधिनियम, 1984 के विभिन्न पहलुओं और अधिनियम के परिपालन करने के लिए राज्य सरकारों द्वारा निर्मित नियमों के विषय में बताती है। इस इकाई का अध्ययन करने के बाद आप निम्न कार्य करने योग्य होंगे :

- परिवार न्यायालयों की आवश्यकता की व्याख्या करना,
- उन विषयों की गणना करना जो परिवार न्यायालय के क्षेत्राधिकार में आते हैं,
- परामर्श केंद्र की भूमिका की चर्चा करना,
- परिवार न्यायालयों के विशिष्ट लक्षणों की व्याख्या करना, और
- परिवार न्यायालयों और परिवार न्यायालय अधिनियम के परिपालन में आने वाली कमियों की चर्चा करना।

13.1 प्रस्तावना

जब समाज बहुत जटिल नहीं था, तब पारिवारिक विषयों से संबंधित कलह परिवार में ही सुलझाये जाते थे, और यदि समस्या सुलझ न पाये तो उसे जाति या ग्राम परिषद में ले जाया जाता था। वहां पर लिये गये सारे निर्णय दोनों ही पक्षों के लिए बाध्य होते थे, यहां तक कि निर्धारित सजा भी बिना किसी संदेह के स्वीकार कर ली जाती थी। कभी कभी तो इस प्रकार की समस्या राजा के पास भी ले जाई जा सकती थी, जो अपने राज्य का प्रशासनिक और न्यायिक मुखिया होता था। जैसे-जैसे समाज जटिल होता गया दीवानी और फौजदारी दोनों मामलों में न्याय दिलाने के लिए एक औपचारिक व्यवस्था की आवश्यकता स्पष्ट हो गई। ब्रिटिश राज्य के आगमन के बाद भारत में, दीवानी और आपराधिक जुर्मों से संबंधित कानून बनाए गए थे और विद्यमान कानूनों की व्याख्या से, न्यायाधीशों द्वारा न्याय वितरण के लिए न्यायालयों की स्थापना की गई। भारत में, यदि कोई निचले न्यायालयों में पारित किये गये निर्णयों से संतुष्ट नहीं है तो उच्चतम न्यायालय वह सबसे ऊँचा निगम है जहां अपनी याचिका दायर की जा सकती है।

सामान्यत: आम जनता थोड़े संकोच से ही न्याय की अदालतों का दरवाजा खटखटाती है। न्यायालयों का वातावरण बहुत ही औपचारिक और इसीलिए डर पैदा करने वाला होता है, वकीलों की सेवाएं प्राप्त करना आवश्यक है, और सम्पूर्ण प्रक्रिया इतनी लम्बी है कि निर्णय मिलने में काफी विलम्ब हो जाता है। वास्तव में, मराठी में एक लोकोक्ति है कि, "किसी भी समझदार व्यक्ति को किसी भी न्यायालय का दरवाजा नहीं खटखटाना चाहिये।"

पारिवारिक कलहों के मामलों में, अपनी सूक्ष्मग्राही प्रकृति के कारण समस्याएँ बड़ा आकार ले लेती हैं। अदालती कार्य-प्रणाली में गोपनीयता की साधारण कमी होने के कारण, सामाजिक लाछंन का डर अधिक बन जाता है।

कानूनी व्यवस्था की सीमाओं को ध्यान में रखते हुए महिलाओं और परिवारों के कल्याण में रुचि लेने वाले कार्यकर्त्ताओं ने पारिवारिक कलहों को सुलझाने के लिए अलग परिवार न्यायालयों के लिए आवाज़ उठाई। यह भी विस्तृत रूप से वर्णित किया गया कि समाज द्वारा इच्छित परिणामों को प्राप्त करने के लिए इन परिवार न्यायालयों में संधि पर बल दिया जाना चाहिये। यह आशा की गई थी कि इन परिवार न्यायालयों में, प्रमाण और कार्य प्रणाली के दुष्कर नियमों को जड़ से हटाया जायेगा। अपनी 59वीं रिपोर्ट (1974) में विधि आयोग (लॉ कमीशन) ने भी इस बात पर ज़ोर दिया कि पारिवारिक कलहों को निपटाते समय, न्यायालयों को एक ऐसी पद्धति अपनानी चाहिये जो कि उस प्रकृति से अलग हो जिसे अन्य साधारण दीवानी कार्यवाहियों में अपनाया जाता था। किंतु, संधिकरण की कार्यप्रणाली को अपनाने के लिए अधिकतर अदालतों ने शायद ही कोई प्रयत्न किया है। इसीलिए यह आवश्यक समझा गया कि पारिवारिक कलहों को संधिकरण की पद्धति अपनाते हुए, संधि सुलझाने के लिए परिवार न्यायालयों की स्थापना की जाये।

13.2 परिवार न्यायालय अधिनियम, 1984

भारतीय संसद द्वारा 1984 में अधिनियमित, परिवार न्यायालय अधिनियम ने राज्य सरकारों द्वारा, विवाह और पारिवारिक मामलों से संबंधित कलहों और अन्य संबंधित मुद्दों का शीघ्र समझौता करने की दृष्टि से, परिवार न्यायालयों की स्थापना के लिए मार्ग प्रशस्त किया। जम्मू और कश्मीर राज्य को छोड़कर, यह कानून पूरे भारत पर लागू होता है। भारत के राष्ट्रपति की सहमति मिलने के बाद, यह कानून सबसे पहले गजट ऑफ इंडिया, दिनांक 14वीं सितम्बर, 1984 को प्रकाशित हुआ था। परिवार न्यायालय अधिनियम सरकारी गजट की अधिसूचना द्वारा 1 दिसम्बर, 1986 से प्रभाव में लाया गया था।

13.2.1 परिवार न्यायालयों का क्षेत्राधिकार

(1) परिवार न्यायालयों को निम्नलिखित मामलों से सम्बद्ध कार्यवाहियां और मुक़दमें/दावे का निपटारा करने का क्षेत्राधिकार है –

i) विवाह को खारिज या भंग करना,

ii) विवाह की वैधता और किसी भी व्यक्ति की वैवाहिक प्रस्थिति,

iii) विवाह के दोनों पक्षों में से किसी एक की भी संम्पत्ति

iv) वैवाहिक संबंधों से उत्पन्न परिस्थितियाँ,

v) किसी भी व्यक्ति की वैधता,

vi) जीवन-निर्वाह भत्ता,

vii) किसी भी अवयस्क की अभिभावकत्व, संरक्षकता या उस तक पहुंच।

2) एक परिवार न्यायालय का क्षेत्राधिकार ये भी हैं जोकि एक प्रथम श्रेणी के मजिस्ट्रेट द्वारा ही अभ्यास में लाया जा सकता है -

i) कोड ऑफ क्रिमिनल प्रोसीज़र, 1973 (1974 का 2) के तहत पत्नी, बच्चों और माता-पिता को जीवन-निर्वाह भत्ता के आदेश से सम्बद्ध, और

ii) इस तरह का अन्य क्षेत्राधिकार होने से किसी अन्य अधिनियमन द्वारा परिवार न्यायालय को सौंपा जा सकता है।

13.2.2 परिवार न्यायालयों की स्थापना

परिवार न्यायालय अधिनियम के अनुसार, राज्य सरकारों को, उच्च न्यायालय से परामर्श करने के बाद, राज्य के हर उस शहर या कस्बे में जिसकी जनसंख्या दस लाख से ज्यादा है, एक परिवार न्यायालय की स्थापना करनी है। राज्य की सरकार अन्य क्षेत्रों में भी परिवार न्यायालय की स्थापना कर सकती है, अगर आवश्यकता हो तो। सरकारी गजट में प्रकाशित अधिसूचना और उच्च न्यायालय से परामर्श लेकर राज्य सरकार अपने राज्य में एक परिवार न्यायालय के क्षेत्राधिकार को बढ़ा, घटा या परिवर्तित भी कर सकती है।

यदि किसी क्षेत्र में परिवार न्यायालय की स्थापना हो चुकी है, जिला या अन्य कोई निचला दीवानी न्यायालय को किसी भी मामले से संबंधित जो कि परिवार न्यायालय के क्षेत्राधिकार में है दावा या कार्यवाही करने का क्षेत्राधिकार प्राप्त नहीं होता है। कोड ऑफ क्रिमिनल प्रोसीज़र, 1973 (1974 का 2) के अध्याय IX के तहत, परिवार न्यायालय के क्षेत्राधिकार के क्षेत्र में किसी भी मैजिस्ट्रेट को न तो क्षेत्राधिकार और शक्तियाँ प्राप्त हैं और न ही वह इनको लागू कर सकता है।

परिवार न्यायालय के क्षेत्राधिकार में जो भी जिला अदालत या निचली अदालत आती है उनके सारे दावे और कार्यवाहियां परिवार न्यायालय को उस दिनांक को स्थांतरित कर दी जायेंगी जिस दिन उस परिवार न्यायालय की स्थापना होगी।

13.2.3 परिवार न्यायालयों के न्यायाधीश

जो भी व्यक्ति परिवार न्यायालय के न्यायाधीश के रूप में नियुक्त होगा उसे निम्न शर्तें पूर्ण करनी होंगी–

- भारत में न्यायिक कार्यालय में काम का अनुभव होना या किसी ट्रिब्यूनल के एक सदस्य होने का पद या संघ या राज्य के तहत कोई ऐसा पद जहाँ कानून के कम से कम सात वर्ष के विशेष ज्ञान की जरूरत है, या

- जिसने उच्च न्यायालय या इस तरह के दो या अधिक न्यायालयों में अनुक्रम में वकील की हैसियत से कम से कम सात वर्षों तक काम किया हो।

परिवार अदालत अधिनियम, 1984 में लिखित, उपरोक्त अर्हताओं के साथ, केंद्र सरकार ने भारत के मुख्य न्यायाधीश की संयुक्त सहमति के साथ, परिवार अदालत के न्यायाधीश की नियुक्ति के लिए निम्नलिखित अतिरिक्त अर्हताओं का वर्णन किया है। (ये अर्हताएं गजट ऑफ इंडिया, एक्स्ट्राआर्डनरी, पार्ट II, सेक्शन 3, सब-सेक्शन (1) दिनांक 2 जून 1988 में प्रकाशित है) :

i) पर्सनल लॉ में विशेषज्ञता के साथ कानून में स्नातकोत्तर उपाधि

या

कानून की उपाधि के साथ सामाजिक विज्ञान जैसे समाज कल्याण, समाजशास्त्र, मनोविज्ञान, दर्शनशास्त्र में स्नातकोत्तर उपाधि।

ii) महिलाओं और बच्चों की समस्याओं के विशेष संदर्भ में किसी विद्यालय/विश्वविद्यालय या सरकारी विभाग में या किसी समतुल्य शैक्षणिक संस्थान में कम से कम सात वर्ष के फील्ड वर्क/ शोध या अध्यापन का अनुभव

या

विवाह, तलाक, जीवन-निर्वाह भत्ता, संरक्षता, दत्तक ग्रहण और अन्य पारिवारिक कलहों से संबंधित केंद्रीय/राज्यीय कानूनों को लागू करने और/या परीक्षण करने का सात वर्ष का अनुभव।

13.2.4 कार्य प्रणाली

क) **समझौते का प्रयास :** पहले तो, परिवार न्यायालय उन पक्षों को जोकि किसी दावे या कार्यवाही में फंसे हैं, एक समझौते पर पहुंचने के लिए प्रेरित और सहायता करता है, जहां कहीं भी उस मुकदमे की प्रकृति और परिस्थितियों के अनुरूप संभव हो।

इस उद्देश्य के लिए, परिवार न्यायालय उस समुचित कार्य प्रणाली का अनुसरण करता है जो सम्बद्ध राज्य के उच्च न्यायालय द्वारा निर्मित नियमों के अधीन होती है। यदि किसी समझौते पर पहुंचने की काफी संभावना दिखाई देती है तो परिवार न्यायालय अदालती कार्यवाही स्थगित करते हुए इस तरह के समझौते के लिए पर्याप्त समय देता है।

ख) **सामान्य कार्यप्रणाली:** मुकदमे की प्रकृति पर आधारित, परिवार न्यायालय में सामान्यत: उसी कार्य प्रणाली का अनुसरण किया जाता है जो कोड ऑफ सिविल प्रोसीज़र, 1908 (1908 का 5) या कोड ऑफ क्रिमिनल प्रोसीज़र, 1973 (1908 का 2) में निर्दिष्ट है, परिवार न्यायालय पर किसी समझौते पर पहुंचने के लिए अपनी कार्यप्रणाली निर्धारित करने पर कोई रोक नहीं है।

ग) **इन कैमरा :** यदि परिवार न्यायालय करना चाहे या करे, या कोई भी पक्ष ऐसा करना चाहे, तो जिन दावों और कार्यवाहियों पर परिवार न्यायालय अधिनियम लागू होता है, वे इन कैमरा (पद बंउमत) की जाती हैं। इसका तात्पर्य यह है कि जनता के सदस्यों को न्यायालय के अंदर जाने की अनुमति नहीं है, जब मुकद्मा या कार्यवाही चल रही है।

घ) **चिकित्सा या कल्याण विशषेज्ञों की सहायता :** परिवार न्यायालय को चिकित्सा विशषेज्ञ या/ और अन्य किसी व्यक्ति की सेवायें लेने का अधिकार प्राप्त है जिसे परिवार न्यायालय अपने कार्य-सम्पादन में सहायता के उद्देश्य से उपयुक्त समझता है।

ङ) **कानूनी प्रतिनिधित्व का अधिकार :** किसी भी पक्ष जिसका दावा या कार्यवाही चल रही है को वकील द्वारा प्रतिनिधित्व करने का अधिकार स्वरूप स्वत्व प्राप्त नहीं है। न्याय के हित में, परिवार न्यायालय किसी कानून विशषेज्ञ की सहायता ले सकता है।

च) प्रमाण : भारतीय प्रमाण अधिनियम, 1872 परिवार न्यायालय पर लागू होता है। साथ ही, परिवार न्यायालय किसी भी रिपोर्ट, समझौता, दस्तावेज, सूचना या विषय, जोकि परिवार न्यायालय के विचार से, किसी कलह को प्रभावी रूप से निबटने के लिए सहायक हो सकता है, को प्रमाण के रूप में स्वीकार कर सकता है।

परिवार न्यायालय के समक्ष प्रस्तुत दावों और कार्यवाहियों में, गवाहों के प्रमाण को विस्तार से अभिलेखित करना आवश्यक नहीं है। न्यायाधीश या तो स्वयं ही गवाह द्वारा कहे गये कथनों के सार के ज्ञापन को अभिलेखित करता है या उसे न्यायालय के किसी सार्वजनिक अधिकारी से अभिलेखित करवाता है। इसके बाद गवाह और न्यायाधीश इस ज्ञापन पर हस्ताक्षर करते हैं और यह ज्ञापन अभिलेखों का हिस्सा बन जाता है। यदि प्रमाण औपचारिक प्रकृति का है, यह एक शपथ पत्र के रूप में हो सकता है और असाधारण मामलों में, यह किसी भी दावे या कार्यवाही में परिवार न्यायालय के समक्ष प्रमाण में पढ़ी जा सकता है। जो व्यक्ति इस तरह का शपथ पत्र देता है, उसका दावे की कार्यवाही से संबंधित किसी भी पक्ष द्वारा दिये गये प्रार्थना पत्र के ऊपर, आह्वान किया जा सकता है और शपथ पत्र में लिखित तथ्यों के विषय में परिवार न्यायालय द्वारा जांच की जा सकती है।

छ) निर्णय : परिवार न्यायालय के निर्णय में मुकदमे का संक्षिप्त विवरण, निर्धारण बिंदु और बिंदु पर परिवार न्यायालय का निर्णय और उस निर्णय का कारण सन्निहित होता है।

परिवार न्यायालय द्वारा पारित निर्णय पत्र या आज्ञा की उतनी ही ताकत और प्रभाव होता है जितना कि दीवानी न्यायालय के निर्णय पत्र या आज्ञा को होता है और इसका कार्यान्वयन भी उसी प्रकार होता है जैसा कि कोड ऑफ सिविल प्रोसीज़र 1908 (1908 का 5) द्वारा निर्णय पत्र और आज्ञा के पालन के लिए निर्धारित है।

जब परिवार न्यायालय द्वारा पारित कोड ऑफ क्रिमिनल प्रोसीज़र, 1973 (1974 का 2) के तहत होती है, तब उसका कार्यान्वयन उसी तरह से होता है जैसा कि उस संहिता में इस प्रकार की आज्ञा को कार्यान्वित करना निर्धारित है।

परिवार न्यायालय द्वारा पारित निर्णय पत्र या आज्ञा का कार्यान्वयन या तो उसी परिवार न्यायालय द्वारा किया जा सकता है या उसे कार्यान्वित करने के लिए दूसरे परिवार न्यायालय या साधारण दीवानी न्यायालय भेजा जा सकता है।

ज) पुनर्विचार प्रार्थना : दावे या कार्यवाही वाला कोई भी पक्ष परिवार न्यायालय द्वारा पारित निर्णय या आज्ञा के विरूद्ध उच्च न्यायालय में पुनर्विचार प्रार्थना कर सकता है। इस तरह की अपील, बंधित पक्षों की सहमति के साथ, परिवार न्यायालय की आज्ञा या निर्णय की तारीख से तीस दिनों के भीतर, दायर की जा सकती है। इस तरह की अपील दो या अधिक न्यायाधीशों की पीठ द्वारा सुनी जायेगी।

झ) नियम

क) भारत के मुख्य न्यायाधीश की सहमति से केंद्रीय सरकार परिवार न्यायालय के न्यायाधीश की नियुक्ति के लिए अन्य अर्हताओं को निर्धारित करते हुए नियम बना सकती है। केंद्रीय सरकार द्वारा परिवार न्यायालय अधिनियम के तहत निर्मित प्रत्येक नियम संसद के दोनों सदनों द्वारा अनुमोदित होने होते हैं।

ख) राज्य सरकार को परिवार न्यायालय अधिनियम के उद्देश्यों को पूर्ण करने के लिए नियम बनाने का अधिकार/शक्ति है। ये नियम उच्च न्यायालय के परामर्श से बनाये जाने होते हैं और इन्हें सरकारी गजट में अधिसूचित किया जाना होता है। राज्य सरकार द्वारा इस अधिनियम के तहत निर्मित प्रत्येक नियम की रचना होने के बाद जितनी जल्दी हो उसे राज्य **विधान-मंडल सम्मुख प्रस्तुत किया जाना जरूरी है।**

जरा सोचिए 1

1) भारत में परिवार न्यायालयों की आवश्यकता की व्याख्या करें।

2) वे कौन से विभिन्न मामले हैं जो परिवार न्यायालय के क्षेत्राधिकार में आते हैं?

जैसा कि पहले इंगित किया गया है, राज्य सरकारों को परिवार न्यायालय अधिनियम को लागू करने के लिए नियमों की रचना करने का अधिकार है। इसीलिए, केंद्रीय सरकार का परिवार न्यायालय अधिनियम एक विस्तृत ढांचा प्रस्तुत करता है और राज्यीय नियम इसका सविस्तार वर्णन करते हैं कि किस तरह से इस अधिनियम को लागू करना है।

निम्नलिखित खंडों में महाराष्ट्र सरकार द्वारा निर्मित परिवार न्यायालय नियमों का सविस्तार वर्णन किया गया है कि इस राज्य में परिवार न्यायालय अधिनियम किस तरह से लागू है।

13.3 महाराष्ट्र परिवार न्यायालय नियम, 1987 और 1988

महाराष्ट्र सरकार द्वारा जारी किये गये परिवार न्यायालय नियमों के दो संग्रह उपलब्ध हैं। इन नियमों पर तीन बृहत शीर्षकों के अंतर्गत विचार-विमर्श किया जा सकता है : (1) परामर्श (counselling) केंद्र, (2) सम्बद्ध पक्षों को कानूनी सलाह, (3) बच्चों की संरक्षता।

13.3.1 परामर्श केंद्र

प्रत्येक परिवार न्यायालय से एक परामर्श केंद्र जुड़ा होता है। इस प्रकार के प्रत्येक केंद्र में एक प्रधान परामर्शदाता और अन्य परामर्शदाता होते हैं जिन्हें उच्च न्यायालय, समाज कार्य या समाज विज्ञान के एक मान्यता प्राप्त संस्थान के परामर्श से नियुक्त करता है। जिन व्यक्तियों के पास, दो वर्ष के न्यूनतम अनुभव के साथ, समाज कार्य में स्नातकोत्तर उपाधि है, वे परामर्शदाता के पदों पर नियुक्ति के योग्य हैं।

काउंसलर जिसको एक याचिका सौंपी गई हो पक्षों को उनके आपसी कलह निबटाने के मामले में सलाह और सहायता देता है। काउंसलर पक्षों को एक समझौते पर पहुंचने में भी मदद करता है।

परामर्शदाता को अपना कर्त्तव्य-निर्वाह करते समय इन सबका स्वत्व प्राप्त है कि किसी भी पक्ष के घर जाना, एक या दोनों पक्षों के रिश्तेदारों, दोस्तों या पहचान वालों से साक्षात्कार करना, किसी भी पक्ष के नियोक्ता से सूचना ग्रहण करना और पक्षों को चिकित्सा या मानसिक रोग विशेषज्ञ के पास प्रेषित करना, इत्यादि।

परामर्शदाता द्वारा एकत्रित की गई समस्त सूचनाओं को गोपनीय माना जाता है। इसमें परामर्शदाता के सम्मुख प्रस्तुत कोई भी बयान या परामर्शदाता द्वारा तैयार की गई कोई भी रिपोर्ट या संक्षिप्त लेख का समावेश होता है। दोनों पक्षों की सहमति के बिना, परामर्शदाता इन गुप्त दस्तावेजों को किसी भी न्यायालय के सम्मुख प्रकट करने को नहीं कहा सकता। परामर्शदाता के पास रखे ये संक्षिप्त लेख, रिपोर्ट और बयान या अन्य सामग्री न तो न्यायालय में प्रस्तुत प्रमाण का हिस्सा बनते है। और न ही परामर्शदाता को इस सब सामग्री के आधार पर परिवार न्यायालय में प्रमाण प्रस्तुत करने के लिए कहा जा सकता है। परंतु परामर्शदाता सम्बद्ध पक्षों के घरेलू वातावरण, उनके व्यक्तित्व और उनके बच्चे या बच्चों से उनके संबंधों से संबंधित एक रिपोर्ट प्रस्तुत कर सकता है। इस तरह की रिपोर्ट विवाह से पैदा हुए किसी भी बच्चे या बच्चों के अभिभावकत्व या संरक्षकता के प्रश्न के मामले में निर्णय लेने में न्यायालय की मदद करती है। न्यायालय को जीवन-निर्वाह भत्ते और/या विचार-कालिक भार्याभृति परित्यक्ता पत्नी को पति द्वारा दिया जाने वाला भत्ता की राशि तय करने में सहायता करने के वास्ते, परामर्शदाता सम्बद्ध पक्षों के घरेलू वातावरण, आय और जीवन के स्तर संबंधित एक

रिपोर्ट भी न्यायालय को प्रस्तुत कर सकता है। न्यायालय अपने समक्ष प्रस्तुत मामलों में न्यायिक निर्णय लेने में सहायता के वास्ते परामर्शदाता को अन्य किसी भी विषय पर रिपोर्ट प्रस्तुत करने का अनुरोध भी कर सकता है। यदि कोई भी पक्ष इस तरह की किसी रिपोर्ट की प्रतिलिपि लेने का अनुग्रह करे, तो वह उसको उपलब्ध कराई जाती है और पक्ष इस पर अपना विचार प्रकट कर सकते हैं। परामर्शदाता को प्रमाण प्रस्तुत करने के लिए न तो बुलाया जा सकता है और न ही रिपोर्ट के संदर्भ में उससे जिरह की जा सकती है। परामर्शदाता अपने समक्ष हो रही कार्यवाही के परिणाम संबंधी एक संक्षिप्त ज्ञापन भी न्यायालय को प्रस्तुत करता है।

जब परामर्शदाता के समक्ष दोनों पक्ष एक समझौते पर पहुंचते हैं, तब वह लिखित रूप में तैयार किया जाता है और दोनों पक्षों द्वारा इस पर हस्ताक्षर किये जाते हैं और परामर्शदाता द्वारा यह प्रति-हस्ताक्षरित होता है। इस समझौते के आधार पर, न्यायालय एक निर्णय पत्र या आज्ञा की अधिघोषणा करता है, जब तक कि न्यायालय यह नहीं पाता कि समझौते की शर्तें अंत:करण द्वारा व्यवस्थित या शासित नहीं हैं या अवैधानिक या सार्वजनिक नीति के विरूद्ध हैं।

परामर्शदाता को एक पक्ष की संरक्षकता में रह रहे बच्चों की स्थानीयता का पर्यवेक्षण करने का अधिकार है और उसे बच्चे की स्थानीयता वाले घर में निरीक्षणार्थ आश्चर्य आगमन करने का स्वत्व प्राप्त है। परामर्शदाता यदि बच्चे या बच्चों की संरक्षकता संबंधी प्रबंध में फेर-बदल की आवश्यकता महसूस करता है तो वह न्यायालय को रिपोर्ट करता है। तब न्यायालय, पक्षों को न्यायालय के समक्ष प्रस्तुत होने की अधिसूचना के बाद उचित लगने पर, आदेश जारी करता है। अगर यदि दम्पत्ति ने संधि कर ली है और मामला भी अदालत में विचाराधीन नहीं है, परामर्शदाता को इस तरह के दम्पत्ति का पर्यवेक्षण करने और सहायता करने का स्वत्व प्राप्त है। ऐसा भी संभव है कि परामर्शदाता न्यायालय के समक्ष संधि की कार्यवाही के जारी रहते ही, दोनों पक्षों में संधि हो जाये। इस निर्णय से वैवाहिक अपराधों को क्षमा नहीं किया जा सकता।

13.3.2 सम्बद्ध पक्षों को कानूनी सलाह

एक पक्ष को, काउंसलर या न्यायालय के समक्ष, कार्यवाही के किसी भी स्तर पर कानूनी सलाह देने का स्वत्व प्राप्त है दरिद्र परिस्थितियों वाले पक्ष को मुफ्त कानूनी सलाह और सहारा लेने का स्वत्व है।

न्यायालय कानूनी विशेषज्ञों की सहायता भी ले सकता है, अगर आवश्यक हो। इस उद्देश्य के लिए, विशेषज्ञों की एक सूची, जो न्यायालय की सहायता करने को इच्छुक हैं, तैयार की जाती है। उनको राज्य सरकार द्वारा शुल्क और व्यय दिया जाता है।

13.3.3 बच्चों का अभिभावकत्व

अभिभावक के लिए समस्त प्रार्थना पत्र परिवार न्यायालय में दिये जाते हैं, केवल उन प्रार्थना पत्रों के अलावा जिन पर उच्च न्यायालय का क्षेत्राधिकार है।

अभिभावक याचिका पर निर्णय लेने, याचिका की जाँच के लिए, न्यायालय किसी समाज कल्याण एजेंसी या/ एजेंसीज की सहायता ले सकता है। उस मामले पर न्यायालय एजेंसी/एजेंसीज से एक रिपोर्ट मांग सकता है।

किसी विदेशी द्वारा अभिभावक के लिए याचिका दायर करने के संबंध में व्यापक नियम बनाये गये हैं। एक महत्वपूर्ण विधान यह है कि किसी विदेशी द्वारा अभिभावक के लिए दायर याचिका तब तक स्वीकार नहीं जायेगी, जब तक कि परिवार न्यायालय यह संतुष्टि न कर दें एक भारतीय घर में बच्चे को कम से कम तीन महीनों (या अदालत द्वारा अनुमोदित अन्य कोई अवधि) के लिए पर्याप्त प्रबंध कर लिये गये हैं। विदेशियों के लिए, इस तरह के मामलों से संबंधित अन्य नियम इस प्रकार हैं–

i) जिस देश में याचक रहता है उस देश से उसी देश में बच्चे के प्रवेश के लिए अनुमति

ii) जब तक कानूनी रीति से बच्चे को अपनाया नहीं जाता तब तक उसी सम्बद्ध देश की मान्यता प्राप्त किसी परिवार कल्याण समिति द्वारा याचक के घर में बच्चे के पर्यवेक्षण के लिए एक वचन।

अंतिम शर्त के संबंध में, अदालत को यह संतुष्टि भी करनी होगी है कि वह विदेशी जिस देश में रहता है वहां के कानून के तहत अभिभावक के लिए याचिका दायर करके, बच्चे को कानूनी तौर पर ग्रहण कर सकता है। अदालत एक विदेशी याचक को एक निश्चित राशि का प्रतिभूत देने का निर्देश भी दे सकती है जोकि अदालत के विचारानुसार, किसी परेशानी की स्थिति में बच्चे के भारत लौटने के लिए उचित हो। अभिभावक के लिए एक याचिका को स्वीकृति देते समय अदालत उपयुक्त आदेश पारित करके अवयस्क की आर्थिक सुरक्षा भी सुनिश्चित करती है एक विदेशी को संरक्षक नियुक्त करने वाले हर अभिभावक आदेश की एक प्रतिलिपि समाज कल्याण मंत्रालय, भारत सरकार और राज्य सरकार के सांस्कृतिक मामले के विभाग को अग्रसारित की जानी होती है।

अभिभावक के लिए समस्त याचिकाओं में, समुदाय के सम्मानीय सदस्यों से दो संस्तुति-पत्र, याचक की आर्थिक स्थिति, याचक और उसके/ उसकी पति/ पत्नी का स्वास्थ्य प्रमाण पत्र, अभिभावक में लिये जाने वाले प्रस्तावित बच्चे की एक बाल अध्ययन रिपोर्ट और उसका स्वास्थ्य प्रमाण पत्र, और प्रस्तावित संरक्षक और उसके/ उसकी पति/ पत्नी, यदि है तो, से एक घोषणा पत्र जोकि बच्चे को अभिभावक में लेने में उनकी इच्छा को दर्शाता हो, इन सबको मिलाकर अनेक दस्तावेज संलग्न होने जरूरी हैं। याचिका के साथ एक मान्यता प्राप्त परिवार कल्याण एजेंसी या एक उचित रूप से प्रशिक्षित सामाजिक कार्यकर्त्ता द्वारा तैयार की गई एक घर अध्ययन रिपोर्ट देनी होती है, यदि यह रिपोर्ट उस व्यक्ति द्वारा बनाई जानी है जो बच्चे का प्राकृतिक माता-पिता या प्राकृतिक संरक्षक नहीं है।

अभिभावक में रखे गये एक बच्चे के मामले में, अदालत, किसी भी समय, अदालत से जुड़े एक परामर्शदाता को बच्चे की स्थानीयता पर्यवेक्षित करने और अपनी रिपोर्ट अदालत में प्रस्तुत करने का निर्देश दे सकता है।

बच्चों के अभिभावक संबंधी ये सभी विवरण यहां उस तरीके को उजागर करने के लिए दिये गये हैं जिससे अभिभावक में रखे गये बच्चों, बालिकाओं सहित, के हित सुरक्षित रहें।

जरा सीखिए 2

i) परिवार न्यायालयों से जुड़े हुए मंत्रणा केंद्रों की भूमिका क्या है?

13.4 परिवार न्यायालय : एक समालोचना

परिवार न्यायालय के कई विशेष लक्षण प्रकाश में लाये जा सकते हैं। दूसरी ओर, समालोचकों ने परिवार न्यायालय के कार्य-सम्पादन और परिवार न्यायालय अधिनियम के कार्यान्वयन में पाई जाने वाली कमियों की तरह इशारा किया है। दोनों ही विचारों पर ध्यान देने की आवश्यकता है।

13.4.1 परिवार न्यायालयों के विशिष्ट लक्षण

परिवार न्यायालय के विशिष्ट लक्षणों को उजागर करते हुए परिवार न्यायालय और उनके कार्यान्वयन के पक्ष में कई तर्क रखे जा सकते हैं।

क) एक सामाजिक समस्या : परिवार के समस्त मामलों संबंधी मुकद्मेबाजी चाहे तलाक, जीवन-निर्वाह भत्ता, भार्याभृत्ति, बच्चों की अभिभावक हो या उनके लिए आर्थिक सहारा, को कानूनी कार्यों की सफलता या असफलता के मापदंड से नहीं देखा जाता, बल्कि एक ऐसी

समस्या के रूप में देखा जाता है जिसका समाधान आवश्यक है। इसमें मानवीय पहलू को सबसे ज्यादा महत्व दिया जाता है।

ख) **विस्तृत-आधार सेवा :** मुसीबत में पड़े परिवारों को परिवार न्यायालय इस अर्थ में विस्तृत-आधार सेवा प्रदान करता है कि सम्बद्ध पक्ष और सामाजिक कार्यकर्त्ता/परामर्शदाता, कल्याण समितियां, मानसिक रोग विशेषज्ञ, कानून और चिकित्सा दक्ष, आदि, सब एक पारिवारिक समस्या का समाधान ढूंढने में लगे हुए हैं।

ग) **परामर्शदाता की भूमिका :** परिवार न्यायालय से जुड़े हुए अभिभावक एक बहुत ही महत्वपूर्ण भूमिका निभाते हैं। ये परामर्शदाता पुनःसंधि और उस उद्देश्य के लिए अपेक्षित अन्य सेवाओं पर लक्षित पारिवारिक परामर्श प्रदान करते हैं। ये दोनों पक्षों को सुनते हैं और इस अर्थ में एक वकील की तुलना में बहुत अलग भूमिका निभाते हैं, जो केवल अपने मुवक्किल की दृष्टि से ही मुकदमे की अदालती बहस करता है। परामर्शदाता मुकदमे के तथ्यों का भी अन्वेषण करता है।

घ) **मुकदमों का अविलम्ब निबटारा :** कानून के ढांचे में मुकदमे के शीघ्र निपटारे के प्रयास किये जाते हैं।

ङ) **गोपनीयता :** मुकदमों से संबंधित सभी मामलों में यथाशक्ति गोपनीयता का ध्यान रखा जाता है। सब मुकद्मों की कार्यवाही गुप्त होती है, जहां आम आदमी को अदालत के अंदर आने की अनुमति नहीं होती है।

च) **अनौपचारिकता :** अदालती प्रक्रिया एक अनौपचारिक वातावरण में सम्पन्न की जाती है। परिवार न्यायालय वकील की सेवाओं के बिना ही कार्य करता है। परिवार न्यायालय के सम्मुख दावे या कार्यवाही वाले किसी भी पक्ष को एक वकील द्वारा प्रस्तुत किये जाने के अधिकार का स्वत्व प्राप्त नहीं होगा। प्रमाण की सविस्तार रिकॉर्डिंग नहीं की जाती है।

छ) **कानूनी मदद :** परिवार न्यायालय द्वारा प्रद्धत सहायक सेवाओं में उन लोगों के लिए कानूनी मदद दी जाती हैं जो वकील नहीं रख सकते।

च) **कार्यान्वित सेवाएं :** परामर्श सेवाओं, अन्वेषक सेवाओं और कानूनी मदद सेवाओं सहित, परिवार न्यायालय कार्यान्वित सेवाओं को परिवार न्यायालय की एक सहायक सेवाओं के रूप में प्रदान करता है। उदाहरण के तौर पर, यदि अदालत ने किसी एक पक्ष को एक बच्चे की संरक्षकता या जीवन-निर्वाह भत्ता संबंधी आज्ञा दी है, तो परिवार न्यायालय की कार्यान्वित सेवायें इस बात के लिए उत्तरदायी हैं कि इस तरह की समस्त आज्ञाओं का कार्यान्वित होना निश्चित हो जिससे निष्पादन कार्यवाही कई महीनें या उससे अधिक तक न खिचें।

झ) **परिणाम :** परिणामस्वरूप यह कहा जा सकता है कि परिवार न्यायालय की प्रथम अभिरुचि परिवार की रक्षा करने में दिखाई देती है। इस दिशा में, विवाह को दृढ़ बनाने और पारिवारिक कलहों से उत्पन्न समस्याओं के समाधान ढूंढने के पूर्ण प्रयास किये जाते हैं। जहां पर विवाह अखंड रूप से टूट चुका है, परिवार न्यायालय भी उसे इस प्रयास सहित भंग कर देता है कि दोनों पक्षों द्वारा अनुभव की गई कड़वाहट, तनाव और अपमान न्यूनतम हो और अधिकतम समतुल्यता/ न्याय (पितदमे) बरती जाये। इन प्रयासों में, विशेषज्ञ व्यक्तियों और एजेंसियों की सहायता ली जाती है। परिवार न्यायालय मुसीबत की मारी महिलाओं के लिए विशेषतः लाभकारी/हितकारी माना गया है जिनके विवाह और परिवार में समस्याऐं हैं।

13.4.2 परिवार न्यायालयों के कार्य-सम्पादन और परिवार न्यायालय अधिनियम के कार्यान्वयन में कुछ कमियां

कई न्यायालयों में परिवार न्यायालय अधिनियम और परिवार न्यायालयों के कार्य सम्पादन की अनेकों बार आलोचना की गई है। इनमें से कुछ बिंदुओं पर विचार करने की आवश्यकता है।

) परामर्शदाता : यह इंगित किया गया है कि कभी-कभी काउंसलरों को पर्याप्त कानूनी ज्ञान नहीं होता है जिससे न्याय दिलाने में विलम्ब हो जाता है। काउंसलर कानूनी प्रक्रिया में विघ्न डालने के लिए भी दोषी पाये गये हैं। उनके द्वारा तैयार रिपोर्ट अपर्याप्त पाई गई हैं, परंतु न्यायाधीश द्वारा उन्हें स्वीकार कर लिया जाता है क्योंकि वे (न्यायाधीश) स्वयं ही अत्याधिक दायित्व निर्वाह करते हैं। इन आलोचकों ने सुझाव दिया है कि वकील को परामर्शदाता नियुक्त किया जाना चाहिए और यह परिवर्तन न्यायाधीशों को शीघ्र न्याय देने में सहायक होगा। कुछ आलोचकों ने तो यहां तक भी सुझाया है कि परिवार न्यायालय से संलग्न परामर्शदाताओं की नियुक्ति रद्द करने के लिए परिवार न्यायालय अधिनियम संशोधित किया जाना चाहिये क्योंकि ये परामर्शदाता कोई उपयोगी उद्देश्य पूर्ण नहीं करते हैं।

) संधि : यह तर्क दिया गया है कि जब तक परिवार न्यायालय में याचिका दायर की जाती है, मामले पहले ही बहुत उच्च अनुपात में पहुंच चुके होते हैं। तब दो पक्षों के मध्य संधि करने के निरर्थक प्रयास करने से क्या उद्देश्य पूर्ण होगा?

न्यायाधीश की अर्हताएं : गजट ऑफ इंडिया की एक अधिसूचना के अनुसार, जिन व्यक्तियों के पास सम्बद्ध क्षेत्रों में सात वर्षों का अनुभव, कानून में एक डिग्री सहित स्नातकोत्तर उपाधि है, वे परिवार न्यायालयों में न्यायाधीशों के पद पर नियुक्त होने के योग्य है। यह तर्क दिया गया है कि एकमात्र कानून में ही उपाधि होने से ही एक व्यक्ति किसी परिवार अदालत मे न्यायाधीश के उत्तरदायित्व को निभाने योग्य नहीं हो जाता। कानूनी प्रक्रिया और कानून के बारीक बिंदुओं का व्याख्यान करने में अंतर्दृष्टि प्राप्त करने के लिए वकील के रूप में यथार्थ अनुभव होना जरूरी है। अदालती कानून का सम्पूर्ण ज्ञान होना भी अनिवार्य है।

झूठे प्रमाण : आपसी सहमति से होने वाले तलाक के मामलों में, एक विवाह प्रमाण पत्र दिखाना होता है। अगर वह उपलब्ध नहीं है, तो विवाह के प्रमाण के रूप में एक मुद्रित निमंत्रण पत्र अदालत द्वारा स्वीकार्य है। जैसा कि सर्वविदित है, इस तरह के मुद्रित निमंत्रण पत्र बहुत आसानी से उपलब्ध किये जा सकते हैं। कई मामलों में तो, एक आदमी और औरत को तलाक दे दिया जाता है जिनका कभी भी आपस में विवाह नहीं हुआ होता है। इस प्रकार की धोखेबाजी को रोकने के लिए कोई कानूनी पद्धति नहीं है। परिवार न्यायालय, पुणे, महाराष्ट्र में अनुसरण किया जाने वाला, याचिका के नोटरी द्वारा प्रमाणित, फोटोग्राफों को संलग्न करने का अभ्यास कुछ हद तक समस्या का समाधान कर सकता है। यह सुझाव दिया गया है कि इस अभ्यास को समस्त परिवार न्यायालयों में अपनाने की आवश्यकता है।

कार्य-भार : परिवार न्यायालय अधिनियम के अनुसार परिवार न्यायालयों के क्षेत्राधिकार के तहत आने वाली सभी याचिकाएं, परिवार न्यायालय में दायर की जानी होती है। यहां तक कि अन्य अदालतों में इस प्रकार के विचाराधीन मुकदमे भी परिवार न्यायालय में स्थानांतरित कर दिये जाते हैं। इससे किसी भी एक परिवार न्यायालय पर कार्यभार बढ़ जाता है जिससे न्याय देने में काफी विलम्ब होता है।

वकीलों द्वारा प्रतिनिधित्व : परिवार न्यायालय अधिनियम के अनुसार, परिवार न्यायालय में वकीलों का सामान्यत: कोई स्थान नहीं होता है। केवल विशेष मामलों में, वकीलों को अदालत में अपने/अपनी मुवक्किल का मुकद्मा लड़ने की अनुमति दी जाती है।

यह तर्क दिया गया है कि साधारण जनता को कानून, अदालती कार्यवाही आदि की कोई समझ नहीं होती है। आगे यह भी तर्क दिया गया है कि इस नासमझी से शक्ति का केंद्रीकरण परामर्शदाताओं और अदालती अधिकारियों की ओर अग्रसर हो जाता है जो कि सामान्य जनता के हित के लिए हानिकारक है। इस तरह की स्थिति से अन्याय और अत्याचार/पीड़ा का मार्ग प्रशस्त हो सकता है।

न्यायाधीशों की नियुक्ति : कानूनी व्यवसाय में परिवार न्यायालय के पद पर नियुक्ति एक

प्रतिष्ठावान पदवी नहीं मानी जाती है। यद्यपि परिवार न्यायालय के न्यायाधीश के रूप में अपेक्षाकृत महिलाओं की नियुक्ति की जाती है, परंतु पुरुष और महिला वकील इसमें जाने के बहुत उत्सुक नहीं होते क्योंकि यह माना जाता है कि इसमें कैरियर की उन्नति के लिए सीमित अवसर हैं। इन परिस्थितियों में, यह असंभव नहीं है कि कम से कम कुछ अयोग्य व्यक्ति परिवार न्यायालय के न्यायाधीश के रूप में नियुक्त होंगे।

ज) **महिला संगठन और अनुभवहीन वकील :** विभिन्न महिला संगठन वर्तमान समय में महिलाओं को परिवार न्यायालयों में उनके मुकदमे जारी रखने में सहायता प्रदान करने में लगे हुए हैं। ये संगठन श्रेष्ठवकीलों का शुल्क चुकाने में असमर्थ हैं और न ही इन वकीलों के पास इन संगठनों को अपनी सेवायें प्रदान करने का समय है। इसका परिणाम यह है कि अधिकतर अनुभवहीन वकील ही इन संगठनों के लिए कार्य करते हैं इस प्रकार के प्रबंध से सम्बद्ध पक्षों के हित पूर्ण नहीं हो पाते हैं।

झ) **परिवार न्यायालय का क्षेत्राधिकार :** हिंदू विवाह अधिनियम और विशेष विवाह अधिनियम के तहत किये गये विवाह ही केवल परिवार न्यायालय के क्षेत्राधिकार में आते हैं। ईसाई और पारसी विवाह और मुस्लिम विवाह से संबंधित मामले परिवार न्यायालय के क्षेत्राधिकार में नहीं आते हैं।

ञ) **कानून की अदालत के रूप में परिवार न्यायालय :** यह तर्क दिया गया है कि एक परिवार न्यायालय अंततः कानून की एक अदालत है। इसीलिए, न्याय देने की प्रक्रिया और तरीके किसी भी अदालत के अनुरूप होने होते हैं। कई मुकदमों में ये शर्तें परिवार न्यायालय पर मान्य नहीं है।

जरा सोचिए 3

1) किन तरीकों में परिवार न्यायालय मुसीबत की मारी उन महिलाओं के लिए हितकारी है जिनके विवाह और परिवार में समस्यायें हैं?

2) निम्नलिखित के संबंध में परिवार न्यायालय अधिनियम के प्रावधानों का आलोचनात्मक परीक्षण करें–

क) समझौते के लिए किये गये प्रयत्न

ख) कानूनी प्रतिनिधित्व का अधिकार।

13.5 सारांश

परिवार न्यायालय अधिनियम, 1984 दस लाख जनसंख्या वाले किसी भी शहर में राज्य सरकार द्वारा विवाह और परिवार संबंधी मामलों के साथ ही साथ अन्य संबंधित मामलों के शीघ्र निपटारे और संधि को उन्नत करने की दृष्टि से परिवार न्यायालयों की स्थापना के लिए मार्ग प्रशस्त करता है। इससे परिवार न्यायालय के अनेक विशिष्ट लक्षणों को उजागर किया जा सकता है। परिवार विषयक सभी मामलों से संबंधित मुकदमेबाजी को एक सामाजिक समस्या माना जाता है जिसका समाधान जरूरी है न कि जीता या हारा जाने वाला एक मुकदमा। मुसीबत से घिरे परिवारों को परिवार न्यायालय एक विस्तृत-आधार सेवा प्रदान करता है। परिवार न्यायालय से संलग्न परामर्शदाता कल वाले दोनों पक्षों को परामर्श सेवाएं प्रदान करते हैं और मुकद्मे के तथ्यों का अन्वेषण करते हैं। मुकदमे संबंधी समस्त मामलों में दृढ़ गोपनीयता का पालन किया जाता है और कार्यवाहियां गुप्त रूप से की जाती हैं। परिवार न्यायालय की कार्य प्रणाली एक अनौपचारिक तरीके से सम्पन्न की जाती है। परिवार न्यायालय के समक्ष जारी कार्यवाहियों या मुकदमे वाले किसी भी पक्ष को अधिकारतः एक वकील द्वारा, केवल विशेष अनुमति के अलावा, प्रतिनिधित्व करने का स्वत्व प्राप्त नहीं है। पक्षों को कानूनी मदद सेवाओं साथ ही अदालती आदेशों कार्यान्वित करने के लिए सेवाओं का स्वत्व प्राप्त है।

पि परिवार न्यायालय की प्रमुख अभिरुचि, संधि के प्रयत्नों के जरिए, परिवार का बचाव है, अदालत रा उन मामलों में जहां विवाह अखंड रूप से टूट चुका है, इस प्रयत्नों के साथ कि सम्बद्ध पक्षों न्यूनतम तनाव और अपमान झेलना पड़े, विवाह भंग कर दिया जाता है। कई तरीकों से, परिवार ायालय मुसीबत की मारी उन महिलाओं के लिए विशेषत: हितकारी माने गये हैं जिनके विवाह और रिवार में समस्याएं हैं। स्वयं परिवार न्यायालय अधिनियम और परिवार न्यायालयों के कार्य सम्पादन र कार्यान्वयन की कई सीमाएं और कमजोरियों की ओर इशारा किया गया है। अधिनियम के र्यान्वयन और अदालती कार्यों में पाई जाने वाली अधिकतर सीमाएं, जो स्वयं परिवार अदालत की हो सकती है, वस्तुत: जारी रहने के लिए बाध्य हैं। इन मुद्दों में शामिल हैं– परिवार न्यायालय न्यायाधीश के रूप में नियुक्ति के लिए अपेक्षित अर्हताएं, परिवार न्यायालय से जुड़े परामर्शदाताओं भूमिका और उनकी अपेक्षित अर्हताएं, परिवार न्यायालय अधिनियम की वह धारा जो पक्षों को धेकारत: कानूनी व्यवसायी द्वारा प्रतिनिधित्व करने का स्वत: नहीं देती है क्योंकि अधिक से धेक लोग परिवार न्यायालय अधिनियम और उसके तहत स्थापित परिवार न्यायालयों के बारे में ुभव प्राप्त करते हैं। एक बड़ी संख्या में पूरे देश में परिवार न्यायालयों की जरूरत प्रत्यक्ष है।

3.6 शब्दावली

रिवार न्यायालय : परिवार न्यायालय अधिनियम भारतीय संसद द्वारा 1984 में अधिनियमित, राज्य सरकारों द्वारा संधि का बढ़ावा देने और विवाह और परिवार संबंधी और अन्य संबंधित मुद्दों से संबंधित कलहों के निबटारे को सुनिश्चित करने के विचार से, परिवार न्यायालयों के स्थापना के लिए मार्ग प्रशस्त करती है।

त कार्यवाई : जनता के सदस्य को अदालत के अंदर जाने की अनुमति नहीं है जब दावा या कार्यवाही सम्पन्न की जा रही हो।

ामर्शदाता : परिवार न्यायालय से जुड़ा, परामर्श केंद्र में कार्यरत व्यवसायिक रूप से प्रशिक्षित एक कार्यकर्त्ता। यह दोनों पक्षों को पुन: संधि पर लक्षित पारिवारिक काउंसलिंग प्रदान करता/करती है। परामर्शदाता मुकद्मे के तथ्यों का भी अन्वेषण करता है।

र्यान्वित सेवाएं : समस्त अदालती आदेशों का कार्यान्वन सुनिश्चित करने के लिए परिवार न्यायालय द्वारा प्रदत्त सेवा।

3.7 कुछ उपयोगी पुस्तकें

नमेंट ऑफ इंडिया, (1986) नेशनल पर्सपेक्टिव प्लान फॉर वीमेन: नई दिल्ली : भारत सरकार.

नमेंट ऑफ इंडिया, टूवर्डस इक्वालिटी : रिपोर्ट ऑफ दा कामेटी ऑन दी सटेटस ऑफ वीमेन । इंडिया. नई दिल्ली. भारत सरकार.

इकाई 14 स्त्री-पुरुष समानता और परम्परागत अधिकार

रूपरेखा

14.0 उद्देश्य

14.1 प्रस्तावना

14.2 आधारभूत अवधारणाएं और बहस

14.3 आर्थिक क्षेत्र में स्त्री-पुरुष समानता और परम्परागत अधिकार

- 14.3.1 सम्पत्तिगत अधिकार
- 14.3.2 अन्य आर्थिक संसाधनों पर अधिकार

14.4 सामाजिक और राजनैतिक क्षेत्र में समानता और परम्परागत अधिकार

- 14.4.1 आधुनिकीकरण और परम्परा के बीच संबंध
- 14.4.2 अलौकिकता और स्त्री-पुरुष भेद
- 14.4.3 परम्परागत राजनैतिक अधिकार

14.5 परम्परागत अधिकार और जनतांत्रिक अधिकार

14.6 सारांश

14.7 शब्दावली

14.8 कुछ उपयोगी पुस्तकें

14.0 उद्देश्य

इस खंड की पिछली इकाइयों में हम महिलाओं के अधिकारों के विभिन्न कानूनी पक्षों और स्त्री-पुरुष समानता पर विचार कर चुके हैं। इस इकाई में हम भारत में स्त्री-पुरुष समानता में परम्परागत अधिकारों की भूमिका पर विचार करेंगे। इस इकाई को पढ़ने के बाद आप :

- स्त्री-पुरुष समानता की अवधारणा का विवेचन कर सकेंगे,
- आर्थिक क्षेत्र में परम्परागत अधिकारों में स्त्री-पुरुष समानता के तत्वों का परीक्षण कर सकेंगे,
- सामाजिक और राजनैतिक क्षेत्र में परम्परागत अधिकारों में स्त्री-पुरुष समानता के स्वरूप का विश्लेषण कर सकेंगे, और
- परम्परागत अधिकारों और जनतांत्रिक अधिकारों के बीच के संबंधों की व्याख्या कर सकेंगे।

14.1 प्रस्तावना

पिछली इकाई में हमने कानूनी अधिकारों और महिलाओं के कर्तव्यों की चर्चा की। इस इकाई में हम परम्परागत अधिकारों और समाज में प्रचलित रीति रिवाज़ों का परीक्षण करने जा रहे हैं। यहां हम यह देखने का प्रयत्न करेंगे कि इनमें स्त्री पुरुष समानता किस रूप में अभिव्यक्त हुई है। आर्थिक, सामाजिक और राजनैतिक क्षेत्रों में हम इस संबंध के समीकरण को समझने का प्रयत्न करेंगे। इस

बदलते संबंध के विभिन्न आयामों का भी परीक्षण किया जाएगा और इसके लिए देश के विभिन्न भागों के उदाहरणों को सामने रखा जाएगा। हमें उम्मीद है कि इस इकाई को पढ़कर इस संबंध की जटिलताओं को समझने में विद्यार्थियों को मदद मिलेगी और इस प्रकार इस मुद्दे पर चल रही बहस में वह सक्रिय रूप से हिस्सा ले सकेगा।

14.2 आधारभूत अवधारणाएं और बहस

महिला आंदोलन और महिला अध्ययन दोनों ही क्षेत्रों में परम्परागत अधिकार का विषय अनुसंधान का नया क्षेत्र है जिसमें अभी कोई खास काम नहीं किया जा सका है। महिला आंदोलन और स्त्री-पुरुष समानता के लिए संघर्ष धर्म निरपेक्ष जनतांत्रिक ढांचे में ही हुआ है जिसमें तर्कसंगिकता की पश्चिमी अवधारणा को आधार बनाया गया है। इसमें परम्परा या रीति रिवाज को ध्यान में नहीं रखा गया है। असल में परम्परा को पिछड़ापन मान लिया गया और इसे अस्वीकार कर दिया गया। विभिन्न समुदायों में व्यक्तिगत कानूनों के तहत महिलाओं की दयनीय स्थिति को देखते हुए स्त्री पुरुष समानता के प्रश्न को परम्परागत अधिकारों से जोड़कर देखने की जरूरत महसूस की गई।

साठ के दशक के अन्त में और सत्तर के दशक के आरंभ में सभी भारतीय महिलाओं के लिए एक नागरिक संहिता की मांग की गई। विभिन्न धार्मिक समुदायों के व्यक्तिगत कानून रूढ़िवादी हो चुके हैं और उनकी प्रासंगिकता समाप्त हो चुकी है। महिलाओं को कमजोर बनाने में उनकी बड़ी भूमिका रही है। अस्सी के दशक के अन्त में जब लोगों ने यह महसूस किया कि एक नागरिक संहिता की अवधारणा का दुरूपयोग कर साम्प्रदायवादी ताकतों ने बहुसंख्यक समुदाय की नागरिक संहिता को आरोपित करने का प्रयास किया महिला आंदोलन ने इस नए नागरिक संहिता की अवधारणा को अस्वीकार कर दिया।

महिला आंदोलन ने भारत के प्रमुख धर्मों की कानूनी मान्यताओं और महिला विरोधी धारणाओं के खिलाफ संघर्ष किया। दो दशक के इस संघर्ष के दौरान यह बात सामने आई कि इनमें से अधिकांश व्यक्तिगत कानून सूत्र रूप में लिखे हुए हैं और उनमें उनकी व्याख्या नहीं की गई है। इस कानून की अनेक व्याख्याएं संभव है। अस्सी के दशक के अन्त में जनजातीय और दूर दराज के क्षेत्र में काम कर रहे कार्यकर्ताओं के अनुभव से यह बात सामने आई है कि विभिन्न क्षेत्रों और समुदायों में महिलाओं को कई प्रकार के परम्परागत अधिकार प्राप्त हैं और इन परम्परागत कानूनों में पर्याप्त जटिलता और विभिन्नता है। ऐसा महसूस किया गया कि इनमें से अधिकांश अधिकारों और प्रथाओं में महिलाओं को अधिक अधिकार दिए गए हैं और ये अधिक सूत्रबद्ध कानून की अपेक्षा अधिक समतावादी हैं। इसी अनुभव के फलस्वरूप इन परम्परागत अधिकारों का परीक्षण करने और इनके प्रभावों के मूल्यांकन की बात सामने आई। अभी इस मुद्दे पर कोई अन्तिम बात नहीं कही जा सकती है। इस पूरे अनुभव से यह बात सामने आई है कि भारतीय महिलाओं के जीवन से हमारा ज्ञान कितना कम है।

एक बात यह भी देखने में आई है कि जाति और आर्थिक पदानुक्रम में जितना नीचे जाते हैं उतना ही स्त्री-पुरुष के संबंधों में समानता पाई जाती है। खासतौर पर वहां जहां पुरुष और महिलाएं एक साथ खेतों में काम करते हैं या मजदूरी का काम करते हैं वहां यह समानता देखने को मिलती है। इसके अलावा जिन क्षेत्रों में आर्य पूर्व विरासत मौजूद हैं वहां स्त्री पुरुष के बीच असमानता कम है।

जरा सोचिए-1

परम्परागत अधिकार क्या है? महिलाओं के मुद्दों से यह किस प्रकार जुड़े हैं?

14.3 आर्थिक क्षेत्र में स्त्री-पुरुष समानता और परम्परागत अधिकार

इस विषय पर हम दो हिस्सों में बात करेंगे। महिलाओं का सम्पती अधिकार और अन्य आर्थिक मामलों में महिलाओं के अधिकार।

14.3.1 सम्पत्तिगत अधिकार

सम्पत्तिगत अधिकार के विशेष आर्थिक महत्व के कारण हम इस पर विस्तार से बातचीत कर रहे हैं। प्राप्त प्रमाणों के आधार पर यह प्रतीत होता है कि भारत में महिलाओं के सम्पत्तिगत अधिकार में पर्याप्त विभिन्नता है। जमीन एक महत्वपूर्ण अचल सम्पत्ति है और किसी भी प्रमुख समुदाय में महिलाओं का भूमि पर सीधा अधिकार नहीं है। हालांकि वर्ग, जाति और स्थान के अनुसार इनमें विभिन्नता भी पाई जाती है। यहां तक कि प्रमुख हिन्दू समुदायों में पर्याप्त विभिन्नता है। उदाहरणस्वरूप महिलाओं के लिए सम्पत्तिगत अधिकार को लेकर ही दयाभाग और मिताक्षरा में मतभेद है। इसके केंद्रीय रूप भी अलग-अलग हैं। मिताक्षरा व्यवस्था पूरे देश में मान्य है जबकि दयाभाग व्यवस्था असम और बंगाल में प्रचलित है परंतु जनजातीय समाज में ज्यादा विभिन्नता है।

झारखंड और छत्तीसगढ़ क्षेत्रों में किए गए अनुसंधान से यह बात सामने आई है कि कई समुदायों/जनजातियों में भूमि उत्तराधिकार का अधिकार महिलाओं को भी प्राप्त है। छत्तीसगढ़ में महिलाएं जमीन की मालिक हो सकती हैं और खेत जोत सकती हैं परंतु वे खेत बेच नहीं सकती हैं। झारखंड क्षेत्र में ही अलग-अलग जनजातियों में अलग-थलग प्रथाएं प्रचलित हैं जैसे हो जनजाति महिलाओं को भूमिगत अधिकार नहीं देते हैं। सत्तर के दशक में कुछ महिला कार्यकर्ताओं ने सर्वोच्च न्यायालय में इसे चुनौती दी थी। संथालों में और दक्षिण बिहार के कुछ हिस्सों में लड़कियां को कुछ सीमित अधिकार प्राप्त हैं। परंतु वे जमीन बेच नहीं सकती हैं और 'डिकु' (बाहरी व्यक्तियों) से विवाह नहीं कर सकतीं। परंतु 1927-35 के राजपत्रित बंदोबस्त और संथाल परगना काश्तकारी अधिनियम 1949 में व्याख्यायित संथाल कानून में महिलाओं को किसी प्रकार का भूमि संबंधी अधिकार नहीं दिया गया है।

इस संदर्भ में केरल की नायर और मेघालय के पहाड़ियों में रहने वाले खासियों जैसे मातृसत्तात्मक परिवारों का परीक्षण उपयोगी सिद्ध होगा। नायरों में सम्पत्ति परम्परागत रूप से महिलाओं को मिलती है और घर की महिला मालकिन और वास भूमि का निर्धारण करती हैं। महिलाएं अपने नैहर में रहती हैं और पति वहां आ जा सकता है। महिलाएं कम से कम या लम्बे समय के लिए संबंधम साझेदार भी रख सकती है। हिन्दू सामाजिक नियमों के प्रभाव से यह प्रथा दूर रही है और अधिकांश नायर विवाह में पितृसत्तात्मकता ही हावी रही है। हालांकि अभी भी जमीन के उत्तराधिकार का अधिकार महिलाओं को ही प्राप्त है।

उत्तर पूर्व के खासी कट्टर मातृसत्तात्मक जनजाति हैं जहां जमीन और अन्य प्रकार के उत्तराधिकार छोटी बेटी को प्राप्त होते है। हालांकि सारे बच्चे अपनी मां के घर में रह सकते हैं परंतु अपनी बहन के घर में ही अधिकार प्राप्त होता है। पड़ोसी गारो जनजाति में महिलाओं और पुरुषों दोनों को ही जमीन के अधिकार प्राप्त हैं और बेटी के सामने यह विकल्प होता है कि वह अपने मां के घर में रहे या नए घर में चली जाए।

14.3.2 अन्य आर्थिक संसाधनों पर अधिकार

भूमि और सम्पत्ति के अलावा महिलाओं को दूसरे प्रकार के आर्थिक अधिकार भी प्राप्त हैं। हालांकि इसके बारे में कोई बहुत ज्यादा लिखित प्रमाण उपलब्ध नहीं है परंतु संथालों और मुंडों में महिलाओं

को जंगलों से सामग्रियां इकट्ठी करने का और इससे प्राप्त आय को खर्च करने का अधिकार है। यह अधिकार संभवत: महिलाओं को इस उद्देश्य से दिया गया है कि परिवार के पालन-पोषण का ज़िम्मा उन्हीं का है। और वस्तुत: महिलाएं अपनी इस आय का उपयोग पूंजीवाद के भरण-पोषण के लिए ही करती हैं। कई और गैर जनजातीय समाजों में परिवार के पालन-पोषण का जिम्मा महिलाओं के कंधों पर है। परंतु खासी और गारो में महिलाएं कृषि और पशुपालन का कार्य करती हैं और उन्हें परम्परागत रूप से यह अधिकार प्राप्त है। इन कारणों से इन समाजों में घरेलू प्रबंधन में महिलाओं की स्थिति मजबूत है।

समय-समय पर सूत्रबद्ध किए गए परम्परागत कानूनों का परीक्षण अनिवार्य है। औपनिवेशिक प्रशासन ने स्थानीय रीति रिवाजों से संबंधित सूचनाएं इकट्ठी कर उन्हें सूत्रबद्ध किया(उदाहरण के लिए 1880 में डब्ल्यू. एच. रैट्टिगन के संपादकत्व में 'डाइजेस्ट ऑफ कस्टमरी लॉ इन द पंजाब' नामक पुस्तक प्रकाशित हुई जिसमें उत्तराधिकार, गोद लेना, सार्वजनिक भूमि के उपयोग और पंजाब के विभिन्न हिस्सों में मिल्कियत अधिकार का सर्वेक्षण संग्रहीत है। परंतु ये सारी सूचनाएं उच्च जाति के ग्रामीण संभ्रान्तों और उच्च वर्ग के लोगों द्वारा प्रदान की गई थी और उनमें से अधिकांश पुरुष थे। इन प्रयासों में महिलाओं के परम्परागत आर्थिक अधिकार के प्रति कोई जुड़ाव नहीं था और कई बार ये महिलाओं के अधिकारों को छीनने का भी प्रयास करते थे। हाल के एक अध्ययन (जस्सल, 1998) से यह पता चला है कि 1879 के ताल्लुकदारी उत्तराधिकार अधिनियम द्वारा ताल्लुकदारी महिलाओं के परम्परागत अधिकार को लगभग समाप्त कर दिया गया। इस अधिनियम के द्वारा इस वर्ग के पुरुष सदस्यों को विशेषाधिकार दिए गए और महिलाओं से उनके अधिकार छीन लिए गए। समाज के कई क्षेत्रों में पितृसत्तात्मक नियंत्रण बढ़ता गया। विधवाओं की सम्पत्ति पर पकड़ कमजोर होती चली गई, सम्पदा नौकरशाही का हस्तक्षेप बढ़ता चला गया। महिला ताल्लुकदारों के मामलों में अदालत हस्तक्षेप करने लगा। ये महिलाएं ताल्लुकदार सरकारी कर्मचारियों और अदालतों का सामना न कर सकीं। ज्येष्ठाधिकार के सिद्धांत से उत्तराधिकारी तय किया जाने लगा और इस अधिनियम के पारित होने के बाद ताल्लुकदारी परिवारों में परदा और पितृसत्तात्मक नियंत्रण सख्त होता चला गया।

अनुभव से सीखिए-1

प्रत्येक समुदाय में महिलाओं के लिए कई आर्थिक परम्परागत आर्थिक अधिकार मौजूद हैं। अपने समुदाय के बुजुर्गों से इन परम्परागत आर्थिक अधिकारों की जानकारी प्राप्त कीजिए। पता लगाइए कि क्या या हाल के वर्षों में इन अधिकारों में कोई गिरावट आई है। इन संग्रहीत सूचनाओं के आधार पर हमारे समाज में महिलाओं लिए परम्परागत अधिकार पर एक छोटी टिप्पणी लिखिए।

14.4 सामाजिक और राजनैतिक क्षेत्र में समानता और परम्परागत अधिकार

जहां तक सामाजिक पक्ष का संबंध है महिलाओं के परम्परागत सामाजिक अधिकार में पर्याप्त असमानता है। आमतौर पर भारतीय समाज में महिला पितृसत्तात्मक सामाजिक व्यवस्था के अधीन है और इसके सार्वजनिक और निजी जीवन पर पुरुष का सख्त नियंत्रण है। परंतु यह बात उच्च वर्गों और सीमित सामाजिक वर्गों तक ही सीमित है।

14.4.1 आधुनिकीकरण और परम्परा के बीच संबंध

मध्य वर्ग या समाज की निचली जातियों तथा जनजातीय समाजों में महिलाओं को परम्परागत रूप से कई सामाजिक अधिकार प्राप्त हैं। संबंधों के चुनाव, चयन और स्थगन के लिए उनके पास कई

विकल्प मौजूद हैं। छत्तीसगढ़ क्षेत्र में यह बड़ी रोचक बात सामने आती है कि ब्राह्मणों और कुछ उच्च जातियों को छोड़कर समाज के नियम जनजातीय और अजातीय हिन्दू समाज से काफी प्रभावित है। छत्तीसगढ़ में रहने वाली आम महिला परदा नहीं करती और जनजीवन तथा उत्पादन के कार्यों में खुलकर हिस्सा लेती है। हालांकि पहला विवाह परिवार द्वारा ही किया जाता है परंतु दहेज प्रथा का प्रचलन नहीं है। यह विवाह किसी भी पक्ष द्वारा समाप्त किया जा सकता है। दूसरा या उसके बाद किए जाने वाले संबंधों को पुरुष केवल चूड़ी का उपहार देकर किसी भी महिला के साथ रह सकता है। इसलिए इस प्रथा को चूड़ी प्रथा के नाम से जाना जाता है। इस क्षेत्र में अधिकतर महिलाएं एक से ज्यादा शादियां करती हैं। यह व्यवस्था समतावादी व्यवस्था है और दोनों पक्षों को पूर्ण स्वतंत्रता प्राप्त है। पुरुष और महिलाएं दोनों खेती और वानिकी में काम करते हैं और दोनों आर्थिक दृष्टि से एक दूसरे पर आश्रित नहीं होते। परंतु परम्परागत नियम के अनुसार बच्चे पर पति का अधिकार होता है। हां जाति पंचायतों के द्वारा इस नियम में छूट ली जा सकती है। समाज को प्रभावित कर रही संस्कृतिकरण की प्रवृत्तियां समाज में बदलाव ला रही हैं और इसका बुरा पक्ष यह सामने आ रहा है कि पुरुष शादी करके महिलाओं को बच्चों और अपना भरण-पोषण करने के लिए छोड़ देते हैं। आधुनिकीकरण के आगमन से आर्थिक संभावनाएं पिछड़ती जा रही हैं और मुख्य धारा से जुड़ने के कारण महिलाओं के लिए कई प्रकार की समस्याएं खड़ी हो रही है।

14.4.2 अलौकिकता और स्त्री-पुरुष भेद

आध्यात्मिक-अलौकिक क्षेत्र में परम्परागत नियम महिलाओं के पक्ष में नहीं रहा है। झारखंड और छत्तीसगढ़ के कई जनजातीय समाजों में महिलाओं को डायन या टोनही बना दिया जाता है और उन पर यह आरोप लगाया जाता है कि फसल और मनुष्य के जीवन को नुकसान पहुंचाती हैं। यही समाज जब पुरुष को अलौकिक शक्ति से संबोधित करता है तो उसे बैगा या ओझा बना देता है जिससे लोग डरते हैं और जिसमें प्राकृतिक आपदाओं को दूर भगाने या बीमार को ठीक करने की शक्ति होती है। दूसरी ओर डायन को दंडित किया जाता है और उसे नगारिक समाज से बाहर निकाल दिया जाता है। उसे डायन कह कर न केवल जगह-जगह पर अपमानित किया जाता है बल्कि उसे पत्थर से पीटा जाता है। सार्वजनिक तौर पर यह उसका अपमान है और यहां तक कि उसे जान से भी मार दिया जाता है। कई कार्यकर्ताओं और लेखकों (जैसे केलकर और नाथन) का मानना है कि पितृसत्तात्मकता की शक्तियां इस अंधविश्वास के जाल को फैलाती हैं और इसके द्वारा समाज में महिलाओं के आर्थिक या राजनैतिक अर्धिकारों के हनन का षडयंत्र रचा जाता है। अकेली विधवा महिला या ऐसी महिला जो दूसरों से 'भिन्न' हो सबसे ज्यादा इस अंधविश्वास का शिकार होती हैं। झारखंड और छत्तीसगढ़ क्षेत्रों में घर की महिला मुखिया पर टोनही कहकर आक्रमण किया गया है और इसका एकमात्र कारण इन महिलाओं की सम्पत्ति और अन्य संसाधनों को हड़पना पाया गया है।

14.4.3 परम्परागत राजनैतिक अधिकार

एक महत्वपूर्ण मुद्दा यह भी है कि राजनैतिक क्षेत्र में महिलाओं को किस प्रकार के परम्परागत अधिकार प्राप्त हैं और परम्परा से किस प्रकार के रीति रिवाज और कानून चले आ रहे हैं। लगभग सभी जगहों पर महिलाओं के राजनैतिक अधिकार सीमित हैं और जिन समाजों में महिलाओं को आर्थिक अधिकार प्राप्त हैं वहां भी राजनैतिक अधिकार प्रतिबंधित हैं। नायरों में जहां मातृसत्तात्मक व्यवस्था काफी परिपक्व है वहां भी परिवार की मुखिया महिला होने के बावजूद पारिवारिक कार्यों का प्रबंधन एक पुरुष सदस्य करता है जिसे कर्णावां के नाम से जाना जाता है। हालांकि खासियों में महिलाओं की पारिवारिक, सामाजिक और आर्थिक क्षेत्रों में महत्वपूर्ण भूमिका है परंतु जनजातीय दरबार (प्रशासनिक परिषद) में उन्हें प्रतिनिधित्व नहीं मिलता जिसके हाथ में पूरे कबीले का राजनैतिक नियंत्रण होता है। यहां विभाजन स्पष्ट है। घरेलू और पारिवारिक खेती महिलाओं के पास है परंतु बाहरी संबंध, प्रतिरक्षा, दूसरे क्षेत्रों से समझौता या प्रशासन पर पुरुषों का अधिकार है।

अतः इससे यह बात सामने आती है कि आर्थिक समता से अनिवार्यतः राजनैतिक समता प्राप्त नहीं होती और जहां तक राजनैतिक समता का सवाल है महिलाएं सब जगह इससे वंचित हैं। स्त्री-पुरुष समता अन्ततः एक राजनैतिक मुद्दा है। परंतु इससे यह भी सवाल उठता है कि परम्परागत अधिकारों के आधार पर स्त्री-पुरुष समानता किस हद तक कायम की जा सकती है।

14.5 परम्परागत अधिकार और जनतांत्रिक अधिकार

हालांकि आज के समाजों में स्त्री-पुरुष समानता पर आधारित परम्परागत अधिकार मौजूद हैं वहां भी इस पर किसी न किसी प्रकार के प्रतिबंध लगे हैं और इन अधिकारों की सीमा है। परंतु मुख्य धारा के समुदायों के व्यक्तिगत कानूनों में कहीं भी स्त्री-पुरुष समानता के तत्व देखने को नहीं मिलते हैं। देश के विभिन्न हिस्सों में विभिन्न जनजातियों में महिलाओं को प्राप्त परम्परागत अधिकारों से यह स्पष्ट होता है कि इन सामाजिक संगठनों में स्त्री-पुरुष असमानता कम है और अभी तक वहां पितृसत्तात्मक राज्य का पूर्णतः निर्माण नहीं हो सका है। एक सामाजिक संगठन के स्तर पर परम्परागत अधिकार स्त्री-पुरुष के बीच समानता स्थापित करने का प्रयत्न करते हैं। हालांकि उस समय स्त्री-पुरुष समानता पर सचेत होकर कोई विचार नहीं किया गया था। इसलिए परम्परागत रीति रिवाजों में विरोधी परम्पराएं भी शामिल हैं जैसे डायन की प्रथा।

ऐतिहासिक, परम्परागत और जनतांत्रिक मूल्यों के विकास के साथ स्त्री-पुरुष समानता का पक्ष सामने आया और महिलाओं की समानता के लिए ऐतिहासिक संघर्ष के दौरान हमारे समय की कई संस्थाओं को चुनौती दी गई और स्त्री-पुरुष समानता की दृष्टि से उन्हें बदलने का प्रयास किया गया। हम आज यह महसूस करते हैं कि ये संस्थाएं उन प्रक्रियाओं पर आधारित है जिसमें हमारे समाज में पितृसत्तात्मकता का साथ-साथ विकास हुआ है। इसे महसूस करने के बाद ही परम्परागत अधिकार में स्त्री-पुरुष समानता के तत्वों को ढूंढने की बात सामने आई। हालांकि आज हम यह पाते हैं कि जबतक नई मूल्य व्यवस्थाओं का सचेत होकर निर्माण नहीं किया जाएगा तबतक पुरानी संस्थाओं को बदलकर या नई संस्थाएं बनाकर स्त्री-पुरुष समानता कायम नहीं की जा सकती। सामाजिक संस्थाओं का परीक्षण करना हमारा कर्तव्य है। इन सामाजिक संस्थाओं का परीक्षण कर उनमें पितृसत्तात्मकता के तत्वों को पहचानना होगा और इसके साथ-साथ अपने समाज में स्त्री-पुरुष समानता के लिए संघर्ष करना होगा।

14.6 सारांश

महिलाओं के परम्परागत अधिकार के क्षेत्र में लिखित प्रमाण का अभाव है। इस संदर्भ में कुछ नृजातीय वर्णन प्राप्त होते हैं परंतु इस प्रकार के अनुसंधान में भी स्त्री-पुरुष समानता के प्रश्न पर विचार नहीं किया गया है। विश्वविद्यालय के विद्यार्थी इस विषय पर एक परियोजना तैयार कर सकते हैं। इसके लिए उन्हें उन क्षेत्रों में जाकर काम करना होगा जहां ये प्रथाएं मौजूद हैं। क्षेत्रीय विश्वविद्यालय से सहयोग प्राप्त कर इस विषय पर गंभीरतपूर्वक काम किया जा सकता है।

इस सीमित सूचना के आधार पर हमने भारतीय समाज की महिलाओं के परम्परागत अधिकारों के बारे में कुछ आधारभूत सूचना देने का प्रयास किया। हमने इस इकाई के आरंभ में भारत में स्त्री-पुरुष समानता के मुद्दे पर बात करते हुए परम्परागत अधिकार की अवधारणा और स्त्री-पुरुष समानता के साथ उनके संबंध पर विचार किया। समाज में महिलाओं के आर्थिक और सामाजिक अधिकारों के परिप्रेक्ष्य में परम्परागत अधिकारों के तत्वों का विवेचन किया गया। महिलाओं के परम्परागत अधिकारों के संस्कृतिकरण और आधुनिकीकरण की प्रक्रियाओं के साथ सामाजिक और राजनैतिक प्रक्रियाओं पर भी विचार किया गया है।

14.7 शब्दावली

धार्मिक रूढ़िवादी : रूढ़िवादी और कट्टरपंथी विचार, केवल एक ही विचारधारा में विश्वास।

आंदोलन : समान विचारधारा वाले समूह का संगठित कार्य।

ज्येष्ठाधिकार : सम्पत्ति पर बड़े लड़के का अधिकार।

संस्कृतिकरण : निम्न जाति के हिंदुओं या जनजाति समूह की जीवन पद्धति में परिवर्तन, द्विज की नकल।

14.8 कुछ उपयोगी पुस्तकें

कमिटी ऑन द स्टेटस ऑफ वुमैन (1974) *टुवार्ड्स इक्वालिटी*. गवर्नमेंट ऑफ इंडिया. नई दिल्ली.

अग्रवाल, बीना (1994) *ए फिल्ड ऑफ वन्स ओन: वुमैन ऐंड लैंड राइट्स इन साउथ एशिया*.कैम्ब्रिज.

केलकर, गोविन्द ऐंड देव नाथन (1990) *जेन्डर ऐंड ट्राइब*. नई दिल्ली : काली फॉर वुमैन.

संदर्भ

अहमद, दरेज़, हिल्स, सेन (ईडी) (1991) सोशल सिक्यूरिटी इन डेवलपिंग कंट्रीज़। ऑक्सफोर्ड: क्लारेंडन प्रेस।

भटनागर, दीपक (1984) लेवर वेल्फेयर एंड सोशल सिक्यूरिटी लेजिसलेशन्स इन इंडिया। नई दिल्ली : दीप एंड दीप पब्लिकेशन्स।

महिलाओं की स्थिति पर समिति, (1980), टुवर्डस इक्वालिटी। नई दिल्ली।

कंट्री रिपोर्ट, चौथा महिला विश्व सम्मेलन (1995) भारत सरकार, मानव संसाधन विकास मंत्रालय।

हसन, एन. (1965) 'सोशल सिक्यूरिटी इन दि फ्रेमवर्क ऑफ इकॉनामिक डेवलपमेंट' अलीगढ़ : मुस्लिम विश्वविद्यालय।

केलकर, गोविन्द और नाथन, देव (1990) जेंडर एंड ट्राइब, नई दिल्ली : काली फॉर वूमैन।

कुडचेदकर, शिरिन और सबिहा अल-इसाक (1998) वायलेंस अगेन्स्ट वूमैन : वूमैन अगेन्स्ट वायलेंस। दिल्ली : पेनक्राफ्ट इंटरनेशनल।

नेशनल क्राइम रिक्रॉड्र्स ब्यूरो (एन सी आर बी) (1995) क्राइम इन इंडिया। गृह मंत्रालय, भारत सरकार, नई दिल्ली।

नेशनल पर्सपेक्टिव प्लान फॉर वूमैन्स (एन पी पी) (1998-2000)। मानव संसाधन विकास मंत्रालय, भारत सरकार, नई दिल्ली।

रतन लाल और धीरजीलाल (1987) दि इंडियन पीनल कोड 26, एडीशन, नागपुर : वाधा एंड कं. प्रा.लि.।

तिवारी, स्मिता जस्सल (1998) कस्टम, लैंड ऑनरशिप एंड वूमैन : ए क्लोनिकल लेजिसलेशन इन एनॉर्थ इंडिया। सेंटर फॉर वूमैन डेवलपमेंट स्टडीज़, नई दिल्ली।